मालवा में युगान्तर

पूर्वकाल

१६९८ - १७६५ ई०

मालवा में युगान्तर
या
अराजकतापूर्ण शताब्दी

पूर्वकाल

१६६८-१७६५ ई०

लेखक

रघुबीरसिंह, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्०

भूमिका-लेखक

सर यदुनाथ सरकार, एम्० ए०, डी० लिट्०, सी० आय० ई०

श्री मध्य-भारत हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर

१९३८ ई०

इसी ग्रन्थ के अंग्रेज़ी संस्करण पर आगरा विश्वविद्यालय ने लेखक को सन् १९३६ ई० में "डाक्टर आफ़ लेटर्स" की डिग्री प्रदान की थी।

प्रथम बार — सन् १९३८ ई०

मूल्य

अजिल्द संस्करण ४) रु०

सजिल्द " ४॥) रु०

मुद्रक—एम० एन० पाण्डेय, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

प्रकाशक—श्री मध्य-भारत हिन्दी-साहित्य-समिति, तुकोगंज, इन्दौर

जिन्होंने
बारी-बारी से मुझे
इतिहास
पढ़ाया,
एवं इस योग्य बनाया कि
यह ग्रन्थ लिख सकूँ
मेरे
उन्हीं तीन गुरुओं को
सादर
समर्पित

भूमिका

प्राचीन आर्य्य-युग एवं प्रथम मुसलमानी शासनकाल में मालव-देश भारत भूमि के बीचोंबीच एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रदेश था। हिन्दू संस्कृति पर इस प्रदेश का जो प्रभाव पड़ा वह स्थायी होगया। उस युग के बाद जब देहली का मुसलमान साम्राज्य दक्षिणी भारत को जीतने के लिए अग्रसर हुआ तब इस राज्य-विस्तार में मालवा का महत्त्व और भी बढ़ गया, क्योंकि आर्य्यावर्त एवं दक्षिणी भारत को जोड़ने वाला यही एक मालव-प्रदेश है। लेकिन आज तक इस प्रदेश का कोई उपयुक्त इतिहास नहीं लिखा गया। सन् १८२० ई० में सर जान मालकम ने 'ए मेमायर आफ़ सेंट्रल इण्डिया' नामक ग्रन्थ लिखा था जो अब तक एक प्रामाणिक इतिहास समझा जाता है, अगरचे उस समय में भारतीय इतिहास की चर्चा और ज्ञान का प्रारम्भ मात्र था, और मालकम के सामने बहुत ही कम ऐतिहासिक सामग्री मौजूद थी, एवं उस सामग्री की भी पूरी-पूरी जाँच वह नहीं कर सका था। इधर बहुत काल से विद्वानों की राय यह रही है कि वर्तमान युग में मालकम के ग्रन्थ से बिलकुल ही काम नहीं चल सकेगा।

मालकम के ग्रन्थ की रचना हुए आज ११७ वर्ष बीत गए। इस लम्बे समय में मरहठों के सरकारी दफ़्तर के काग़ज़-पत्रों के सैकड़ों बस्ते छपवा कर प्रकाशित किए गए, तथा कितनी ही ऐसी फ़ारसी सामग्री को ऐतिहासिकों ने खोज कर ढूँढ निकाला एवं उसकी चर्चा की, जिसको न तो मालकम ने देखा था और न जिसका नाम ही उसने सुना था। इसका परिणाम यह होगया कि ईसा की १७ वीं एवं १८ वीं शताब्दी के मालव-

इतिहास सम्बन्धी हमारे ज्ञान में पूर्ण क्रान्ति होगई। कुमार रघुबीरसिंह ने अपने इस ग्रन्थ में सबसे पहली बार इस बात का प्रयत्न किया कि मालकम लिखित उस अति प्राचीन वृत्तान्त को अग्राह्य मान कर, एवं विगत शताब्दी भर में जो-जो नवीन सामग्री प्राप्त हुई थी उसे इकट्ठा कर एक प्रामाणिक गवेषणापूर्ण इतिहास पाठकों के सामने पेश करें।

बड़े सौभाग्य का विषय है कि इतने वर्षों के बाद मालव-देश का अपने पूर्वगौरव के मुताबिक एक इतिहास लिखा जा रहा है, और मालव-भूमि के एक सुपूत, राष्ट्रकूट-गौरव सीतामऊ-नरेश के सुपुत्र, विद्वान, धीरमति, कुमार श्री रघुबीरसिंह ने इस कर्तव्य-भार को अपने कंधों पर उठा लिया है। इस ग्रन्थ के निर्दिष्ट काल पर प्रकाश डालने वाले सब फ़ारसी, मराठी, हिन्दी, अंग्रेज़ी व फ्रेंच पुस्तकों तथा हस्तलिखित ग्रन्थों को उन्होंने पढ़ा है। मेरे पुस्तकालय से सब आवश्यक हस्तलिखित ग्रन्थों को मँगवा कर उन्होंने उनकी नक़लें करवा लीं, और जो-जो आवश्यक ग्रन्थ मेरे पास भी नहीं थे ब्रिटिश म्यूज़ियम और लंडन के इण्डिया आफ़िस में से उन-उन ग्रन्थों के भी फोटो खिंचवा मँगवाये और उनका अनुवाद करवाया। फ़ारसी अख़बारात तथा हस्तलिखित संवाद-पत्रों के बहुत से पर्चों को पढ़-पढ़ कर उनमें से कई छोटी-छोटी ख़बरों एवं नामों का उद्धार कर उन्हें एक सम्बद्ध वर्णन में गूँथ दिया है, और इस प्रकार कितनी ही अज्ञात घटनाओं और उन वर्षों की सच्ची कहानी को आज एक नए स्वरूप में हमारे सामने पेश किया है। मालव-प्रदेश के कुल स्थानों तथा घरानों सम्बन्धी उनका ज्ञान इतना गम्भीर व शुद्ध है जैसा किसी अन्य प्रदेशीय लेखक का होना सम्भव नहीं।

यह इतिहास-ग्रन्थ गम्भीर, शुद्ध तथा सम्पूर्ण तथ्यों से भरा हुआ है। लेखक-कुमार साहिब की प्रधान विशेपता इन दो बातों में है कि उन्होंने निर्विवाद रूप से यह प्रमाणित कर दिया है कि गिरधर बहादुर व दया बहादुर की मृत्यु एक ही दिन एक ही रणभूमि में हुई थी, और नन्दलाल मण्डलोई दफ़्तर के हिन्दी पत्र बिलकुल जाली व हाल में बनाए गए हैं।

इस ग्रन्थ में मालवा की आर्थिक दशा, सामाजिक परिवर्तन, विद्या, कला और शिल्प सम्बन्धी, अध्याय में बहुत सी नई-नई महत्त्वपूर्ण एवं मनोरंजक बातें पाई जाती हैं; कई इतिहासकार इन सब विषयों पर ध्यान नहीं देते हैं। उम्मीद है कि यह ग्रन्थ भारतीय प्रान्तों के पाण्डित्यपूर्ण गवेषणामय इतिहासों की रचना करने वालों के लिए पथप्रदर्शक एवं आदर्श बन कर बहुत काल तक सम्मान पाता रहेगा।

यह एक हर्ष की बात है कि मालवा की प्रमुख साहित्यिक संस्था "मध्य-भारत हिन्दी-साहित्य-समिति," इन्दौर ने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के हिन्दी संस्करण को प्रकाशित करने का आयोजन किया। हिन्दी संस्करण को तैयार करते समय विद्वान लेखक ने अंग्रेज़ी संस्करण में रही हुई ग़लतियाँ दुरुस्त कर दी हैं, और अंग्रेज़ी संस्करण के छप जाने के बाद जो नई सामग्री प्राप्त हुई उसका भी इसमें पूरा-पूरा उपयोग कर लिया है। यों यह हिन्दी संस्करण अंग्रेज़ी के संस्करण से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है।

विषय-सूची

नक़्शे

संकेत-परिचय

(निर्दिष्ट ग्रन्थों के पूरे-पूरे शीर्षक एवं तत्सम्बन्धी अन्य बातों के लिए इस पुस्तक के अन्त में 'ग्रन्थ-निर्देश' अध्याय देखो)

अजायब०—'अजायब-उल्-आफ़ाक'।

अठले धार०—अठले द्वारा संग्रहीत 'धार दफ़्तर'; केवल पत्र संख्या दी गई है।

अ० म० द०—अठले द्वारा संग्रहीत 'मण्डलोई दफ़्तर'; केवल पत्र संख्या दी गई है।

अशोब—'तारीख़-इ-शहादत-इ-फ़र्रुख़सियर व जूलूस-इ-मुहम्मद शाह'।

अहवाल०—'अहवाल-उल्-ख़वाकीन', मुहम्मद कासिम कृत।

आईन०—'आईन-इ-अकबरी' खण्ड २, जेरेट का अनुवाद (बिब० इण्डिका)।

आज़म०—'आज़म-उल्-हर्ब'।

इण्डिया०—'इण्डिया आफ़ औरंगज़ेब', सर यदुनाथ सरकार कृत।

इनायत०—'अहकाम-इ-आलमगीरी', इनायतुल्ला कृत।

इबरत०—'इबरत नामा', मुहम्मद कासिम लाहोरी कृत।

इरादत०—इरादत खाँ कृत तारीख़, जे० स्काट कृत, 'हिस्ट्री आफ़ दी डेकन' खण्ड २, भाग ४ के पृष्ठ १—१३० में अनुवादित।

इर्विन०—'लेटर मुग़लज़', खण्ड १—२, विलियम इर्विन कृत एवं सर यदुनाथ सरकार द्वारा सम्पादित तथा परिवर्धित।

ईलियट—'हिस्ट्री आफ़ इण्डिया एज़ टोल्ड बाय हर ओन हिस्टोरियन्ज़', ईलियट तथा डासन कृत।

उदयपुर—'उदयपुर राज्य का इतिहास', जिल्द १—२; ओझा कृत।

ऐतिहासिक पत्र० या ऐति०—'ऐतिहासिक पत्र व्यवहार आदि' जिल्दें १—२, सर देसाई तथा अन्य विद्वानों द्वारा सम्पादित; पत्र संख्या ही दी गई है।

ओक—'धारच्या इतिहास' खण्ड १, ओक और लेले कृत।

औरंगज़ेब—'हिस्ट्री आफ़ औरंगज़ेब' जिल्दें ३, ५, सरकार लिखित।

कलिमात०—'कलिमात-इ-तय्यीबात'।

कामराज—'इबरत नामा', कामराज कृत।

कामवर—'तारीख़-इ-चग़ताई', कामवर कृत।

ख़जिस्ता०—'ख़जिस्ता-इ-कलाम', साहिब राय कृत।

ख़फ़ी०—'मुन्तख़ब-उल्-लुबाब' जिल्द २, ख़फ़ी ख़ाँ कृत (बिब० इण्डिका)।

खरे—'ऐतिहासिक लेख संग्रह', भाग १, खरे द्वारा सम्पादित; पत्र संख्या ही दी गई है।

खाण्डे०—'खाण्डेराय रासो', यदुनाथ कवि कृत।

ख़ुलासात०—'ख़ुलासात-उत्-तवारीख़', सुजान राय कृत।

ख़ुशहाल—'नादिर-उज़्ज़मानी', ख़ुशहाल कृत।

गज़े०—गज़ेटियर।

ग़ुलाम०—'मुक़द्दम-इ-शाह आलम नामा', ग़ुलाम अली कृत।

चहार०—'चहार गुलशन', छत्रमणि सक्सेना कृत।

चहार गुलज़ार—'चहार गुलज़ार', हरचरण दास कृत।

ज० ए० सो० बं०—'जनरल आफ़ एसियाटिक सोसायटी आफ़ बंगाल' सन् १८७८, भाग ४ में प्रकाशित 'हिस्ट्री आफ़ दी बंगश नवाब्ज़ आफ़ फ़र्रुख़ाबाद'।

ज० प० हि० सो०—'जनरल आफ़ दी पंजाब हिस्टारिकल सोसायटी', खण्ड १०, भाग १ में प्रकाशित 'जरनल आफ़ केटेलार्ज ट्रेवल्ज़' का अंग्रेज़ी अनुवाद।

जाट०—'हिस्ट्री आफ़ दी जाट्स', खण्ड १, डा० कानूनगो कृत।

टाड०—'एनल्ज़ एण्ड एण्टिक्विटीज़ आफ़ राजस्थान', सर जेम्स टाड कृत, जिल्द १–३, आक्सफ़र्ड संस्करण।

टिफ़ेनथेलर—'डिस्क्रिपशन दी ला इन्दे' पारले पेरे जोसेफ़ टिफ़ेनथेलर, एस० जे०, टोम १, (बर्लिन १७८६ ई०)।

टेवरनियर—'टेवरनियर्ज़ ट्रेवल्स', खण्ड १–२, बाल द्वारा सम्पादित (मेकमिलन)।

डफ़—'हिस्ट्री आफ़ दी मराठाज़', खण्ड १–२, ग्रेण्ट डफ़ कृत आक्सफ़र्ड संस्करण।

डूंगरपुर—'डूंगरपुर राज्य का इतिहास', ओझा कृत।

ताज—'ताज़-उल-इकबाल तारीख़ भोपाल'—नवाब शाहजहाँ बेगम भोपाल कृत एच० सी० बारस्टो कृत अंग्रेज़ी अनुवाद।

धारच्या—'धारच्या पवारांचे महत्त्व व दर्जा', ओक एवं लेले कृत।

नवाज़िश०—'नवाजिश खाँ के पत्रों का संग्रह' ।

निज़ाम०—'निज़ाम-उल् मुल्क आसफ जाह १', डा० युसुफ़ खाँ कृत।

प० सं०—पत्र संख्या।

पृ०—पृष्ठ संख्या।

पारसनिस—'पेशवे दफ़्तरांतील माहिती' (इतिहास संग्रह)।

पुरन्दरे—'पुरन्दरे दफ़्तर' भाग १–३।

पे० द०—'सिलेक्शन्ज़ फ़ाम दी पेशवा दफ़्तर' खण्ड १–४५, सर देसाई द्वारा सम्पादित। पत्र संख्या ही दी गई है; जहाँ पृष्ठों का उल्लेख है वहाँ वैसा स्पष्ट लिख दिया गया है।

फालके—'शिन्देशाही इतिहासांची साधनें' भाग १–२; पत्र सं० दी गई है।

फु० नो०—फ़ुट नोट।

बड़ोदा—'हिस्टारिकल सिलेक्शन्ज फ़ाम दी बड़ोदा स्टेट रेकर्ड्ज़', जिल्द १।

बयान०—'बयान-इ-वाक़या', अब्दुल करीम काश्मीरी कृत।

बर्नियर—'बर्नियर्ज़ ट्रेवल्ज़', वी० ए० स्मिथ द्वारा सम्पादित।

ब्रह्म०—'ब्रह्मेन्द्र स्वामी चरित्र' पारसनिस कृत; पत्र संख्या ही दी गई है।

बहादुर०—'बहादुर शाह नामा' दानिश मंद खाँ अली कृत।

बुरहान०—'बुरहान-उल्-फ़ुतूहात' ।

भा० इ० सं० मं० त्रै०—'भारत इतिहास संशोधक मण्डल त्रैमासिक'।

भागवत—'होलकर शाही इतिहासांची साधनें'—अं० ना० भागवत द्वारा सम्पादित, खण्ड १; पत्र संख्या ही दी गई है।

भीमसेन—'नुस्ख़ा-इ-दिलकश' भीमसेन कृत।

मध्य०—'मराठी रियासत' मध्य भाग, जिल्द १–४, सर देसाई कृत।

मनुची—'स्टारिया डो मोगोर' जिल्द १–४, मनुची कृत, इर्विन द्वारा सम्पादित।

मा० आ०—'मासीर-इ-आलमगीरी', (बिब० इण्डिका)।

मा० उ०—'मासिर-उल्-उमरा' जिल्दें १–३, (बिब० इण्डिका)।

मालकम—'ए मेमायर 'आफ़ सेन्ट्रल इण्डिया', मालकम कृत, जिल्द १–२, (१८२३ ई०)।

मिरात०—'मिरात्-इ-अहमदी' (गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज़)।

मिर्ज़ा०—'रोज़नामचा'।

मुग़ल०—'मुग़ल एडमिनिस्ट्रेशन', सरकार कृत, दूसरा संस्करण।

मेन क०—'मेन करण्ट्स आफ़ मराठा हिस्ट्री', सर देसाई कृत, दूसरा संस्करण।

राजपूताना—'राजपूताने का इतिहास', ओझा कृत।

राजवाड़े—'मराठ्याँचे इतिहासाचीं साधनें' भाग १–२४, राजवाड़े द्वारा सम्पादित।

रिपोर्ट—'रिपोर्ट आन दी प्रोविन्स आफ़ मालवा एण्ड एडजाइनिंग डिस्ट्रिक्ट्ज़', मालकम कृत (१६२७ संस्करण)।

रुस्तम०—'तारीख़-इ-हिन्दी', रुस्तमअली कृत।

लाल—'छत्रप्रकाश', लाल कवि कृत।

वंश०—'वंश भास्कर', भाग ४, सूर्यमल कृत।

वाड़—'सिलेक्शन्ज़ फ़ाम दी पेशवाज़ डायरीज़', वाड़ एवं पारसनीस द्वारा सम्पादित; प्राय: पत्र सं० ही दी गई है किन्तु जहाँ पृष्ठों का निर्देश किया गया है वहाँ वैसा उल्लेख किया गया है।

वारिद—'मिरात्-इ-वारिदात'।

वीर०—'वीर विनोद', श्यामलदास कृत, खण्ड १–२

सरकार—'दी फ़ाल आफ़ दी मुग़ल एम्पायर', जिल्द १–२, सरकार कृत।

सियार०—'सियार-उल्-मुताख़रीन'।

सुजान०—'सुजान चरित', सूदन कृत।

शिव०—'मुनव्वर-इ-कलाम', शिवदास कृत (ब्रिटिश म्युज़ियम की प्रति)।

श्रीवास्तव—'दी फ़र्स्ट टू नवाब्ज़ आफ़ अवध', आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव कृत।

होलकर०—'होलकरांची कैफ़ियत', दूसरा संस्करण, अं० ना० भागवत द्वारा सम्पादित।

मालवा में युगान्तर

या

अराजकतापूर्ण शताब्दी

पहला अध्याय

सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में मालवा की परिस्थिति

भारतीय इतिहासकार १८ वीं शताब्दी को एक निष्प्रभ युग या अराजकतापूर्ण शताब्दी मानकर कोई ग़लती नहीं करते। यह अराजकता केवल राजनैतिक क्षेत्र तक ही सीमित न थी, किन्तु सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी इसी का ही पूर्ण आधिपत्य था। शताब्दियों का पुराना ढाँचा निश्चित रूप से भग्न हो रहा था। मनुची के समान उदासीन दर्शक ने भी इस बात का अनुभव किया था; उसने लिखा है कि—"ऐसा प्रतीत होता है कि किसी आश्चर्यजनक क्रान्ति की पूरी पूरी तैयारियाँ हो रही हैं।"[1] परन्तु पुनः-निर्माण की कोई भी प्रवृत्ति नहीं देख पड़ती थी। यदि इस शताब्दी को 'क्रान्तिकारी शताब्दी' कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। भारत का सामाजिक एवं सांस्कृतिक नक़शा पूर्णतया बदल गया। भारत के चित्रपट से अनेकानेक राजनैतिक सत्ताएँ सर्वदा के लिए लोप हो गईं। मालवा की भौगोलिक, राजनैतिक तथा उससे भी अधिक शासन-प्रबन्ध

---

[1] मनुची, ३, पृष्ठ २४९

सम्बन्धी एकता एकबारगी नष्ट हो गई, और भारतीय राजनैतिक नक़शे से "मालवा" शब्द बिलकुल उड़ गया; १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में "मालवा" के इतिहासकार ने "मध्यभारत" का विवरण लिखा; उसे "मालवा" की सुध न आई।[1] किन्तु जो विद्यार्थी १८ वीं शताब्दी के भारतीय इतिहास का अध्ययन करता है वह मालवा को भुला नहीं सकता। मालवा मुग़ल साम्राज्य का एक प्रधान सूबा था, उस साम्राज्य के अन्तर्गत उसकी सीमाएँ निश्चित थीं। यद्यपि उसका शासन-संगठन मध्य-कालीन ढंग पर ही था, किन्तु वह अन्य सूबों के प्रबन्ध से किसी भी प्रकार पिछड़ा हुआ न था। इन सब से अधिक महत्त्व की बात यह थी कि मालवा अभी तक अपने विगत महान इतिहास को भूला न था। किन्तु सन् १६९८ ई० से परिवर्तन के चिन्ह देख पड़ने लगते हैं, जिन से मालवा के इतिहास में प्रारम्भ होने वाले एक नवीन युग के आगम की ही सूचना नहीं मिलती परन्तु उस प्रान्त के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक भूगोल में होने वाली महान क्रान्ति का भी पूरा पूरा आभास मालूम पड़ने लगता है।

भौगोलिक

सन् १६९५ ई० में मालवा के अन्तर्गत १२ सरकार एवं ३०९ महल थे, किन्तु सन् १६९७ के पहिले पहिले शासन प्रबन्ध की सुविधा के लिए थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया गया और बीजागढ़ की सरकार मालवा के सूबे से निकाल कर बुरहानपुर के सूबे में सम्मिलित कर दी गई। इस प्रकार इस समय मालवा के अन्तर्गत केवल ११ सरकार एवं २५० परगने ही रह गए थे।[2] इन ११

[1] मालकम, १, पृष्ठ vi-vii

[2] ख़ुलासात (पृ० ३४ अ) के अनुसार बीजागढ़ मालवा प्रान्त की एक सरकार थी। इस सरकार का प्रदेश अब इन्दौर राज्य के नेमाड़ परगने के

सरकारों के नाम थेः—उज्जैन, रायसीन, चन्देरी, सारंगपुर, मागडू, हरिडया गागरोन, कोटड़ी पिरिया, गढ़, मन्दसौर, और नन्दुरबार।[1] स्थूल रूप से दक्षिण में नर्मदा नदी, पूरब में बेतवा एवं उत्तर-पश्चिम में चम्बल नदी इस प्रान्त की सीमाएँ निर्धारित करती थीं। पश्चिम में कांठल एवं बागड़ के प्रदेश मालवा को राजपूताना तथा गुजरात से पृथक करते थे,[2] और उत्तर-पश्चिम में इसकी सीमा हाड़ौती प्रदेश तक पहुँचती थी। मालवा के पूर्व एवं पूर्व-दक्षिण में बुन्देलखण्ड और गोण्डवाना के प्रान्त फैले हुए थे। यद्यपि अनेक स्थान पर बहुत ही उपजाऊ ज़मीन है फिर भी इस

अन्तर्गत आजाता है। (इन्दौर गजे० १, पृ० १०, ४१३-४; इण्डिया० पृ० xxvi; मनुची २, पृष्ठ ४१३-४)

यह परिवर्तन बाद में भी स्थायी रहा। चहार (सन् १७२०) में भी मालवा के अन्तर्गत इस सरकार का उल्लेख नहीं मिलता; पृष्ठ ८० अ, ८० ब; इण्डिया० पृष्ठ lix, १४१–२

[1]चहार में दी गई नामावली इस से कुछ भिन्न है। नन्दुरबार के स्थान पर शाहबाद लिखा है; सर यदुनाथ सरकार के मतानुसार यह नक़ल करने वाले की ही ग़लती है। गढ़ के स्थान पर 'आईन' में कन्नौज दिया गया है, किन्तु दोनों एक ही सरकार का निर्देश करते हैं; कन्नौज के ५७ महलों में एक का नाम गढ़ लिखा है। ख़ुलासात में कोठड़ी पिरिया के स्थान पर कोभरी लिखा है। आईन, २, पृष्ठ १९७; चहार, पृ० ८० ब; ख़ुलासात, पृ० ३४ अ; इण्डिया०, पृ० lix फु०; lx, ५७ फु०, १४२ फु०

[2]बागड़ प्रदेश के अन्तर्गत बांसवाड़ा एवं डूंगरपुर की गुहिल रियासतें फैली हुई हैं, और कांठल के अन्तर्गत प्रतापगढ़ राज्य आता है। दोनों शब्दों से उस सीमाप्रान्तीय प्रदेश का ही निर्देश होता है जहाँ जंगल या कंटकपूर्ण झाड़ी फैली हुई हो। इन तीनों राज्यों को मेवाड़ अपने अधीन मानता था, किन्तु उनके इस अधिकार को मुग़ल सम्राटों ने स्वीकार नहीं किया। प्रतापगढ़ राज्य का कुछ हिस्सा मालवा में भी फैला हुआ है।

प्रान्त का सारा प्रदेश मालवा के पठार पर ही स्थित था। कई स्थानों में बहुत ही घने जंगल भी थे, और उनमें हिंसक पशु बहुतायत से रहते थे; कभी कभी तो जंगली हाथी भी उनमें मिल जाते थे। आबहवा न तो अधिक गरम और न बहुत ठण्डी ही थी और मालवा की ग्रीष्म की रातें बहुत ही सुन्दर एवं आह्लाद-जनक मानी जाती थीं; प्रान्तीय सूबेदारों तथा अन्य शासकगणों के लिए साम्राज्य के अन्य स्थानों की तुलना में यह प्रान्त बिलकुल ही अस्पृहणीय न था।

इस प्रान्त में भी अनेक बड़े बड़े शहर बसे हुए थे, कई व्यापार के अच्छे केन्द्र थे और उज्जैन की तरह कुछ शहरों का ऐतिहासिक महत्त्व भी बहुत था। प्रधान शहर ये थे,—उज्जैन, चन्देरी, धार, माण्डू, गढ़ा (माण्डल), सिरोंज, नरवर, कोटा, और मन्दसौर। व्यापार के राजमार्ग इस प्रान्त के बड़े शहरों को भारत के दूसरे बड़े शहरों से सम्बद्ध करते थे और प्रधान सड़कों पर थोड़ी थोड़ी दूरी पर यात्रियों के ठहरने आदि की सुविधा का पूरा पूरा प्रबन्ध था।[1]

शताब्दियों से यह प्रान्त संस्कृति एवं सभ्यता का केन्द्र रहा था। कोई सवा सौ बरसों से मुग़लों की छत्र-छाया में रह कर उन के दृढ़ शासन से लाभ उठा कर मुग़ल साम्राज्य के साथ ही साथ यह प्रान्त भी समृद्धिशाली हो गया था।

आर्थिक

[1] मनुची, १, पृ० ६८; चहार०, पृ० १२०–१२१ ब। चहार की मार्ग-प्रदर्शिका (रोड बुक) के आधार पर सरकार ने इन मार्गों का विवरण लिखा है, उसमें जहाँ राह में कोई शहर या गाँव नहीं आता है वहाँ यात्रियों के ठहरने के लिए सरायों आदि का उल्लेख किया। इण्डिया०, पृ० xcii–xcv, १६८-१७१.

जो सड़कें इस प्रान्त में बनी हुई थीं वे केवल सैनिक दृष्टि से ही नहीं बनाई गई थीं, बल्कि वे व्यापार-मार्ग के लिए भी उपयुक्त थीं। इन मार्गों से प्राप्त होने वाली सुविधा से इन प्रान्तों के उद्योग धन्धों की बहुत वृद्धि हुई। जो युरोपीय व्यापारी भारत के पश्चिमी किनारे पर बस गए थे, वे प्रायः मालवा की राह ही उत्तर भारत को जाते थे। बड़ी बड़ी नदियाँ राह में पड़ती थीं, अतएव बरसात के मौसम में यह रास्ता बन्द हो जाता था। ऐसे वक्त बड़ी आवश्यकता होने पर यात्री अहमदाबाद वाले रास्ते से जाते थे। यह दूसरा रास्ता अधिक सीधा था, और साल भर खुला भी रहता था, किन्तु कई कारणों से यात्री और विशेषतया व्यापारी इस राह से आते-जाते न थे। "यह सड़क कई राजाओं के राज्य में होकर गुज़रती थी, और ये राजा व्यापारियों को तंग किया करते थे; अपने राज्य में से गुज़रनेवाले माल पर चुंगी भी वसूल कर लेते थे।"[१] मालवे में सिरोंज शहर में टेवरनियर एक ऐसी दूकान का भी उल्लेख करता है, जहाँ से ३% की दर पर सूरत के लिए हुण्डी एवम् विनिमयात्मक पत्र (Letters of Exchange) भी मिल जाते थे।[२]

मुग़ल साम्राज्य के विभिन्न सूबों में उद्योग-धन्धों की दृष्टि से गुजरात के बाद मालवा की ही गणना की जाती थी।[३] "यहाँ बहुत ही महीन धागे के कपड़े बुने जाते थे।"[४] टेवरनियर लिखता है कि—"सिरोंज में ऐसी बारीक मलमल बुनी जाती है कि उसको ओढ़ लेने पर भी ओढ़ने वाले के

---

[१] मनुची, १, इण्ट्रोडक्शन, पृ० lvii–lviii, अध्याय १८

[२] टेवरनियर, १, पृ० ३६

[३] औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८०

[४] आईन, २, पृ० १९५; इण्डिया०, पृ० lxi

अंग-अंग स्पष्ट देख पड़ते हैं, मानों उसके शरीर पर कुछ भी कपड़ा न हो। व्यापारी इस कपड़े को विदेशों में भेज सकते हैं, और इस प्रान्त के सूबेदार मुग़ल सम्राट् के अन्तःपुर एवं बड़े बड़े अमीरों के लिए ऐसा बहुतसा कपड़ा भेजा करते हैं। सम्राज्ञियाँ तथा बड़े बड़े अमीरों की स्त्रियाँ गरमी के दिनों में इसी प्रकार के कपड़े के बने वस्त्र पहनती हैं; और बादशाह तथा अमीर उस वेश-भूषा को बहुत ही पसन्द करते हैं, और उन स्त्रियों का नाच देखते हैं।"[1]

मालवा के रंगीन, छपे हुए कपड़े भी प्रसिद्ध थे और वे बहुतायत से मिलते भी थे।[2] इस कपड़े को "छींट" कहते थे और विदेशों तक में इसकी माँग थी। यह रंगबिरंगे कपड़े कई स्थानों में बनते थे, किन्तु सिरोंज में बुने और रंगे हुए कपड़ों की विशेष प्रसिद्धि थी। ऐसा कहा जाता था कि सिरोंज में रंगे हुए कपड़े दूसरे स्थानों के कपड़ों से अधिक नूतन और सुन्दर ही नहीं दिखाते थे, किन्तु ज्यों-ज्यों यह कपड़े धुलते जाते थे उनका रंग अधिकाधिक निखरता जाता था। यह कहा जाता था कि इस विशेषता का प्रधान कारण सिरोंज के पास से बहने

---

[1] टेवरनियर, १, पृ० ३६-७

यह निश्चित तौर से ज्ञात नहीं है कि साम्राज्य की ओर से सिरोंज में भी कपड़े का कोई शाही कारखाना था या नहीं; ऐसा एक कारखाना बुरहानपुर में अवश्य था। राज्य-कर्मचारियों को इस बात की ताकीद की जाती थी कि वे अपने अपने प्रान्त के उद्योग-धन्धों की पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करें और उस स्थान की अच्छी अच्छी वस्तुएँ सम्राट् की सेवा में भेंट की जावें। दूसरे बड़े बड़े अमीर भी इन उद्योग-धन्धों को अपनाते थे। मनुची, २, पृ० ४३१; मुग़ल०, पृ० १८७–९०

[2] मनूची, २, पृ० ४२५

वाली नदी के पानी के विशेष गुण हैं; और बरसात के समय के मैले पानी में यदि यह रंगाई की जाती थी तब तो यह विशेषता अत्यधिक देख पड़ती थी।[१] मालवा की यह "छींट" ईरान में बहुतायत से बिकती थीं और वहाँ की साधारण जनता इन छींटों के पहनने के कपड़े, बिस्तर की चादरें या तकियों की खोलियाँ बनाते थे। ईरान की औरतों में तो इन छींटों का बहुत ही प्रचार था, और सिरोंज के व्यापारी, ईरान के रीति-रस्म तथा वहाँ की रुचि के अनुकूल कपड़ा बनवा कर तथा रँगवा कर वहाँ भेजते थे। टर्की तक में इन छींटों की खपत होती थी।[२] इन छींटों का व्यापार प्रायः अरमीनिया-निवासी व्यापारियों के ही हाथ में था, ये अरमीनियन मालवा में आकर बस गए थे; किन्तु कई बार युरोपियन व्यापारी भी आते जाते इस प्रकार के कपड़ों का व्यापार करते थे।[३] छींट के एक-एक थान का मूल्य २० से ६० रुपये तक का होता था।[४]

"मालवा की साम्पत्तिक अवस्था भी बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी; यहाँ अफ़ीम, गन्ना, अंगूर, सुगंधित द्रव्य, खरबूजे और खाने के पान जैसी मूल्यवान फ़सलें बहुतायत से पैदा होती थीं"।[५] जब टेवरनियर मालवा में यात्रा कर रहा था, तब यहाँ कोसों दूर तक फैले हुए गेहूँ और चावल के खेतों को देख कर उसे फ़्रांस में ब्यूसे के खेतों की सुध आ गई।[६] सुजान-

---

[१] टेवरनियर, १, पृ० ५६; २, पृ० २९-३०

[२] टेवरनियर, १, पृ० ५६; २, पृ० ५

[३] मनुची, १, पृ० ६८

[४] टेवरनियर, २, पृ० ५

[५] औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८०

[६] टेवरनियर, १, पृ० ५७

राय लिखता है कि—"साल में दोनों फ़सलें बहुत ही अच्छी पकती हैं; गेहूँ, अफ़ीम, गन्ने, आम, खरबूजे और अंगूर मालवा में बहुत ही अच्छे होते हैं। कुछ स्थानों में, विशेषतया (माण्डू सरकार के अन्तर्गत) हासिलपुर में तो साल में तीन तीन बार अंगूर की फ़सलें आती हैं। नन्दुरबार तो हमेशा से अंगूर के लिए प्रसिद्ध रहा है। खाने के पानों के स्वाद की तो कुछ न पूछो।"[१] मालवा के खरबूजे तो बहुत बड़ी संख्या में बराबर दिल्ली भेजे जाते थे, जहाँ वे सम्राट के भोजन में परोसे जाते थे और बड़े बड़े अमीर भी बड़े चाव से खाते थे।[२] सुस्वादु इमलियाँ तो बीजागढ़ सरकार की एक ख़ास चीज़ थीं।[३] नमक भी मालवा में बनाया जाता था।[४]

सुन्दर घने जंगल सारे प्रान्त में यत्रतत्र पाए जाते थे, और उनमें अनेकानेक प्राकृतिक बहुमूल्य वस्तुएँ बहुतायत से मिलती थीं। मनुची अपनी यात्राओं के विवरण में मालवा में कई बड़े बड़े ऐसे अगम्य पहाड़ों का वर्णन करता है, जिन की चोटियाँ सुन्दर घने जंगलों से ढकी हुई थीं और जिनके तले विशुद्ध स्फटिक जल के सोते बहते थे।[५] बीजागढ़, हण्डिया और गढ़ के जंगलों में जंगली हाथी भी पाए जाते थे।[६] धार के जंगलों में लम्बे लम्बे बाँस होते थे; और वहाँ लाख भी बनती थी, जिससे वहाँ लखारों की अक्सर ज़रूरत पड़ जाती थी।[७]

---

[१] ख़ुलासात, पृ० ३४ अ; इण्डिया०, पृ० ५६
[२] नवाज़िश०, पृ० २ ब, ३ अ
[३] इण्डिया०, पृ० lxi
[४] मनुची, २, पृ० ४३०
[५] ख़ुलासात, पृ० ३४ अ
[६] इण्डिया०, पृ० lxi, ५६
[७] नवाज़िश०, पृ० २९ ब

मुग़ल साम्राज्य की छत्र-छाया में आने के बाद पहले सौ वर्षों में मालवा की समृद्धि बढ़ती गई, और १७ वीं शताब्दी के मध्य में यह प्रान्त समृद्धि के शिखर पर पहुँच गया। आईन-इ-अकबरी के अनुसार इस प्रान्त की आमदनी रु० ६०,१७,१३६ की थी,[१] जो बढ़ते-बढ़ते दुगनी से भी अधिक हो गई, और सन् १६५४ ई० में यह संख्या रु० १,३६,३२,६३३ तक पहुँच गई;[२] जहाँ तक ज्ञात है इस प्रान्त की आमदनी की यह चरम सीमा थी। सन् १६५८ के गृह-युद्ध का मालवा पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ा, और सन् १६६७ ई० में आमदनी घट कर रु० ६६,०६,२५० ही रह गई थी।[३] इस समय एक बार फिर सारे प्रान्त में पूर्ण शान्ति छा रही थी और सन् १७०० ई० में फिर आमदनी बढ़ कर रु० १,०२,०८,६६७ तक पहुँच गई,[४] किन्तु इससे आगे बढ़ने न पाई, इस समृद्धि-काल का शीघ्र ही अन्त हो गया।[५] युद्ध आदि का प्रभाव मालवा की आमदनी पर स्पष्ट देख पड़ता है, किन्तु जिस शीघ्रता

---

[१] आईन०, २, पृ० १९७; इण्डिया०, पृ० xxxii, lx

[२] दस्तूर-उल-अमल; इण्डिया०, पृ० ix, xxix

[३] मनुची, २, पृ० ४१३

[४] दस्तूर-उल-अमल, हस्त लिखित प्रति—सी; इण्डिया०, पृ० xxxii, ix

[५] भिन्न भिन्न वर्षों में होने वाली मालवा की आमदनी का पूरा ब्योरा यों है :—

१६६५—रु० ९१,६२,५०० (बर्नियर, पृ० ४५७)—९ सरकार, १९० परगने।

१६९५—रु० ९२,९५,४२५ (खुलासात, पृ० ३४ अ)—१२ सरकार, ३०९ महल।

१६९७—रु० ९९,०६,२५० (मनुची, २, पृ० ४१३)—११ सरकार, २५० परगने।

के साथ यह घटी हुई आमदनी फिर बढ़ जाती थी, उस से १७ वीं शताब्दी के इन पिछले वर्षों में मालवा की साम्पत्तिक सम्पन्नता का ठीक ठीक पता लगता है ।

सैनिक महत्त्व

युद्ध-शास्त्र एवं सैनिक दृष्टि से भी मालवा का महत्त्व बहुत था। उत्तरी भारत को दक्षिणी भारत से जोड़ने वाला, तथा दोनों में सम्बन्ध स्थापित कर सकने वाला यही एक प्रान्त था। दक्षिण की ओर जाने वाले समस्त बड़े बड़े महत्त्वपूर्ण सैनिक मार्ग मालवा में ही होकर निकलते थे; गुजरात एवं पश्चिम के बन्दरों से भी सम्बन्ध स्थापित करने वाली सड़कें मालवा के ही बीच में होकर गुज़रती थीं। राजपूताना, गोण्डवाना, या बरार में युद्ध या आक्रमण के लिए मालवा ही एक अच्छा सैनिक केन्द्र बन सकता

१७००—रु० १,०२,०८,६६७ (दस्तूर-उल-अमल)—११ सरकार, ११७ महल।

१७०७—रु० १,००,९७,५४१ (हेरिस कृत 'वॉयेजेस' में रेमूसियों का उल्लेख)

१७०७—रु० १,००,९९,५१६ (जगजीवनदास गुजराती)

सन् १७०७ ई० में सम्राट् बहादुरशाह की जानकारी के लिए साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तों की आमदनी का एक विवरण तैयार किया गया था; उसी के आधार पर ही जगजीवनदास गुजराती ने अपने 'मुन्तख़ब-उत्-तवारीख़' (ब्रिटिश-म्यूजियम एडिशनल मेनसक्रिप्ट नं० २६,२५३, फ़ोलियो ५१ और आगे) में आमदनी आदि के अंक दिये हैं। मनुची, २, पृ० ४१३

सन् १७२०—रु० ९०,०४,५९३ (चहार०, पृ० ७९)—११ सरकार, २५९ महल।

इण्डिया०; पृ० lix, ix, ५६, १४१

था।[1] और विशेषतया जब औरंगज़ेब युद्ध करने के लिए दक्षिण चला गया तब तो इस प्रान्त का महत्त्व और भी बढ़ गया। औरंगज़ेब या तो अपने किसी शाहज़ादे या किसी बहुत ही विश्वासपात्र व्यक्ति को इस प्रान्त का सूबेदार नियुक्त करता था।[2] आगामी युग में तो यह महत्त्व बहुत ही अधिक मात्रा में बढ़ने वाला था। जब दक्षिण में औरंगज़ेब मरहठों को दबाने का प्रयत्न कर रहा था, और जब मरहठों ने मुग़ल साम्राज्य के विरुद्ध आक्रमणशील नीति प्रारम्भ की, तब तो वे मालवा पर इसी उद्देश्य से आक्रमण करने लगे कि यों वे शाही सेना तथा केम्प का उत्तरी भारत से सम्बन्ध विच्छेद कर दें। औरंगज़ेब के मरते ही साम्राज्य की राजधानी एक बार फिर उत्तरी भारत में लौट आई। किन्तु शीघ्र ही साम्राज्य के अन्तर्गत दो प्रवृत्तियाँ एकाएक प्रबल हो उठीं; पतनोन्मुख साम्राज्य में नए-नए स्वाधीन राज्यों की स्थापना करना, एवं मरहठों की सत्ता की स्थापना तथा उसका विकास। प्रत्येक दल ने अपना-अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए मालवा को अपने अधिकार में लाने का पूरा प्रयत्न किया। इस खींचातानी का प्रभाव बहुत भयंकर एवं साथ ही महत्त्वपूर्ण हुआ। बढ़ती हुई अराजकता ने १८ वीं शताब्दी में मालवा के सैनिक एवं राजनैतिक महत्त्व को बढ़ा दिया।

रुस्तमअली ने अपने "तारीख़–इ–हिन्दी" ग्रन्थ में मालवा सम्बन्धी बातें ख़ुलासात से ही उद्धृत कर दी हैं, अतः उस ग्रन्थ से प्रान्त की तत्कालीन परिस्थिति, आर्थिक दशा एवं राजनैतिक संगठन पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता है। रुस्तम०, पृ० ४७-८

[1] औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८१

[2] मनुची, २, पृ० ४३०

यद्यपि कोई एक शताब्दी से भी अधिक मालवा में एक स्वतन्त्र मुसलमानी बादशाहत रही, किन्तु फिर भी वहाँ पर कभी भी मुसलमानों का पूर्ण आधिपत्य स्थापित नहीं हो सका। मालवा की स्वतन्त्र मुसलमानी बादशाहत के पिछले वर्षों में तो शासन-नीति आदि पर भी हिन्दुओं का ही प्रभाव बना रहा; बरसों तक बसन्तराय प्रधान मन्त्री रहा और युगों तक राजपूतों ने इस बादशाहत के शासन की बागडोर सम्हाली। इस प्रान्त की प्रजा विशेषतया हिन्दू ही थी, जो अनेकानेक जातियों में विभक्त हो गई थी। जो व्यक्ति खेती-बारी में ही अपना जीवन लगा देते थे ऐसी हिन्दू-प्रजा बहुतायत से थी। भारत की कुछ आदिम जातियों ने भी इस प्रदेश में अपना निवास स्थान बना रखा था; पश्चिमी एवं उत्तर—उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों में भील तथा मीना लोग रहते थे, और दक्षिणी भागों में विशेषतया गोण्डों की ही आबादी थी। ख़ानाबदोश जातियाँ भी इस प्रान्त में घूमती फिरती थीं। उत्तरी एवं उत्तर-पूर्वीय भागों में जाटों की संख्या बहुतायत से थी। इस समय का राजपूत समाज स्पष्टरूपेण दो विभिन्न भागों में बँटा हुआ था। पहले विभाग में उन राजपूतों की गणना की जा सकती थी, जो ७वीं या ८वीं शताब्दी में, जब कि समस्त भारत पर राजपूतों का ही आधिपत्य था, मालवा में आकर बस गए और यहाँ के शासक बन बैठे; या जब प्रथम बार उत्तरी भारत में मुसलमानों के आक्रमण होने लगे तथा सिन्धु-गंगा नदियों के मैदान में स्थित राजपूत राज्यों का जब पतन हुआ तब उन प्रदेशों को छोड़ कर वे मालवा में चले आए थे एवं यहीं बस गए थे। भौगोलिक कारणों से इन राजपूतों का राजपूताने के राजपूत समाज से कोई विशेष स्थायी सम्बन्ध न रह सका। उन्होंने मालवा को अपना घर बना लिया था,

राजनैतिक

इस प्रान्त की बादशाहत उनकी अपनी बादशाहत हो गई थी, तथा इस प्रान्त की समस्याएँ उनकी ही समस्याएँ बन गई थीं; उन्होंने मालवा को पूर्ण रूप से अपना लिया था। इन राजपूतों में से कई घरानों ने इस प्रान्त की सैनिक जातियों से सम्बन्ध स्थापित कर लिया और उनमें मिल गए। जब मुग़लों ने मालवा को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया उस समय यही प्रारम्भिक राजपूत इस प्रान्त के ज़मींदार थे और इनमें से कई घराने मुग़ल साम्राज्य की छत्र-छाया में भी ज़मींदार बने रहे। मुग़ल साम्राज्य की स्थापना के पूर्व के काल में मालवा में "भिलाला" या "सोंधिया" जैसी अनेकानेक मिश्रित जातियाँ पैदा हो गई थीं;[1] ये जातियाँ सारे मालवा में बिखरी हुई थीं, किन्तु विशेषतया मध्य तथा दक्षिणी प्रदेशों में ही उनकी संख्या तथा शक्ति बहुत अधिक थी। किन्तु मालवा में बसने वाले इन प्रारम्भिक राजपूत घरानों में से कई ने अपने कुल को विशुद्ध बनाए रखने का पूरा पूरा प्रयत्न किया और इसी कारण राजपूताने के राजपूतों ने उनके साथ अपना सम्बन्ध भी बनाए रखने में कोई आपत्ति न की। परन्तु सन् १६६८ ई० में मालवा में राजपूतों का एक दूसरा विभाग और था जो स्वयं को उपर्युक्त राजपूतों से अत्यधिक विशुद्ध एवं एक मात्र सच्चा राजपूत बताता था। राजपूताना के राजपूत राजघरानों के कई भाई-बेटों ने मुग़लों की पूर्ण स्वामि-भक्ति के साथ सेवा की, उनके ही कार्य में अपना पसीना ही नहीं रुधिर भी बहाया, और उन सेवाओं के फलस्वरूप उन्हें या उनके वंशजों को मालवा में बड़ी बड़ी जागीरें दी गईं; मालवा में नए स्थापित

[1] मालकम, १, पृ० ५११-६

यह राजपूत जागीरदार एवं राजपुत्र अपने भाई-बेटों, सगे सम्बन्धियों, मित्रों अपने विश्वासपात्र साथी एवं भृत्यों को भी अपने साथ मालवा में ले आए और यहाँ नवीन राज्यों की नींव डाली, जिन में से कई आज भी स्थित हैं। राजपूताने से आने वाले राजपूतों का यह नया दल क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था, और यही लोग अपने को उच्चतम कक्षा के विशुद्ध-वंशीय राजपूत बताते थे। ऐतिहासिक घटनाओं ने राजपूताने के राजपूत राजघरानों को अद्वितीय गौरव प्रदान किया था, और यह राजपूत उन्हीं महान राजपूत घरानों के वंशज थे; साथ ही, इन नवीन राजपूत शासकों को मुग़लों का पूरा सहारा था। अपने वंश, राजनैतिक प्रभाव एवं सत्ता के आधार पर इन राजपूत शासकों तथा उनके साथियों ने मालवा में राजपूत-समाज सम्बन्धी बातों में अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया। मालवा के सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में कुछ ही काल पहले उनका प्रवेश हुआ था। राजनैतिक दृष्टि से वे अपनी शक्ति संगठित नहीं कर पाए थे, किन्तु उपर्युक्त कारणों से प्रान्त में उनका प्रभाव बहुत बढ़ा-चढ़ा था।

इस प्रान्त में मुसलमान भी बसे हुए थे। यद्यपि अफ़ग़ान सारे प्रान्त में फैले हुए थे किन्तु उनका क्षेत्र सीमित ही था। मुग़लों ने तो प्रायः शहरों तथा शाही तहसीलों, थानों या अन्य शासन केन्द्रों को ही अपनाया।[१] मुसलमानों की कुल संख्या बहुत ही थोड़ी और एक प्रकार से नगण्य ही थी।

मालवा की आबादी में अनेकानेक विभिन्न समाजों का सम्मिश्रण

---

[१] मुग़ल०, पृ० ५५-६

था। १७ वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से पहले कोई डेढ़ शताब्दी तक मुग़लों ने दृढ़ शासन द्वारा मालवा को शान्ति प्रदान की थी और इसी कारण उस काल के प्रान्तीय इतिहास में स्थानीय महत्त्व रखने वाली घटनाएँ बहुत ही थोड़ी हुईं।[1] नवीन शताब्दी के प्रारम्भ के साथ ही इस शान्ति-पूर्ण युग का अन्त हो गया। प्रान्त में भी अशान्ति-कारक सामग्री का कोई अभाव न था। सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि— "जिन असभ्य, असंस्कृत आदिम जातियों ने प्रान्त के सुदूर अज्ञात स्थानों में जंगलों या पहाड़ों में आश्रय लिया था, यद्यपि उनकी संख्या बहुत थी, और आबादी का एक बहुत बड़ा भाग उन्हीं से भरा हुआ था, फिर भी वे इतने असभ्य एवं असंगठित थे कि उनका कोई भी राजनैतिक महत्त्व न था।"[2] किन्तु अराजकता के समय तो तत्कलीन परिस्थिति से लाभ उठा कर प्राण और माल को आपत्पूर्ण बना देना उनके बाँयें हाथ का खेल था। जाटों और गोण्डों को दृढ़ शासन के बिना दबाए रखना एक असम्भव बात थी, और सन् १६६८ ई० में इन दोनों जातियों में अशान्ति उत्पन्न होने लगी थी, जिसका मालवा पर प्रभाव पड़ना एक अवश्यम्भावी घटना थी। "बरार या गोण्डवाने, बुन्देलखण्ड या पूर्वीय राजपूत राज्यों में जब जब विद्रोह उठा या अशान्ति उत्पन्न हुई तब तब वह आप ही आप सम्पर्क द्वारा मालवा में भी फैल गयी।"[3] मालवा में भी प्रारम्भिक राजपूत एवं अफ़ग़ानों के स्वरूप में बहुत ही विस्फोटक सामग्री विद्यमान

---

[1] औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८२

[2] औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८०

[3] औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८१

थी, और इस प्रान्त में भी विद्रोह फैलने में देर न लगती थी। ये राजपूत अपने अपकर्ष का अनुभव करते थे; अपने स्वातन्त्र्य, अपनी सत्ता तथा साथ ही अपनी ज़मींदारियों का अभाव भी उन्हें खटकता था। इसी प्रकार के भाव और विचार अफ़ग़ानों के दिलों में भी उठते थे; जब जब कोई विद्रोह उठता था तब तब वे उसमें शामिल हो जाते थे, उस समय उन्हें इस बात का ख़याल नहीं आता था कि वे राजपूतों की मदद कर रहे हैं या मरहठों का साथ दे रहे हैं; कट्टर मुसलमान मुग़ल सम्राट भी उन्हें शत्रु ही प्रतीत होता था। उनका सारा रोष और विरोध साम्राज्य की सत्ता तथा उसके आधिपत्य के ही प्रति था।

इन नए प्रविष्ट राजपूत घरानों और उनकी सद्यः-स्थापित ज़मींदारियों के कारण मालवा की प्रान्तीय राजनीति में एक अत्यावश्यक स्थायित्व आ गया था एवं साम्राज्य की नींव अधिकाधिक दृढ़ हो गई थी। इन नए शासकों को मुग़ल सम्राटों ने ही बढ़ाया, उन्हीं की मदद से उन्हें यह सब सत्ता, महत्त्व एवं ज़मींदारियाँ आदि प्राप्त हुई थीं, अतएव वे कभी भी साम्राज्य की सत्ता का विरोध नहीं करते थे। इस बात का निश्चित-रूपेण प्रतिपादन किया जा सकता है कि मालवा में इन नवीन राज्यों की स्थापना एवं अनेकानेक ज़मींदारियों की सृष्टि मुग़लों की एक निश्चित नीति का ही परिणाम था; मुग़ल सम्राट चाहते थे कि उत्तरी भारत एवं दक्षिणी भारत के बीच में कुछ ऐसे राज्य या सत्ताएँ स्थापित की जावें जो सर्वदा मुग़ल साम्राज्य का ही साथ दें। राजपूताना के जो विद्रोही राजा यदा-कदा साम्राज्य का विरोध करने को उतारू रहते थे, उनकी उस विरोधी भावना को भी प्रतिबन्ध में रखने के लिए मालवा के यह नवीन राजपूत

ज़मींदार सहायक हो सकते थे। कोटा को जब एक स्वतन्त्र राज्य बनाया गया और उसको सब अधिकार दिए गये तब से इस नीति का प्रारम्भ होता है।

किन्तु इन सद्यः-स्थापित राज्यों में आन्तरिक निर्बलता के भी अंकुर विद्यमान थे। प्रायः यही हुआ कि इन राज्यों के स्थापकों के वंशज निर्बल तथा अयोग्य शासक ही निकले। औरंगज़ेब के शासन-काल के पिछले दिनों में मालवा प्रान्त में ऐसे कई नवीन राज्यों की स्थापना हुई, किन्तु इस समय इन राज्यों के संस्थापक या उनके वंशज सुदूर दक्षिण में शाही सेना में सेवा करते रहे, जिससे उन्हें इस बात का समय न मिला कि वे अपने राज्यों में अपना शासन तथा अपनी सत्ता संगठित करके अपनी प्रजा एवं अपने राज्यों पर अपना अधिकार दृढ़तर बना सकें। इन निर्बल, असंगठित राज्यों से यह आशा रखना कि वे अराजकता के समय साम्राज्य की सहायता कर सकेंगे, एक बहुत बड़ी मूर्खता की बात थी, क्योंकि ऐसे समय सब से पहिले उनके सम्मुख उनके स्वयं के अस्तित्व का प्रश्न उपस्थित होने को था। मालवा में शाही सेना तथा सत्ता की पूर्ण विफलता का यही एक मात्र कारण है। जहाँ तक इन राज्यों के शासकों को इस बात की कुछ भी आशा रही कि अन्त में साम्राज्य की ही विजय होगी वे साम्राज्य की सहायता करते रहे, किन्तु ज्यों ही साम्राज्य का पतन एवं उसका विध्वंस उन्हें अवश्यम्भावी देख पड़ा, उन्हें केवल इसी बात की चिन्ता सताने लगी कि किस प्रकार वे अपनी परिस्थिति एवं अपने अस्तित्व को सुरक्षित बना सकते थे; इसलिये शाही सेना और उसके सेनापतियों को मरहटों के विरुद्ध कोई सहायता नहीं मिल सकी, जितनी सेना लेकर

वे दिल्ली से निकले थे उसी को लेकर उन्हें मरहठों तथा प्रान्त में मरहठों की सहायता करने वाले विद्रोहियों का सामना करना पड़ता था।

इसी कारण इस प्रान्त में परस्पर-विरोधी तथा साम्राज्य के द्रोही व्यक्तियों की संख्या और अराजकता-उत्पादक सामग्री बहुतायत से थी; मालवा, साम्राज्य का सबसे अधिक विद्रोहपूर्ण एवं अनवस्थित प्रान्त बन बैठा। मुग़ल-शासन की प्रथम शताब्दी में उत्तर से दक्षिण भारत को जाने वाली सब सेनाएँ इसी प्रान्त में होकर निकलती थीं, दक्षिण में विजयार्थ भेजी जाने वाली सेनाओं का यह एक महत्त्वपूर्ण सैनिक केन्द्र था; किन्तु इन पिछले २०-२५ वर्षों में साम्राज्य की सब सेनाएँ सुदूर दक्षिण में ही एकत्रित कर ली गई थीं। पुनः इस प्रान्त की विभिन्न सीमाओं में जो विद्रोहाग्नि धीरे धीरे प्रज्वलित हो रही थी, उस को साम्राज्य पूर्ण तरह से दबा नहीं सका था; और इसी कारण साम्राज्य की सैनिक सत्ता का अब पहिले जैसा दबदबा भी नहीं रह गया था। औरंगज़ेब की कट्टर असहिष्णुता-पूर्ण धार्मिक नीति से भी साधारण हिन्दू प्रजा में बहुत असंतोष फैलने लगा था।[1]

शासन-प्रबन्ध

किन्तु इसके साथ ही साम्राज्य के शासन का संगठन तथा उसकी व्यवस्था पहिले के से सुदृढ़ नहीं रह गए थे, उनमें निर्बलता निरन्तर बढ़ती जा रही थी; और मालवा के प्रान्तीय शासन में तो यह ह्रास स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष देख पड़ता था। "जिस कक्षा के सूबेदार एवं फ़ौजदार इस समय भेजे जाते थे, उनकी श्रेणी इतनी हीन तथा उनकी सैनिक शक्ति इतनी कम

[1] उज्जैन में दंगा, अप्रेल १६७०; अख़बारात, १३ वाँ जुलूसी सन्, पृष्ठ १७। अमीन-इ-जज़िया का रतलाम में मारा जाना, अख़बारात,—जून ८,९, सन् १६९५।, औरंगजेब, ३, पृष्ठ २८३

होती थी कि वे विद्रोहियों को दबा नहीं सकते थे।"[१] इस विषमावृत अवस्था से निकलना मुग़ल शासकों एवं राजनीतिज्ञों के लिए असम्भव-सा हो रहा था। बही-खातों के अनुसार भी सूबेदार के साथ ही साथ प्रान्त के अन्य अधिकारियों की भी आमदनी घट रही थी और स्थानीय ज़मींदारों से कुछ भी रुपया वसूल करना असम्भव-सा हो रहा था। आमदनियाँ घट जाने से सूबेदार आदि अधिकारी आवश्यक सैनिकों का वेतन भी नहीं दे सकते थे, और इनके सैनिकों की संख्या घटती जा रही थी। सर यदुनाथ लिखते हैं कि—"राव दलपत, रामसिंह हाड़ा, और जयसिंह कछवाहा के समान जिन व्यक्तियों के अधिकार में वंश परंपरागत राज्य थे, उनके सिवाय मुझे किसी भी ऐसे अमीर का नाम नहीं मिलता, जिसके सैनिक दल में एक हज़ार भी सैनिक हों।"[२] मालवा प्रान्त के अधिकारी इस प्रवृत्ति के अपवाद न थे; आगामी युग में विरोध एवं विद्रोह की वृद्धि होने वाली थी, प्रान्तीय शासन संगठन की पूर्ण विफलता एक अवश्यम्भावी बात थी।[३] मुग़लों के शासन काल में प्रान्तीय स्वदेशाभिमान की प्रवृत्ति को कुछ भी उत्तेजना नहीं मिली, इसके विरुद्ध जो कुछ भी ऐसी प्रवृत्ति पहिले से विद्यमान थी, उसको इसी कारण दबा दिया गया कि वह साम्राज्य के लिए हितकर न समझी गई। इस प्रान्त को अराजकता के उमड़ते हुए प्रवाह का सामना करना था, किन्तु इस अवश्यम्भावी आपत्ति का निवारण करने या उसको सफलता-पूर्वक रोकने के लिए कोई तैयार न था, किसी को

[१] औरंगजेब, ५, पृ० १०–११, ४५१-२; भीमसेन, २, पृष्ठ १३९ अ, १४० अ

[२] औरंगजेब, ५, पृ० ४५३-४

[३] औरंगजेब, ५, पृ० ४५२

इस प्रश्न पर कुछ विचार करने के लिए बिलकुल ही अवसर न था !

मालवा के बारे में सुजानराय ने लिखा है कि—"वहाँ प्रत्येक व्यक्ति, वह किसान, बनिया, कारीगर, चतुर शिल्पी या दूसरा कोई भी क्यों न हो, अपने साथ कोई न कोई शस्त्र अवश्य रखता है।"[१]

सामाजिक परिस्थिति

हिन्दू समाज मुख्यतः चार वर्णों में विभक्त था, और प्रत्येक वर्ण न जाने कितनी जातियों तथा उपजातियों में बँटा हुआ था; यह वर्ण-विभाग एक बहुत उलझी हुई समस्या ही न थी, किन्तु इसमें समय के साथ कट्टरता भी बहुत आ गई थी। हिन्दू-समाज पर और विशेषतया राजपूतों पर तो ब्राह्मणों का पहले का सा प्रभुत्व नहीं रह गया था; इस समय राजपूत ही हिन्दू समाज पर अपना एक मात्र आधिपत्य जमाए बैठे थे। ब्राह्मणों में न तो उनकी प्राचीन विद्वत्ता ही पाई जाती थी और न उनकी आर्थिक स्थिति ही अच्छी थी; धार्मिक विधि एवं कर्मकाण्ड से भी अनेक ब्राह्मण पूर्णतया अनभिज्ञ ही थे।[२] किन्तु उज्जैन का धार्मिक महत्त्व अब भी बना हुआ था, यद्यपि वहाँ प्रायः ध्वसांवशेष ही रह गए थे, फिर भी हज़ारों यात्री सैकड़ों कोसों की दूरी से चले आते थे।[३]

मालवा के राजपूतों के दोनों विभागों एवं उन में पाई जाने वाली

---

[१] ख़ुलासात, पृ० ३४ अ; इण्डिया०, पृ० lxi, ५६

[२] यह विभाग विशेषतया मालकम लिखित "मेमायर" (खण्ड २) के आधार पर ही लिखा गया है। जो जो विशेषताएँ मरहठों के आधिपत्य के फल-स्वरूप मालवा के सामाजिक जीवन में आगईं, उनको छोड़ दिया है। मालकम, २, पृ० १२४

[३] मनुची, २, पृ० ४३०; इण्डिया०, पृ० ix

विभिन्नताओं का कुछ उल्लेख पहिले किया जा चुका है। यहाँ इतना और कहा जा सकता है कि इन सद्यः-स्थापित राजपूतों ने न तो प्रथम विभाग के साथ विवाहादि सम्बन्ध ही स्थापित किये और न उनके समान उन्होंने खेतीबारी का धंधा ही अंगीकार किया। १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी सर जान मालकम को यह स्पष्ट देख पड़ा कि इन राजपूतों की मुखाकृति मालवा के अन्य निवासियों से बिलकुल ही विभिन्न थी; वे तब भी मालवा में विदेशी ही प्रतीत होते थे। उन का एक मात्र व्यवसाय युद्ध था। मुग़ल सम्राटों के शाही दरबार में पहनी जाने वाली वेश-भूषा को ही इन राजपूतों ने अपना लिया था, उनका सिर का पहनावा भी मुग़लों की पगड़ी से बहुत कुछ मिलता जुलता था। राजपूत स्त्रियाँ परदे में रहती थीं। अफ़ीम की लत केवल बच्चों तक ही सीमित न थी; वह छोटों-बड़ों, सब के उपयोग में आता था।[1] शान्ति के समय आखेट ही राजपूतों के दिल बहलाव की बात थी। अक्षय-तृतीय तथा अन्य अनेकानेक त्योहार अब तक केवल राजपूताने में ही मनाए जाते थे; इन राजपूतों ने उनका प्रचलन अब मालवा में भी कर दिया। इन राजपूतों का अपनी जन्मभूमि राजपूताने के प्रति इतना प्रगाढ़ प्रेम था कि जहाँ भी गए, वहाँ उन्होंने अपनी पद्धति को ही बनाए रखा, और एक प्रकार से उन्होंने वहाँ राजपूताने के उपनिवेश ही स्थापित किये। बन्दी-गणों की चारण, राव, भाट आदि अनेकानेक उप-जातियाँ थीं, और राजपूतों पर इन सब का बहुत बड़ा प्रभाव था। यह राजपूतों के केवल इतिहासकार ही नहीं थे, किन्तु उनकी सैनिक प्रवृत्तियों एवं वीरता को

---

[1] मालकम, २, पृ० १२७-८, १४०, १४४, १४६, १५०-१; खुलासात, पृ० ३४ अ; इण्डिया०, पृ० lxi, ५६

स्थायी रखने का भार भी उन्हीं के सिर पर था; राजपूतों के सुकृत्यों की वे प्रशंसा करते थे और साथ ही उनके कुकृत्यों की जी भर कर निन्दा भी।

भिलाला और सोंधिया लोगों ने यद्यपि खेती को अपनाकर कृषक वृत्ति को स्वीकार कर लिया था, परन्तु उन्होंने अपनी सैनिक परंपराओं का त्याग नहीं किया। "तत्कालीन शासन की दृढ़ता या निर्बलता के अनुसार वे या तो कृषक बन जाते थे या लुटेरे; किन्तु दस्युवृत्ति का उन्होंने त्याग नहीं किया, और जिस समय उनको कृषक वृत्ति अंगीकार करनी पड़ती थी, उस समय भी यदि कोई अवसर मिल जाता तो वे लूट खसोट करने से हिचकते न थे।"[1] अन्य दूसरे राजपूत यद्यपि अब भी ज़मींदार बने हुए थे और उनमें से कई बहुत शक्तिशाली भी थे, किन्तु यह नए राजपूत अपने समान ही न तो उन्हें कुलीन समझते थे और न उन के राजनैतिक महत्त्व को ही स्वीकार करते थे। शासक और शासितों में किस प्रकार समानता का बर्ताव हो सकता था? नए राजपूत शासक बन कर मालवा में आए थे, यहाँ के पुराने निवासी राजपूतों को उनका शासित बनना पड़ा। किन्तु आगामी युगों में यह भेद-भाव बहुत कुछ मिटने लगा; इन नए राजपूतों को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए योद्धाओं की आवश्यकता हुई, उनके साथियों की संख्या अधिक न थी; इस समय यह पुराने राजपूत उनके सहायक हुए, और इस सहायता के पुरस्कार-स्वरूप उन की सामाजिक परिस्थिति सुधर गई, बहुतों को इन राजपूतों ने अपने समाज में सम्मिलित कर लिया, तथा दूसरों को भी अब पूर्णतया हीन न समझने लगे।

मालवा में वाणिज्य विशेषतया दो जातियों के ही हाथ में था। प्रथमतः

---

[1] मालकम, २, पृ० १२७-८, १५०, १३१-९, १५३

तो बंजारे थे जो जगह जगह घूमते फिरते थे; प्रान्त में एक स्थान से दूसरे स्थान पर वस्तुएँ आदि ले जाने और पत्र आदि पहुँचाने का काम भी ये ही बंजारे करते थे। इनके अतिरिक्त बनिये भी थे जो रुपये-पैसे का लेन देन करते थे, और घरेलू व्यापार भी इन्हीं के हाथ में था। यह प्रायः जैन-धर्मावलम्बी होते थे, किन्तु कोई-कोई वैष्णव हिन्दू धर्म के अनुयायी भी पाए जाते थे।[1] एक नवीन जाति, जिसका महत्त्व मुसलमानी युग में ही बढ़ा था, कायस्थों की थी। विभिन्न राज्यों में फ़ारसी भाषा जानने वाले कार्यकर्ता तथा क्लर्क इस जाति के होते थे। यह बहुत ही चतुर तथा कुशाग्रबुद्धि होते थे, अतएव भूमिकर सम्बन्धी हिसाब तथा इसी प्रकार के सब पेचीदा काम प्रायः इन्हीं लोगों को सौंपे जाते थे।[2] इन सद्यः-स्थापित राज्यों में कायस्थों का महत्त्व बहुत बढ़ गया था, और कई राज्यों में बरसों तक प्रधान मन्त्रित्व तथा अन्य महत्त्वपूर्ण पद परम्परागतरूपेण कायस्थों के ही हाथ में रहे।

इस समय इस प्रान्त में निश्चित रूप से परिवर्तन हो रहा था; इसी कारण किसी भी महान साहित्यिक या कलापूर्ण प्रवृत्ति का कोई चिन्ह देखने को नहीं मिलता है। ललित कला तथा उच्चतम भावनाओं के समर्थकों एवं संरक्षकों का इस समय प्रान्त में पूरा अभाव था। शिक्षा-प्रचार का प्रबन्ध व्यक्तिगत उद्योग पर ही निर्भर था।[3] सम्राट् की व्यक्तिगत असहिष्णुतापूर्ण धार्मिक नीति से प्रान्तीय समाज पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा; तत्कालीन-ऐतिहासिक विवरणों में धार्मिक प्रश्न पर प्रान्तीय हिन्दू-मुसलमानों में किसी मत-भेद, दंगों या लड़ाई-झगड़ों का उल्लेख नहीं मिलता।

---

[1] **मालकम**, २, पृ० १५२, १६०-२
[2] **मालकम**, २, पृ० १६५-७
[3] **मालकम**, २, पृ० १९०-१

अनेकानेक ऐसी धार्मिक-भावनाएँ और ऐसे अन्धविश्वास प्रचलित थे, जिन पर हिन्दू-मुसलमान दोनों को पूरी-पूरी आस्था थी। होली के उत्सव में मुसलमान भी पूरा पूरा भाग लेते थे।[1] दास-प्रथा मालवा में पाई जाती थी किन्तु यह प्रायः स्त्रियों तक ही सीमित थी; राजपूत और मुसलमानों के घरों में ही ऐसी दासियाँ पाई जाती थीं; पर्दा-प्रथा के कारण उनको इन दासियों की बहुत आवश्यकता होती थी।[2] उच्चतम हिन्दू वर्णों में सती-प्रथा प्रचलित थी, और राजपूतों में लड़कियों को मार डालने की कुप्रथा भी पाई जाती थी। मालवा-निवासी भूत-प्रेत तथा डाकिनियों में अत्यधिक विश्वास करते थे और जादू-टोना की शक्ति पर उनकी पूरी-पूरी आस्था थी।[3] बड़े बड़े शहरों और क़स्बों में नर्तकियाँ और रण्डियाँ भी रहती थीं। रस्सी पर चलने वाले नट तथा दूसरे विचित्र-विचित्र तमाशा दिखाने वाले, गाँव के भोले-भाले किसानों का मनोरंजन करते थे।[4]

मुसलमानों में ऐसे ही व्यक्तियों की संख्या अधिक थी, जो या तो ज़बर्दस्ती मुसलमान बनाए गये थे या जिन्हें मुसलमानी युग के प्रारम्भिक दिनों में लालच देकर इस्लाम धर्म ग्रहण करने के लिए उतारू किया गया था। अतएव धर्म-परिवर्तन करने पर भी इन मुसलमानों के हिन्दू नाम, उनके जातीय भेद एवं हिन्दू आचार-विचार ज्यों के त्यों ही बने रहे। इनमें से कई कृषक ही थे।[5] परन्तु मुलतानी, अफ़ग़ान या उसी प्रकार

---

[1] मालकम, २, पृ० १९४-५

[2] मालकम, २, पृ० १९९-२०१

[3] मालकम, २, पृ० २०७, २०८-१०, २१२-८

[4] मालकम, २, पृ० १९५-७

[5] मालकम, २, पृ० १०८-११०

के विदेशी मुसलमानों ने मालवा में बस जाने पर भी अपनी सैनिक वृत्ति को बनाए रखा; फ़ौज में भरती होना, मरना-मारना ही उनका पेशा तथा जीवन-वृत्ति का एक मात्र उपाय था। कुछ मुसलमानों ने वाणिज्य को भी अपनायां था, और व्यापार के लिए मुसलमान व्यापारी बड़ी दूर दूर से आते थे।[१]

किन्तु शीघ्र ही मालवा में एक नवीन शक्ति का प्रवेश हुआ, जिससे प्रान्त के सामाजिक जीवन में पूर्ण क्रान्ति हो गई। मालवा की समाज-व्यवस्था, उसके संगठन एवं उसके राजनैतिक दृष्टिकोण में बड़ी ही उथल-पुथल मची। मरहठों के आक्रमण एवं मालवा में उनकी सत्ता की स्थापना से इस प्रान्त का आर्थिक जीवन बहुत कुछ बदल गया; और यहाँ की शासन-व्यवस्था में इतना भारी परिवर्तन हुआ कि इस प्रान्त के इतिहास में पाई जाने वाली वह अदृष्ट एकता भी एकबारगी विनष्ट हो गई।

---

[१] मालकम, २, पृष्ठ ११३-४

दूसरा अध्याय

औरङ्गज़ेब के अन्तिम वर्षों में मालवा की अवस्था
(१६६८-१७०७ ई०)

१. नवीन युग का प्रारम्भ—उसकी प्रधान विशेषता

पूरे चालिस वर्षों से औरंगज़ेब मुग़ल साम्राज्य पर शासन कर रहा था। "वह अत्यधिक परिश्रमी, उद्योगी, उत्साही और सदाचारी था; कर्तव्य-बुद्धि से ही प्रेरित होकर सम्राट् ने सुखोपभोग एवं विश्राम को निषिद्ध समझा; विषय वासना, भोगलालसा, करुणा की भावना और मानवीय निर्बलताओं को भूल कर भी उसने अपने हृदय में स्थान न दिया; एवं अपने युग तथा धर्म के सर्वश्रेष्ठ आदर्शों के अनुसार ही उसने अपनी प्रजा पर शासन किया।"[1]

सम्राट्

सन् १६८१ ई० में ऐसा ज्ञात होता था कि औरंगज़ेब का मानवीय भौतिक सुख तथा उसका प्रताप दोनों चरम सीमा को पहुँच गए। अपने प्रत्येक विरोधी को उसने नष्ट कर दिया था, सारा साम्राज्य नतमस्तक होकर उसकी आज्ञा का पालन करता था; बीजापुर और गोलकुण्डा का मुग़ल-साम्राज्य में सम्मिलित होना एक अवश्यम्भावी बात जान पड़ती थी; औरंगज़ेब के दृढ़ एवं दक्षतापूर्ण शासन के फलस्वरूप साम्राज्य भर में शान्ति छाई थी और साम्राज्य अधिकाधिक समृद्धिशाली होता जा रहा

[1] औरंगजेब, ५, पृ० १

था, उसकी संस्कृति पूर्ण विकास को प्राप्त होने वाली थी। किन्तु इसी

सम्राट् का दक्षिण-प्रयाण; जून १६८१ ई०

समय एकबारगी सारी राजनैतिक परिस्थिति उलझ गई; शाहज़ादे अकबर ने सम्राट् और साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया; वह विद्रोही मरहठों के साथ जा मिला। औरंगज़ेब ने अन्तिम बार सन् १६८१ ई० में नर्मदा को पार किया; उसके जीवन के अन्तिम २६ वर्ष सुदूर दक्षिण में डेरों में ही बीते।

और वहाँ दक्षिण में सम्राट् ने मरहठों के साथ निष्फल किन्तु अविरत युद्ध प्रारम्भ किया, जिसके फल-स्वरूप धीरे-धीरे साम्राज्य की आमदनी,

औरंगज़ेब और मरहठे, १६९८ ई०

शाही सेना तथा सुसंगठित शासन के साथ ही साथ सम्राट् की आयु भी क्षीण होने लगी। दोनों मुसलमानी बादशाहतों का पतन हो चुका था, किन्तु मरहठे अब तक दबाए नहीं जा सके थे। अपने बड़े भाई शम्भाजी के वध के बाद, शिवाजी का दूसरा लड़का, राजाराम राज्यगद्दी पर बैठा; शम्भाजी का लड़का शाहू उस समय मुग़लों का क़ैदी था। राजाराम ने महाराष्ट्र से भाग कर सन् १६९८ ई० तक जिंजी के क़िले में आश्रय लिया और मुग़लों ने जिंजी का घेरा डाला। इस समय महाराष्ट्र में मरहठों का विद्रोह सुसंगठित न था, और इसी कारण औरंगज़ेब की कठिनाइयाँ अधिकाधिक बढ़ गईं। अब इस विद्रोह ने एक विरोधी प्रजा के युद्ध का स्वरूप ग्रहण कर लिया; जहाँ कहीं बन पड़ा मरहठे सरदार कुछ सैनिक एकत्रित कर अपने साथियों के साथ, अपनी ही इच्छा से, अपने ही लाभ के विचार से प्रेरित होकर, मुग़ल साम्राज्य में यत्र-तत्र

आक्रमण करने लगे। सन् १६६८ ई० के जनवरी मास में मुग़लों ने जिंजी का क़िला हस्तगत कर लिया, किन्तु किसी तरह राजाराम वहाँ से भाग निकला और महाराष्ट्र को लौट आया। एक बार फिर एक ही सेना-नायक के नेतृत्व में मरहठे सैनिक एकत्रित होने लगे, और उसका सामना करने के लिए मुग़ल सेनाएँ कोंकण में पुनः तैयार हुईं।

सन् १६९८ में मालवा

ज्यों-ज्यों औरंगज़ेब दक्षिण में मरहठों के इस झगड़े में उलझता गया, त्यों-त्यों उत्तरी एवं मध्य भारत में स्थित उसके सूबेदार तथा अन्य कार्य-कर्ताओं की शक्ति क्षीण होने लगी, वे अधिकाधिक निस्सहाय होते गए। कालिंजर और धामुनी के दुर्गों को हस्तगत कर तथा भिल्सा के क़िले को लूट कर छत्रसाल बुन्देला ने मुग़ल सेना को अनेक बार नीचा दिखाया; वह उन्हें बारम्बार बुरी तरह से हरा रहा था। उसके आक्रमण का क्षेत्र अधिकाधिक विस्तीर्ण होता जा रहा था। उधर मालवा की दक्षिण-पश्चिमी सीमा पर स्थित देवगढ़ के राज्य में बख़्तबुलन्द ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर रखा था; वह अपने भाग्य की परीक्षा कर रहा था। पड़ोस के ये विद्रोही राजा तथा वे विदेशी आक्रमणकारी अपने लाभ तथा स्वार्थ के लिए या सिर्फ़ लूट-खसोट करने के इरादे से मालवा में घुस पड़ते थे, और इसी प्रान्त के अराजकता-कारक स्वेच्छाचारी व्यक्ति उन विद्रोहियों के साथ हो जाते थे, जिससे प्रान्त के उस विभाग में पूर्ण अराजकता फैल जाती थी। यद्यपि मालवा के इन सीमान्त प्रदेशों को छोड़ कर बाक़ी अन्तरीय भाग में अब भी शान्ति छाई हुई थी, वहाँ अब तक न तो विद्रोहों का ही आरम्भ हुआ था और न वहाँ के शासन में विशृंखलता का ही प्रवेश हो पाया

था, किन्तु सीमान्त प्रदेशों की बढ़ती हुई अराजकता का प्रभाव धीरे धीरे इन अन्तरीय विभागों पर पड़ना एक अवश्यम्भावी बात थी।

नवयुग का प्रारम्भ, इस युग की प्रधान विशेषता

भारतवर्ष के इतिहास में ही नहीं किन्तु मालवा के इतिहास में भी सन् १६९८ ई० से एक नवीन युग का प्रारम्भ होता है। सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि—"(सन् १६९८ ई० में) राजाराम के जिंजी से महाराष्ट्र को लौटते ही एक ऐसी प्रगति प्रारम्भ हुई जिससे आगामी अर्ध-शताब्दी समाप्त होते-होते (मालवा) प्रान्त का राजनैतिक-इतिहास पूर्णतया बदल गया।"[1] सन् १६९९ ई० में ८२ वर्ष के उस बूढ़े सम्राट्, औरंगज़ेब ने यह निश्चय किया कि युद्धक्षेत्र में वह स्वयं सेना का संचालन करे, एक-एक कर मरहठों के सब क़िले हस्तगत कर ले तथा इस प्रकार मरहठों की शक्ति को पूर्णतया नष्ट करदे। दूसरी ओर मरहठों ने जागीर-प्रथा की शरण ली; प्रारम्भ में अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए और बाद में अपने साम्राज्य को बढ़ाने के उद्देश्य से उन्होंने इस प्रथा को पुनर्जीवित कर, अपने शासन संगठन में उसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। इस अराजकतापूर्ण शताब्दी के पूर्वकाल की प्रधान घटना मुग़ल-मरहठों का द्वंद्व ही है; एक ओर निर्बल पतनोन्मुख मुग़ल साम्राज्य था, और दूसरी ओर पुनर्जीवित, जागीर-प्रथा से प्राप्त नवीन स्फूर्ति से पूर्ण, बढ़ती हुई मरहठों की शक्ति थी। इस द्वंद्व में मुग़लों का पूर्ण पराभव हुआ, मालवा से उनकी सत्ता उठ गई, और यहाँ मुग़लों के स्थान पर मरहठों का आधिपत्य स्थापित हो गया। मरहठों की इस जागीर-प्रथा ने मालवा में

---

[1] औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८२

भी जड़ पकड़ ली, और मरहठों के आधिपत्य ने ही इस प्रान्त के मुग़ल कालीन रही-सही जागीरों एवं राज्यों को स्थायित्व प्रदान किया। इस नव-युग के प्रारम्भ से ही इस प्रान्त में विभिन्न सत्ताओं, परस्पर-विरोधी स्वार्थों एवं प्रतिकूल तत्वों की स्थापना होती है; वे स्थायी ही नहीं हो जाते हैं किन्तु समय के साथ अधिकाधिक सुदृढ़ भी होते जाते हैं। और इन सब के वे कटुतम परिणाम—पारस्परिक युद्ध तथा प्रान्त में अराजकता का एक-छत्र शासन—इस शताब्दी के उत्तरकाल में भी इस प्रान्त का पीछा नहीं

दीर्घकाल से मालवा में जो शान्ति छाई हुई थी एवं जो समृद्धि बढ़ रही थी उन सब का सन् १६६८ ई० में अन्त हो गया। मुग़ल-शासन के फलस्वरूप मालवा को जो राजनैतिक एकता प्राप्त हुई थी, तथा जो एक शताब्दी तक बनी रही, वह भी अब नष्ट होने वाली थी। मुग़ल साम्राज्य निर्बल हो रहा था; और अराजकता तथा विनाश का प्रवाह अधिकाधिक प्रबल हो रहा था। मालवा में किसी ऐसी केन्द्रीय सत्ता के उत्थान की कुछ भी सम्भावना न थी, जो पतनोन्मुख मुग़ल साम्राज्य की उतराधिकारी बन सके और इस प्रान्त के शासन को सुसंगठित बना कर इसे राजनैतिक एकता एवं शान्ति प्रदान करे। जो कोई भी व्यक्ति या सत्ता इस समय प्रान्त को अराजकता से बचा सकते थे उन सब को मुग़लों ने दबा दिया था। एवं मालवा में ऐसी कोई संघटित सत्ता, राज्य या प्रभावशाली व्यक्ति न रह गए थे जिन को लेकर मालवा में ऐसी सत्ता या शासन की स्थापना की जा सकती, जो साम्राज्य के पूर्णतया विच्छिन्न

मालवा में शान्ति, समृद्धि एवं एकता का अन्त

हो जाने पर भी इस प्रान्त की एकता को अक्षुण्ण बनाए रखती। अपनी राजपूत-नीति को कार्यरूप में परिणत कर मुग़लों ने अनेकानेक नए राजपूतों को मालवा में इसी उद्देश्य से बसाया था कि साम्राज्य के बुरे दिनों में वे साम्राज्य का साथ देंगे तथा साम्राष्य के लिए एक सुदृढ़ आलम्ब प्रमाणित होंगे। किन्तु राजपूत अपने साथ अपनी विच्छिन्नात्मक प्रवृत्तियों को भी लेते आए थे। अपनी-अपनी जागीरों में भी उनका शासन तथा आधिपत्य सुदृढ़ नहीं हो पाया था; उनके राज्य या जागीरें भी इतनी बड़ी न थीं कि वे बहुत ही शक्तिशाली सत्ताएँ या अतीव महत्त्व-पूर्ण व्यक्ति बन बैठते। इसके विपरीत मालवा में इन राजपूतों के प्रवेश से

केन्द्रीय सत्ता एवं महान व्यक्तित्व का अभाव

प्रान्तीय राजनीति में एक नई उलझन और बढ़ गई; ये राजपूत ज़मींदार या राजा राजपूताने के राजपूत नरेशों के ही वंशज या सम्बन्धी थे एवं सहायता तथा मार्गदर्शन के लिए वे राजपूताने के राजाओं का मुँह ताकते थे। पुनः इस समय मालवा में किसी भी प्रकार के महान व्यक्ति का पूर्ण अभाव था, और इसी कारण जब उन्हें इस प्रान्त में मार्गनिर्देश करने वाला न मिला तब उन्होंने राजपूताने की ओर ताका। मालवा के इस महान अभाव को केवल जयसिंह ही पूरा कर सका; कोई २० या इससे भी अधिक वर्षों तक खुले तौर से या गुप्त रूप से इस प्रान्त की आंतरिक नीति तथा यहाँ निरन्तर होने वाले षड्यन्त्रों एवं गुप्त मन्त्रणाओं का परिचालन तथा नियन्त्रण जयसिंह ही ने किया।

प्रान्त की दशा बिगड़ रही थी, ज़मींदार एवं साम्राज्य दिन पर दिन

निर्बल होते जा रहे थे; इस नवीन-युग पर्यन्त चलने वाली आर्थिक अव्यवस्था से यह दुर्दशा बढ़ती ही गई; और इस आर्थिक दुर्दशा एवं आमदनी की भयंकर कमी का राजनीति पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। केन्द्रीय शासन से प्रान्त को कोई मदद नहीं मिल सकती थी, और प्रान्तीय शासकों की आमदनी इतनी कम थी कि वे अत्यावश्यक सेना और गोला-बारूद भी नहीं रख सकते थे। जब-जब किसी प्रान्तीय सूबेदार ने ज़मींदारों से सरकारी लगान तथा अन्य कर वसूल करने में सख़्ती की, ज़मींदारों को यही ख़याल आया कि इस प्रकार प्रान्तीय शासन को बनाए रखने के लिए ऐसे मुग़ल सूबेदारों की इन सब माँगों को पूरी करने की अपेक्षा मरहठे आक्रमणकारियों को सन्तुष्ट रखने में बहुत ही कम रुपया व्यय होगा। आर्थिक कारण से ही वे मरहठों के पक्षपाती होते थे। जिस आर्थिक प्रश्न ने मालवा के राजपूत राजाओं और अन्य ज़मींदारों को प्रेरित किया कि वे मरहठों का साथ दें, उसी कारण से वे ही राजा और ज़मींदार सन् १७४३ ई० के बाद मरहठों का विरोध करने को उठ खड़े हुए।

आर्थिक कठिनाइयाँ, राजनीति पर उनका प्रभाव

किन्तु मरहठे भी न तो मालवा को अत्यावश्यक केन्द्रीय शासन या सत्ता प्रदान कर सके, और न उनके शासन से इस प्रान्त को शान्ति, समृद्धि या राजनैतिक एकता ही प्राप्त हुई। उनकी जागीर-प्रथा के फलस्वरूप मरहठों की सत्ता भी छिन्न भिन्न होती जा रही थी, उन में भी फूट बढ़ने लगी; परन्तु जब तक वे अन्य प्रान्तों को जीतने तथा वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न करते रहे, उनकी शासन-व्यवस्था की

त्रुटियाँ, एवं उनकी नीति की विफलता स्पष्टरूपेण ज्ञात नहीं हुई।

मालवा को शान्ति, समृद्धि, राजनैतिक एकता एवं अत्यावश्यक केन्द्रीय सत्ता प्रदान करने में मरहठों की विफलता

मालवा के इन नवीन विजेताओं में जब अनेकानेक शक्तिशाली अर्धस्वतन्त्र सेनापति उठ खड़े हुए; जब प्रत्येक शक्तिशाली सेनापति ने अपना स्वतन्त्र आधिपत्य स्थापित करने की सोची, और जब इन विभिन्न स्वाधीन सत्ताओं को एकता के सूत्र में बाँधने के लिये पेशवा की नाम मात्र की अधीनता के अतिरिक्त कुछ भी रह न गया, तब तो मुग़लकाल की रही-सही प्रान्तीय एकता भी नष्ट हो गई और मालवा अनेकानेक विभिन्न छोटे-मोटे राज्यों में बँट गया; राजनैतिक एकता खोकर वह प्रान्त अपनी ऐतिहासिक एकता भी गँवा बैठा। इन नवीन विजेताओं ने देखा कि विगत द्वन्द्व-काल में मुग़लकालीन अनेकानेक ज़मींदारियाँ, तथा जागीरें पूर्णरूपेण सर्वाधिकार प्राप्त कर राज्य बन बैठे थे, एवं इन विजेताओं ने तत्कालीन परिस्थिति को स्वीकार किया और परिवर्तन काल में जो परिवर्तन हो गए थे उन्हें इस प्रकार चिरस्थायी बनाया। आगामी घटनाओं तथा राजनैतिक परिस्थिति के फलस्वरूप भी कुछ परिवर्तन हुए, किन्तु वे तत्कालीन इतिहास से सम्बद्ध हैं; मुग़ल-मरहठा-द्वंद्वकाल से उनका बहुत ही कम सम्बन्ध रहता है।

एवं इस सारे पूर्वकाल की प्रधान विशेषता यही है कि इस काल में प्रान्त में एकता-उत्पादक समस्त प्रवृत्तियों का अन्त हो गया और अराजकता का प्रवाह ज़ोरों से उमड़ पड़ा। इस अराजकता के प्रवाह को मरहठे नहीं रोक सके, प्रान्त को छिन्न-भिन्न करने वाली प्रवृत्ति को वे नहीं दबा सके;

उनकी इस महान विफलता के कारण ही वे चिरकाल तक मालवा पर अपना एकाधिपत्य स्थायी नहीं रख सके; उत्तरकाल में मरहठों का भी पतन हुआ। इस ग्रन्थ में अराजकतापूर्ण शताब्दी के जिस इतिहास का विवरण है, उस काल में मालवा की सम्पूर्ण एकता विनष्ट हो गई। पानीपत की तीसरी लड़ाई में जब मरहठों की बहुत ही बुरी हार हुई, तब तो उनमें भी आपसी फूट बढ़ने लगी; जो सत्ता मरहठों की छिन्न-भिन्न करने वाली प्रवृत्तियों को दबाए रखती थी, वह अधिकाधिक निर्बल होती गई और यह निर्बलता शीघ्र ही प्रत्यक्ष रूपेण देख पड़ी। पूर्वकाल में होनेवाली मरहठों की विफलता के फलस्वरूप उत्तरकाल में मरहठों का पतन हुआ, उनका साम्राज्य विनष्ट हुआ और उनकी स्वतन्त्र सत्ता का भी अन्त हो गया।

२. मालवा के सूबेदार (१६९८–१७०७)

औरंगज़ेब के शासनकाल के इन पिछले ९ वर्षों में एक स्वतन्त्र राजनैतिक युग सीमित है। सन् १६९८ ई० में दक्षिण में एक नवीन प्रगति का उत्थान हुआ, किन्तु उससे मालवा में एकबारगी कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

इस युग की एकताः—बीजारोपण

इन नौ वर्षों में अनेकानेक नवीन प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ हुईं, और यद्यपि उस आरम्भिक दशा में ऊपरी दृष्टि से वे बहुत ही क्षुद्र तथा अल्प-कालिक प्रतीत होती थीं, किन्तु विकसित होने पर उन प्रवृत्तियों में महान, अतीव महत्त्वपूर्ण प्रगतियों का प्रारम्भ देख पड़ा। इस समय भी भारतीय साम्राज्य की बागडोर महान मुग़ल सम्राटों के हाथ में ही थी। छत्रसाल बुन्देला का विद्रोह कोई नई बात न थी, कोई १५–२० वर्षों से चलता

आरहा था। इस समय मालवा पर मरहठों के भी कुछ आक्रमण हुए किन्तु उनका कोई स्थायी प्रभाव न हुआ; इस प्रान्त में कोई भी प्रदेश जीत कर उसे वे अपने अधिकार में न ला सके थे। सन् १७०० ई० में राजाराम की अकाल मृत्यु से मरहठों की सत्ता को बहुत बड़ा धक्का लगा था। शाहू तब भी मुग़लों का क़ैदी था। यद्यपि ताराबाई के प्रयत्नों से मरहठे सेनापतियों के लिए नवीन क्षेत्र खुल गये थे, परन्तु फिर भी ताराबाई मरहठों को एक सुसंगठित, शक्तिशाली जाति में परिणत नहीं कर सकी थी। सन् १७०७ ई० में शाहू के क़ैद से छूट जाने पर भी जिस प्रकार मरहठे निश्चेष्ट रहे, उससे मरहठों की सत्ता की त्रुटियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। यह सच है कि इस समय मरहठों ने न तो विशेष उन्नति की और न उन्होंने कोई बड़ी विजय ही प्राप्त की, किन्तु उन्होंने मुग़ल साम्राज्य की निर्बलता को जान लिया; उन्हें ज्ञात हो गया कि किस प्रकार मुग़ल सत्ता का विरोध कर उस निर्बलता से लाभ उठाया जा सकता था। इस काल की दूसरी महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय बात यह है कि इस समय मालवा प्रान्त में आन्तरिक विद्रोह एवं अनेकानेक कठिनाइयाँ उठीं और इन्हीं के फलस्वरूप इस प्रान्त में मुग़ल सत्ता निर्बल हो गई; इस प्रकार आगामी युग में होने वाले मरहठा-आधिपत्य के लिए राह साफ़ होने लगी। अराजकता की प्रवृत्ति प्रान्त में घर कर गई एवं यद्यपि इस युग के बाद के अगले बारह वर्षों तक मालवा में शान्ति बनी रही, फिर भी जब सन् १७१९ ई० में पुनः मरहठों ने पूर्ण वेग से मालवा पर आक्रमण करना आरम्भ किया, एकबारगी सारे प्रान्त में अराजकता फूट पड़ी और शाही सूबेदार एवं अन्य शासकों ने इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव किया कि

प्रान्त में ही मरहठों के सहायक तथा साथी बहुत थे और इसी कारण मरहठों के आक्रमणों को रोकना एक प्रकार से असम्भव-सा हो रहा था। औरंगज़ेब के शासन-काल के अन्तिम वर्षों के इस युग में प्रथम बार मरहठों का मालवा से सम्बन्ध स्थापित हुआ, तथा इसी युग में अराजकता का वह विषैला बीज इस प्रान्त में बोया गया, जो कोई बारह वर्ष बाद अंकुरित हुआ। ज्यों-ज्यों प्रान्तीय शासन शिथिल होता गया, त्यों-त्यों यह समस्या अधिकाधिक उलझती गई। मालवा के जो-जो ज़मींदार मुग़ल साम्राज्य के पक्के समर्थक एवं दृढ़ अवलम्ब थे, उनकी परिस्थिति भी इसी अराजकता के कारण संकटपूर्ण हो गई। इस प्रकार औरंगज़ेब के समय में ही भावी कठिनाइयों, आगामी विद्रोहों एवं महान अराजकता का बीज बोया गया; उसकी मृत्यु के बाद कोई ६-१० वर्ष तक प्रान्तीय वातावरण में एक प्रकार की निस्तब्धता रही; किन्तु जो बीज बोये जा चुके थे वे धरातल के नीचे जन-समाज की दृष्टि से अदृष्ट धीरे-धीरे अंकुरित हो रहे थे।

मुख़्तियार ख़ाँ
१६९७-१७०१

सन् १६९८ ई० में शाहज़ादा बिदार बख़्त का ससुर, मुख़्तियार ख़ाँ, मालवा का सूबेदार था। जुलूसी सन् ४१ में (मार्च २४, १६९७ तथा मार्च १२, १६९८ के बीच किसी भी वक़्त) इस पद पर उसकी नियुक्ति हुई थी। सन् १७०१ ई० में जब तक अबूनसर ख़ाँ को इस पद पर नियुक्त न किया गया वह उसी पद पर आरूढ़ रहा।[1] मुख़्तियार ख़ाँ की सूबेदारी में ही

---

[1] मनुची, ३, पृ० १९४, फुटनोट ३, १९४-५; मा० आ०, पृ० ४४२। मा० उ०, १, पृ० २४६-७; ३, पृ० ६५६

गोपालसिंह चन्द्रावत के पुत्र, रतनसिंह ने इस्लाम धर्म अंगीकार किया और इस प्रकार पिता-पुत्र के बीच जो झगड़े शुरू हुए वे औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद भी चलते रहे। छत्रसाल बुन्देले का विद्रोह अबाध गति से चलता रहा। दक्षिण में जब बख्तबुलन्द अपने विद्रोही दलबल के साथ मालवा प्रान्त की सीमा में होकर निकला तो उस प्रदेश में बहुत कुछ गड़बड़ पैदा हो गई। कृष्णाजी सावन्त के सेनापतित्व में प्रथम बार मरहठों ने मालवा पर आक्रमण किया, वे लूट-खसोट कर लौट गए और किसी ने न तो उनका सामना किया और न उनके मार्ग में बाधा ही उत्पन्न की।

औरंगज़ेब के शासन-काल के प्रारम्भिक वर्षों में शायस्ता ख़ाँ एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव शाली व्यक्ति था; अबूनसर ख़ाँ उसी के लड़कों में से एक था।

अबूनसर ख़ाँ, द्वितीय शायस्ता ख़ाँ, १७०१-अगस्त, १७०४

अबूनसर ख़ाँ द्वितीय शायस्ता ख़ाँ के नाम से भी प्रसिद्ध था। मालवा में नियुक्त होने के पहिले कोई सात वर्ष तक (१६६०-६७) वह काश्मीर का सूबेदार भी रह चुका था, और वहाँ उचित करों के अतिरिक्त अनेकानेक नियम-विरुद्ध कर वसूल कर वह स्वयं बहुत ही धनवान बन बैठा था।[1] उसका मन्सब ढाई हज़ारी एक हज़ार सवार का था, और जब उसे मालवा का सूबेदार बनाया गया तब बढ़ा कर उसका मन्सब तीन हज़ारी डेढ़ हज़ार सवार का कर दिया गया।[2] छत्रसाल का विद्रोह थोड़े से काल के लिए कुछ शान्त रहा किन्तु गोपालसिंह का विद्रोह चलता ही रहा। कई वार मरहठों ने मालवा पर आक्रमण किये

---

[1] औरंगज़ेब, ५, पृ० १४९-२०

[2] मा० आ०, पृ० ४४२

और सन् १७०३-४ के आक्रमण के समय अबूनसर को सूबेदारी के पद से हटा दिया गया। शक्ति-हीन, विषयी एवं लोभी सूबेदार में इतना साहस न था कि वह आक्रमणकारियों का सामना करता; उज्जैन के क़िले का आश्रय लिए बैठा रहा; फ़िरोज़ जंग के सेनापतित्व में जो शाही सेनाएँ मरहठों का पीछा कर रही थीं, उनको अबूनसर से कोई भी मदद न मिली। इस ढिलाई एवं अयोग्यता को अनुपेक्षणीय समझ कर औरंगज़ेब ने उसे मालवा की सूबेदारी से अलग कर दिया।[1]

औरंगज़ेब ने सब से पहिले अपने पौत्र, शाहज़ादे बिदारबख़्त को इस पद पर नियुक्त करने की सोची, किन्तु शाहज़ादा स्वयं इस सूबेदारी को स्वीकार करने में आगा-पीछा करने लगा। कुछ समय के लिए सम्राट् इस दुविधा में पड़ा कि किसे इस पद पर नियुक्त करे। माण्डू का च्युत फ़ौजदार नवाज़िश ख़ाँ इस समय फिर सम्राट् का कृपापात्र बन बैठा, और एक बार तो सम्राट् ने उसे ही सूबेदार बनाने की सोची, किन्तु अन्त में अगस्त ३, १७०४ ई० को सम्राट् ने शाहज़ादे बिदारबख़्त को ही सूबेदार बनाया।[2] शाहज़ादा एक शूरवीर, चतुर सेनापति था। इस समय वह औरंगाबाद का सूबेदार तो था ही और अब वह मालवा का भी सूबेदार बना दिया गया।[3] कुल मिला कर १६ मास तक शाहज़ादा मालवे का सूबेदार

---

[1] अख़बारात, फ़रवरी ३, १७०४; कालिमात०, पृ० ४४ अ, ५५ अ; मा० आ०, पृ० ४८३

[2] इनायत०, पृ० १९ अ, १३२ ब, १३४ ब, ७५ ब, १३१ अ; अख़बारात, अगस्त ३, १७०४; मा० आ०, पृ० ४८३; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८८

[3] औरंगज़ेब, ५, पृ० १९९, ३८८; मा० आ०, पृ० ४७१, ४७०, ४८३। ख़ानदेश का शासन बिदारबख़्त के ही किसी नायब के अधिकार में दिया गया।

रहा और इन सब महीनों में उसे बहुत ही व्यस्त रहना पड़ा; परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार वह मालवा और ख़ानदेश में घूमता रहा। जब-जब दक्षिण को भेजा जाने वाला उत्तर भारत का ख़ज़ाना आगरा पहुँचाता था, मालवा तथा खानदेश में होकर सुरक्षित रूप से ले जाने और मरहठों के हाथ में न पड़ने देने के लिए शाहज़ादे को विशेष रूप से प्रबन्ध करना पड़ता था।[1] शाहज़ादे को नेमाड़ के भील और कोलियों के स्थानीय विद्रोह, तथा मालवा के अन्य प्रदेशों में, विशेषतया दक्षिणी भाग में, मरहठों के पिछले साल के आक्रमण के फल-स्वरूप होने वाली अराजकता को दबाना पड़ा था।[2] अवासगढ़ (जो अब बड़वानी राज्य कहलाता है) के ज़मींदार ने भी विद्रोह का झण्डा खड़ा किया था और मरहठों के लौट जाने के बाद भी वह लूट खसोट करता रहा।[3] प्रान्त की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर भीलों में अशान्ति पैदा हो गई थी, उन्होंने गागरोन का क़िला बनाया था।[4] जब नीमा के फिर आक्रमण की आशंका न रही तब पुनः

शाहज़ादे के "दीवान", मीर अहमद ख़ाँ को सन् १७०४ ई० में ख़ानदेश का नायब-सूबेदार नियुक्त किया था। (मा० आ०, पृ० ४८०)

[1]इनायतुल्ला-कृत "अहक़ाम" में अनेक पत्र ऐसे मिलते हैं, जिसमें शाहज़ादे को इस बात की ताकीद की गई थी और पूरा पूरा प्रबन्ध करने के लिए लिखा गया था। ऐसे पत्र इतने हैं कि उन सब का विस्तृत उल्लेख नहीं किया जा सकता। बहुत से पत्रों पर कोई भी तारीख़ नहीं दी गई है, और उस संग्रह में पत्र भी कालानुक्रम से नहीं दिए गए हैं, एवं उनमें उल्लिखित घटनाओं के कालानुक्रम को निश्चित करना बहुत ही कठिन है।

[2]इनायत०, पृ० ३१ अ, ५७ ब, १०१ ब, १३८ ब, १४८ ब, ४० अ

[3]इनायत०, पृ० ३१ अ, १०१ ब, १०६ अ

[4]इनायत०, पृ० ६४ अ

ख़ज़ाने को ले जाने का प्रबन्ध करने के लिए शाहज़ादा को मालवे में लौटना पड़ा, और वहाँ पहुँचते ही वह बीमार पड़ गया (दिसम्बर, १७०४—जनवरी, १७०५ ई०)।[1] इसी समय शाहज़ादे ने अपने विश्वास-पात्र सहायक, सवाई जयसिंह पर ख़ज़ाने की रक्षा का भार रक्खा, और उसे मालवे का नायब-सूबेदार भी नियुक्त किया। किन्तु इस नियुक्ति से सम्राट् सहमत न था; उसने शाहज़ादे को आज्ञा दी कि जयसिंह को उस पद पर से हटा ले; उसके स्थान पर सम्राट् ने ख़ान आलम को मालवा का नायब-सूबेदार बनाया, एवं शाहज़ादे को यह आज्ञा दी कि भविष्य में किसी भी राजपूत को कहीं का भी सूबेदार या फ़ौजदार नियुक्त न करे।[2] भरतपुर के पास ही "सनसनी" नामक क़िले को जाटों ने जीत लिया था, एवं बिदारबख़्त को इसी समय आज्ञा हुई कि वह उस क़िले पर चढ़ाई करे और पुनः उसे हस्तगत करे। यद्यपि शाहज़ादे का इरादा था कि सम्राट् की आज्ञानुसार सनसनी पर धावा करे, परन्तु अपनी बीमारी एवं अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त रहने के कारण सनसनी पर वह चढ़ाई न कर सका।[3] सन् १७०५ ई० की बरसात के मौसिम में शाहज़ादे को मालवे में ही ठहरना पड़ा।[4] इसी साल के अन्तिम महीनों में बिदारबख़्त का शासन-भार बहुत कुछ हलका कर दिया गया। शाहज़ादा आज़म इस समय गुजरात से लौट रहा था, औरंगाबाद और ख़ानदेश

---

[1] इनायत०, पृ० ७६ अ, ९१ अ, १०४ ब, १३३ अ, ६८ अ, ७२ ब

[2] इनायत०, पृ० ९४ अ, १०५ अ, १३३ ब, १३४ ब, १२८ ब, ६८ अ, ७२ ब, ७४ ब

[3] इनायत०, पृ० २४ अ, २५ अ, ७० अ, ७५ ब, ७७ अ, ७८ अ, ७८ ब; जाट० १, पृ० ४७

[4] इनायत०, पृ० ८७ ब

के प्रान्त उसके अधिकार में कर दिये गए।[1] किन्तु फिर भी खानदेश में मरहठों का सामना करने और उनको मार भगाने का काम बिदारबख़्त के ही ज़िम्मे रहा। जयसिंह के कई सहायक कर्मचारियों की शिकायतों के बारे में जाँच-पड़ताल करने के लिए सन् १७०५ ई० के नवम्बर मास में बिदारबख़्त मालवा में चला आया था। इधर नवम्बर २५, १७०५ ई० को गुजरात से रवाना होकर बिदारबख़्त का पिता, शाहज़ादा आज़म, मालवा में होकर सम्राट् के पास जा रहा था; बिदारबख़्त उससे मिलने के लिए धार गया। किन्तु सम्राट् को यह ठीक न लगा; वह बिदारबख़्त पर बहुत ही क्रुद्ध हुआ और पूछा कि वह मरहठों को रोकने के लिए बुरहानपुर क्यों नहीं लौट आया। इसी समय गोपालसिंह चन्द्रावत पुनः विद्रोही हो गया था, और उसको सहायता करने के लिए परसु मरहठा[2] ने कुछ सेना भेजी थी, इस सेना को रोकने के लिए बिदारबख़्त

---

[1]इनायत०, पृ० ७३ अ; मा० आ०, पृ० ४९६। नवम्बर १६, १७०५ ई० को मालवा बिदारबख़्त के अधिकार में रहने दिया गया; मा० आ०, पृ० ४९८

[2]यह परसु मरहठा, नागपुर के भोंसले घराने के पूर्व पुरुष, रघुजी भोंसले के चचेरे भाई, कान्होजी भोंसले का पिता परसुजी या परसोजी भोंसला ही जान पड़ता है। परसुजी भोंसला की मृत्यु सन् १७०९ ई० में हो गई। मराठी ऐतिहासिक ग्रन्थों के अनुसार राजाराम के समय में परसोजी भोंसले दूर दूर देशों तक धावा मारते थे, एवं बहुत आदर सन्मान के साथ ही साथ उन्हें देवगढ़, चाँदा, बरार एवं गोण्डवाना प्रान्तों में चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का भी अधिकार दिया गया था। मल्हार रामराव कृत थोरले राजाराम चरित्र, पृ० ३८; सरदेसाई, मराठी रियासत, राजारामचे चरित्र, भाग ४, पृ० ८९; काळे कृत नागपुर प्रान्तचा इतिहास।

को नोलाई (बड़नगर) जाना पड़ा। किन्तु इसी वक्त मरहठे गुजरात पर भी चढ़ आए थे, और सम्राट् को बिदारबख़्त के अतिरिक्त दूसरा कोई ऐसा व्यक्ति नहीं देख पड़ा जो उनका सामना कर सके, एवं सम्राट् ने बिदारबख़्त को आज्ञा दी कि वह तत्काल गुजरात के लिए रवाना हो जाय।[1] इस प्रकार अप्रेल, १७०६ ई० में बिदारबख़्त मालवा छोड़ कर गुजरात के लिए चल पड़ा।

यद्यपि शाहज़ादे की सूबेदारी में ख़ान आलम को मालवा का नायब-सूबेदार नियुक्त किया था, किन्तु समय-समय पर जब-जब या तो शाहज़ादे के साथ या अकेले ही ख़ान आलम को विभिन्न स्थानों में सेना लेकर जाना पड़ता था, तब-तब बारी-बारी से कई व्यक्तियों ने इस पद पर काम किया।[2] शाहज़ादे की सेना की भी हालत बहुत अच्छी न थी; औरंगज़ेब बारम्बार इस बात पर आग्रह करता रहा कि सेना की शक्ति बढ़ा कर उसे अधिकाधिक सुसज्जित करले और इस उद्देश्य से उसने विशेष धन भी दिया।[3]

---

[1] इनायत०, पृ० ८१ अ, ८३ अ, ८३ ब, ८४ अ, ८५ अ, २१ ब; औरङ्गज़ेब, ५, पृ० ३८८, ४३१

[2] इनायतुल्ला निम्नलिखित व्यक्तियों की मालवा की नायब-सूबेदारी पर नियुक्ति का उल्लेख करता है:—

ख़ान आलम, पृ० ६८ अ, ९१ अ, ३७ अ; कासिम हुस्सैन ख़ां, पृ० ७८ अ; अली मर्दन ख़ां, पृ० ७६ अ, ८६ अ; अमानुल्ला ख़ां का पुत्र, अब्दुल्ला ख़ां, पृ० ९० अ। अब्दुल्ला ख़ां के पहिले ख़ान आलम इस पद पर था; यह बहुत सम्भव है कि जब बिदारबख़्त को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया, उसी समय अब्दुल्ला ख़ां को मालवे की नायब-सूबेदारी मिली हो। अब्दुल्ला ख़ां इस पद पर अप्रेल, १७०७ ई० तक स्थित रहा।

[3] इनायत०, पृ० ३४ अ, ३८ अ, ४६ अ-ब, ४९ अ, ७४ ब, ७५ ब, ७८ अ, ८६ ब, ८८ ब, ९० ब, १०८ अ

शाहज़ादे की सूबेदारी में इस प्रान्त पर बाहर से कोई बड़ा आक्रमण नहीं हुआ। सन् १७०६ ई० में फ़िरोज़ जंग के विशेष आग्रह एवं सलाह से छत्रसाल के साथ सन्धि कर ली गई। छत्रसाल दक्षिण गया, वहाँ औरंगज़ेब की सेवा में उपस्थित हुआ; सम्राट् ने उसका आदर किया और सम्राट् की मृत्यु पर्यन्त उसने शान्तिपूर्वक जीवन बिताया।[1]

ज्यों ही बिदारबख़्त को गुजरात भेजा गया, मालवा की सूबेदारी का प्रश्न फिर उठ खड़ा हुआ। सन् १७०५ ई० में जब शाहज़ादा आज़म गुजरात का सूबेदार था, तब भी उसने सम्राट् से इस बात का आग्रह किया था कि मालवे की सूबेदारी उसे दे दी जाय; किन्तु सम्राट् को यह मंज़ूर न था, मालवा के स्थान पर ख़ानदेश की सूबेदारी उसे दे दी गई। परन्तु आज़म ख़ानदेश की सूबेदारी करने को तैयार न था, एवं अन्त में जनवरी १७०६ ई० में सम्राट् ने सोचा कि मालवा की सूबेदारी आज़म को ही दे दी जावे; बिदारबख़्त को भी आज्ञा हुई कि वह बुरहानपुर चला जावे। किन्तु इस समय बड़ी कठिनाई के साथ सम्राट् ने आज़म को अपने पास आने की आज्ञा दी थी अतएव आज़म मालवा में नहीं ठहरा, वह

---

[1] मा० उ०, २, पृ० ५१२; भीमसेन, २, पृ० १५७ ब। सरकार के मतानुसार यह घटना सन् १७०५ ई० में घटी, किन्तु मेरे विचारानुसार सन् १७०५ ई० के अन्तिम महीनों या सन् १७०६ ई० के प्रारम्भिक दिनों में ही इस घटना का होना सम्भव है। सम्राट् का इरादा था कि छत्रसाल को दबाने के लिए बिदारबख़्त को भेजे; इनायतुल्ला इसका उल्लेख करता है (पृ० ३० अ, २९ ब)। यह पत्र बहुत करके सन् १७०५ ई० के अप्रेल या मई महीने में लिखे गए होंगे। औरंगज़ेब, ५, पृ० ३९९। भीमसेन भी इस घटना का सन् १७०६ ई० में होना लिखता है।

अहमदनगर चला गया ।[1] एवं जब बिदारबख़्त गुजरात के लिए रवाना हो गया तो फिर मालवा की सूबेदारी ख़ाली ही रह गई । ख़ान आलम इस समय नायब-सूबेदार था, किन्तु वह बीमार था, और शायद इसी कारण से सम्राट् ने उसे सूबेदार बनाना उचित न समझा । ख़ान आलम ने प्रस्ताव किया कि मुनव्वर ख़ाँ को सूबेदार बना दिया जावे, किन्तु इससे सम्राट् सहमत न हुआ (जुलाई १७०६ ई०) । अन्त में ख़ान आलम

ख़ान आलम, १७०६ ई०

ही मालवा का सूबेदार बना दिया गया और नेजाबत ख़ाँ को आज्ञा दी कि जब तक ख़ान आलम स्वस्थ न हो जावे वह इस काम को सम्हाले ।[2] किन्तु ख़ान आलम बहुत काल तक मालवा में न रह सका, मरहठों से लड़ने के लिए उसे ख़ानदेश की ओर जाना पड़ा और वहीं से बाद में वह अहमदनगर चला गया । सन् १७०६ के प्रारम्भ में अमानुल्ला ख़ाँ के पुत्र, अब्दुल्ला ख़ाँ को मालवा की नायब-सूबेदारी दी गई थी; और जहाँ तक सन् १७०७ के अप्रेल मास में आज़म ने नेजाबत ख़ाँ को मालवा का सूबेदार न बनाया अब्दुल्ला ख़ाँ ही मालवा में शासन करता रहा ।[3]

फ़रवरी १७०७ ई० में सम्राट् को यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो गया कि उसका अन्त निकट है, एवं उसने निश्चय किया कि वह अपने पुत्रों

---

[1] इनायत०, पृ० ७३ अ, ७४ अ, ८० अ, ८४ अ; खफी०, २, पृ० ५४१

[2] इनायत०, पृ० ८५ अ, २१ ब, २१ अ, २२ अ; मा० आ०, पृ० ५१२

[3] इनायत०, पृ० ९० अ; इरादत०, स्काट०, पृ० १६; मा० उ० १, पृ० ८१६; २, पृ० ८७१; आजम०, पृ० १९३-४

को दूर दूर भेज दे। "प्रान्तीय शासन को सुधारने के लिए" १३ फ़रवरी

आज़म का मालवे के लिये प्रस्थान; सम्राट् की मृत्यु और आज़म का लौटना; फ़रवरी, १७०७ ई०

को आज़म मालवे के लिए रवाना हुआ। किन्तु खास बात आज़म से छिपी न थी; पूरे सप्ताह भर में कोई ४० ही मील दूर गया था कि उसे अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला (फ़रवरी २०, १७०७ ई०)। तत्काल आज़म शाही केम्प को लौट पड़ा।[1]

इन विगत नौ वर्षों में प्रान्तीय शासन की दशा दिन पर दिन बिगड़ती जाती थी। सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि—"दक्षिण में इस बढ़े हुए

मालवा का प्रान्तीय शासन; ह्रास तथा उसके कारण

व्यय एवं उस अविरत युद्ध की उत्तरी भारत की दशा पर बिलकुल ही विपरीत प्रतिक्रिया हुई।"[2] सब से अच्छे सैनिक, चतुर सेनाधिपति तथा समस्त साम्राज्य की एकत्रित की हुई आय दक्षिण को भेजी जा रही थी। बारम्बार आज्ञाएँ भेजी जाती थीं कि नए-नए सैनिक भर्ती किये जाकर दक्षिण को भेजे जावें; प्रान्त में भी सैनिकों की आवश्यकता होती थी, इस बात की ओर कोई ध्यान देता न था।[3] शाही

---

[1] औरंगजेब, ५, पृ० २५६, २५८; ख़फ़ी०, २, पृ० ५४८, ५६६। मा० आ० (पृ० ५२०) के अनुसार शाहजादे ने स्वयं ही जाने के लिए आज्ञा माँगी। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सम्राट् की आज्ञा से ही उसकी इच्छा के विरुद्ध, आजम को जाने के लिए मजबूर किया गया था।

[2] औरंगजेब, ५, पृ० ४५१

[3] अगस्त २, १७०० ई० के अख़बार में सैनिक एवं द्रव्य भेजने का शाही हुक्म विचारणीय है। कृष्णाजी सावन्त ने कुछ ही मास पहिले मालवा पर आक्रमण किया था।

आज्ञाओं का पालन करने में बहुत ही ढिलाई होती थी, और रिश्वत भी ले लेते थे; आज्ञा पालन में होने वाली महत्त्वपूर्ण त्रुटियों की ओर बड़े बड़े अधिकारी भी ध्यान नहीं देते थे।[१] अनेकानेक कार्यकर्ताओं की दरिद्रता से शासन में निर्बलता आती जा रही थी। सम्राट् स्वयं इस बात को जानता था; ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ को लिखे गए एक पत्र में वह स्वयं इस बात को स्वीकार करता है कि अपनी दरिद्रतापूर्ण दशा एवं अपने अनुचरों की संख्या कम होने के कारण ही नवाज़िश ख़ाँ ठीक तरह से शासन न कर सका था।[२] ग़रीब प्रजा पर अधिकारियों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों की संख्या कम न थी; यद्यपि कई बार प्रतिकार के लिए प्रजा प्रान्तीय शासकों द्वारा किये जाने वाले अत्याचार एवं शाही ख़ज़ाने में से होने वाले ग़बन की सूचना उच्च अधिकारियों को देती थी, किन्तु इस ओर कभी कभी ध्यान भी नहीं दिया जाता था।[३] बिदारबख़्त के समान चतुर सेनानायक के पास भी पूरी-पूरी सेना न थी, और उसने कई बार सम्राट् को भी यह बात व्यक्त कर दी थी।[४] जो-जो ज़मींदारियाँ अनेकानेक व्यक्तियों को दी जा चुकी थीं उनका शासन भी बिलकुल ही साधारण था; आक्रमण या विद्रोह के समय उनसे सहायता की आशा करना व्यर्थ था; अतएव यह भी प्रान्तीय शासन की निर्बलता का एक और कारण बन गया था। ऐसे समय जब कि अराजकता की प्रवृत्ति बढ़ रही थी, प्रान्तीय शासन की ये कमज़ोरियाँ साम्राज्य के लिए घातक हुईं।

---

[१] वीर०, २, पृ० ७४१, ७५१-५२

[२] इनायत०, पृ० १३२ ब

[३] इनायत०, पृ० ६४ अ; इस सब जाँच-पड़ताल के बाद भी हिदायतुल्ला को उस फ़ौजदारी से अलग नहीं किया। इरादत०, स्काट०, पृ० ९६-७

[४] इनायत०, पृ० ८६ अ, १०८ अ

३. छत्रसाल बुन्देला और मालवा

सन् १६६८ ई० में छत्रसाल बुन्देला को मालवा की उत्तर-पूर्वी सीमा पर आक्रमण करते-करते एक युग से भी अधिक बीत गया था। मुग़ल सेना उस को दबा न सकी और ज्यों-ज्यों सम्राट् दक्षिणी युद्धों में अधिकाधिक उलझता गया, छत्रसाल का उत्साह बढ़ता गया और उसका आक्रमण-क्षेत्र विस्तीर्ण होता गया; उसने पूर्वी मालवा में अपने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। सन् १६६८ ई० तक तो अपने राज्य की सीमा में वह अपना स्थान सुरक्षित बना चुका था, अब वह अपने राज्य का विस्तार बढ़ाने में लगा हुआ था। कालिंजर और धामुनी को हस्तगत करने तथा भिल्सा को लूटने के साथ ही साथ सन् १६६८ ई० तक उसने अन्य कई छोटे छोटे स्थानों को भी अपने अधिकार में ले लिया; उसने आक्रमण कर मटौंधा के परगने से चौथ वसूल की; साथ ही बुरौरा, थुरहट, कोटा, कचीर, खंडौतु और जलालपुर पर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया।[1]

[1] छत्रसाल बुन्देला संबन्धी घटनाओं के लिए उसी के दरबार के राज-कवि, लाल कृत "छत्र प्रकाश" के अतिरिक्त दूसरा ग्रन्थ नहीं है, परन्तु उसमें न तो विस्तार पूर्वक वर्णन ही किया गया है और न अनेकानेक छोटी-छोटी बातों का उल्लेख ही मिलता है। पुनः छत्रसाल की सफलताओं का उल्लेख करनें में कवि अत्युक्ति से भी बहुत काम लेता है। अनेकानेक घटनाओं-सम्बन्धी बातों को ठीक-ठीक रूपेण जाँच करने में एवं उनका सन्-संवत निश्चित करने में मुसलमानी प्रमाणों का आधार लिया गया है। लाल०, पृ० १४६; औरंगजेब, ५, पृ० ३९५-७, ३९७-८

यह सब नाम उस प्रदेश में स्थित छोटे-छोटे गाँवों के ही हैं। बुन्देलखण्ड में स्थित कोटरा ही उपर्युक्त कोटा है, राजपूताने में स्थित कोटा शहर से इस का कोई सम्बन्ध नहीं। झाँसी के पास स्थित कचीर ककरवई ही उपर्युक्त कचीर है।

जलालपुर जीतने के बाद छत्रसाल ने बन्हौली पर धावा किया और वहाँ जाकर डेरा डाला। रानोद का फ़ौजदार शेर अफ़गन तथा उसका लड़का शाह कुली, दोनों छत्रसाल का सामना करने को चढ़ आए। एक घनघोर युद्ध के बाद छत्रसाल ने सूरजमऊ के क़िले की शरण ली। शेर अफ़गन ने उस क़िले का घेरा डाला और क़िले को ले लिया, छत्रसाल किसी प्रकार क़िले से निकल भागा। शेर अफ़गन ने बिना किसी सहायता के यह विजय प्राप्त की थी; उसके कोई सात सौ सैनिक मारे गए एवं उसका निजी द्रव्य व्यय हो गया। इसी समय छत्रमुकुट बुन्देला आकर मुग़ल सेना के साथ मिल गया जिससे शेर अफ़गन की शक्ति बढ़ गई। गागरोन का परगना कोई बीस वर्षों से छत्रसाल के पुत्र ग़रीबदास के अधिकार में था; सूरजमऊ के युद्ध में विजयी होकर शेर-अफ़गन ने इस परगने को भी जीत लिया। इस समय ख़ैरन्देश ख़ाँ धामुनी का फ़ौजदार था, किन्तु उसने शेर अफ़गन को बिलकुल ही मदद न दी। सम्राट् ने शेर अफ़गन को पुरस्कार दिया और ख़ैरन्देश ख़ाँ के स्थान पर उसे ही धामुनी का फ़ौजदार नियुक्त किया। गागरोन का परगना भी शेर अफ़गन को दे दिया गया और साथ ही बहुत कुछ द्रव्य भी पुरस्कार के रूप में उसे मिला।[1]

सूरजमऊ का युद्ध, १६९९ ई०

---

[1] अख़बारात, अप्रेल २१, २५, जून २८ और जुलाई २६, १६९९; लाल०, पृ० १४६-८; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३९८-९

गागरोन, झालरापाटन छावनी (जो अब ब्रजनगर कहलाता है) से एक मील उत्तर में स्थित है; अक्षांश २४° ५६′, देशान्तर ७६° १०′

किस स्थान का नाम सूरजमऊ था यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता; बुन्देलखण्ड में दो स्थानों का नाम मऊ है।

किन्तु अगले साल छत्रसाल ने अपना बदला ले लिया। अप्रेल २४, १७०० ई० के दिन शेर अफ़गन ने भुना और बारना के पास पुराघाट में छत्रसाल पर आक्रमण किया; घमासान युद्ध हुआ। छत्रसाल ज़ख्मी हुआ, उसके दल के कोई ७०० सैनिक मारे गए और दूसरे तितर-बितर होकर भाग गए। किन्तु शेर अफ़गन को घातक चोट लगी और छत्रसाल के भागते हुए सैनिक ज़ख्मी शेर अफ़गन को उठा ले गए। शेर अफ़गन के जाफ़र अली नामक किसी पुत्र को छत्रसाल ने सूचना दी कि "तुम्हारे पिता में जीवन बहुत ही कम रहा है। अपने आदमियों को भेजो कि उसे ले जावें।" जब पालकी आई तब तक शेर अफ़गन मर चुका था, वे उसकी लाश को पालकी में रखकर ले गए।[1]

पुराघाट का युद्ध; शेर अफ़गन की मृत्यु, अप्रेल, १७००

ख़ैरन्देश ख़ाँ को पुनः धामुनी का फ़ौजदार नियुक्त किया गया और उसे

[1] अख़बारात, मई १२ एवं २१, १७००; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३९८-९। अख़बारात में दी हुई घटनाओं से लाल-लिखित विवरण भिन्न है, एवं लाल का विवरण विश्वसनीय नहीं है। वह लिखता है कि कोटरा के क़िलेदार, सैय्यद लतीफ़ ख़ाँ ने शेर अफ़गन की जान बचाई; लतीफ़ ने चौथ तथा अन्य कर देना भी स्वीकार किया। यह सब विवरण सम्राट् को भी ज्ञात हुआ। शेर अफ़गन फ़क़ीर हो गया तथा उसने अपने अधिकार एवं अपना पद अपने पुत्र को दे दिया। उपर्युक्त कई एक गाँव एवं पुराघाट का निश्चित स्थान बताना बहुत ही कठिन है। सन् १६९९ में शेर अफ़गन गागरोन के परगने के आस-पास ही घूमता रहा एवं सम्भव है कि यह सब युद्ध गागरोन के आस-पास ही कहीं हुए हों। बारना, कोटा राज्य में स्थित बारां स्थान हो सकता है और सम्भव है कि पुराघाट, बारां से दक्षिण पूर्व में २५ मील पर स्थित सालपुरा ही हो।

आज्ञा दी कि छत्रसाल को दबावे, उसे पूरा पूरा दण्ड दे। लाल के

पिछले युद्ध, १७००-१७०१ ई०

कथनानुसार शाह कुली ने ८००० सैनिकों को एकत्र कर छत्रसाल पर बदला लेने के लिए चढ़ाई की; इस बार नन्द महाराज नामक व्यक्ति ने भी शाह कुली की मदद की। इस सेना ने मऊ के क़िले को जा घेरा। एक बार क़िले पर आक्रमण करते समय नन्द महाराज बुरी तरह घायल हुआ, तब तो मुग़ल सेना पीछे हट गई और डेरा डाला; किन्तु रात को छत्रसाल ने मुग़लों पर आक्रमण किया और शाह कुली को बुरी तरह हराया; विवश होकर शाह कुली को छत्रसाल की सब शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं।[1] शाह कुली ने शाहबाद का क़िला भी छोड़ दिया, जिस पर शाहमन धंधेरा के लड़के देवीसिंह ने क़ब्ज़ा कर लिया। आक्टोबर, १७०० ई० में ग्वालियर के फ़ौजदार ने पुनः इस क़िले को हस्तगत किया।[2]

इन सब पराजयों से खिन्न तथा निराश होकर, बाद में छत्रसाल को दबाने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया गया। अप्रेल, १७०२ ई० में ख़ैरन्देश ख़ाँ को आज्ञा हुई कि चूँकि छत्रसाल का परिवार कालिञ्जर के क़िले में था, उस क़िले का घेरा डाल कर उसे हस्तगत करने का प्रयत्न करे, किन्तु यह प्रयत्न विफल ही हुआ।[3] इस विफलता के बाद भी छत्रसाल का सामना करने एवं उसके दबाने का कार्य ख़ैरन्देश ख़ाँ के

---

[1] लाल०, पृ० १४९–१५०

[2] अख़बारात, जून ११, आक्टोबर, १७०० औरंगज़ेब, ५, पृ० ३९९

[3] अख़बारात, अप्रेल ४, १७०१; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३९९

ही ज़िम्मे रहा।[1] सन् १७०३ ई० में छत्रसाल ने नीमा सिंधिया को मालवा पर आक्रमण करने को आमन्त्रित किया, किन्तु सिरोंज के युद्ध में फ़िरोज़ जंग की विजय होने से उसके सारे इरादे विफल हुए। बिदारबख़्त ने छत्रसाल को दबाने के लिए जाने की आज्ञा सम्राट से माँगी थी, किन्तु चूँकि बरसात का मौसिम जल्द ही आरम्भ होने वाला था, कुछ भी न हो सका।[2] सन् १७०५ के अन्तिम या सन् १७०६ के प्रारम्भिक महीनों में फ़िरोज जंग के विशेष आग्रह पर सम्राट ने इस विद्रोही बुन्देले के साथ सन्धि कर ली। छत्रसाल को ४ हज़ारी मन्सब दिया गया। छत्रसाल दक्षिण में सम्राट के दरबार में हाज़िर हुआ और औरंगज़ेब की मृत्यु तक उसने शान्ति-पूर्वक जीवन बिताया।[3]

४. गोपाल सिंह चन्द्रावत का विद्रोह (१६९८-१७०६ ई०)

औरंगज़ेब की असहिष्णुतापूर्ण कट्टर धार्मिक नीति के फलस्वरूप भी इस प्रान्त में अनेकानेक विद्रोह उठ खड़े हुए थे; इस प्रान्त की हिन्दू-

असहिष्णुतापूर्ण धार्मिक नीति; उसके परिणाम—विद्रोह एवं असन्तोष

प्रजा में असन्तोष भी बहुत बढ़ा। "यह एक अनहोनी बात थी कि जिस प्रान्त में हट्टे-कट्टे, सुदृढ़ हिन्दुओं की ही आबादी बहुतायत से हो, वह प्रान्त मन्दिर-विनाश एवं हिन्दुओं पर जज़िया कर लगाने की औरंगज़ेब की नीति को बिना किसी विरोध के, विनयपूर्ण सहिष्णुता के साथ

---

[1] इनायत०, पृ० २९ ब

[2] इनायत०, पृ० ३० अ, ३२ अ

[3] भीमसेन, पृ० १५७ ब; मा० उ०, २, पृ० ५१२; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३९९

ग्रहण कर ले"।[1] कुछ ऐसी घटनाओं का भी उल्लेख मिलता है, जब हिन्दू-प्रजा में अपने धर्म को सुरक्षित रखने की भावना इतनी बढ़ी कि वे इस्लाम् धर्म के प्रचारक या प्रतिनिधियों से लड़ बैठे या जब जज़िया कर वसूल करने वाले उद्धत कार्यकर्ताओं के बर्ताव से चिढ़ कर लड़ाके राजपूत उन पर टूट पड़े।[2] किन्तु ये दंगे या झगड़े विशेषतया स्थानीय ही रहे और इनसे किसी बड़े सर्व-प्रान्त-व्यापी विद्रोह का प्रारम्भ न हुआ। यह मानते हुए भी कि सम्राट् की असहिष्णुतापूर्ण नीति के विरुद्ध मालवा प्रान्त की प्रजा में असन्तोष अवश्य था, यह कहना पड़ेगा कि इस प्रान्त में उस नीति के विरुद्ध कोई सुसंगठित विरोध नहीं उठा। किन्तु इस प्रान्त के आन्तरिक इतिहास में एक घटना ऐसी अवश्य हुई जो औरंगज़ेब की इस धार्मिक नीति का ही परिणाम थी, और वह घटना थी सन् १६६८ ई० में रामपुरा के गोपालसिंह चन्द्रावत का विद्रोह।

रामपुरा राज्य-गोपाल सिंह तथा रतन सिंह

मालवा की उत्तर-पश्चिम सीमा पर कोटा और देवलिया (प्रतापगढ़) के राज्यों के बीच रामपुरा नामक छोटा सा स्वतन्त्र राज्य था, जिस पर चन्द्रावत घराने के शिशोदिया राजपूत राज्य करते थे। मालवा और मेवाड़ के बीच स्थित इस राज्य का राजनैतिक महत्त्व बहुत अधिक था; जहाँ तक अकबर ने इसे स्वाधीन राज्य न बनाया, वहाँ तक यहाँ के राजा मेवाड़ के अधीन ही रहे। तब से गोपालसिंह चन्द्रावत के पूर्वज निष्कपट

[1] औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८१

[2] अख़बारात, अप्रेल ७, १६७०; जुलूसी सन १३, शीट १७ वाँ; जून ८ और ९, १६९५ ई०

भाव से मुग़ल सम्राटों की सेवा करते रहे। सन् १६८६ ई० में गोपालसिंह इस राज्य की गद्दी पर बैठा। सन् १६९८ ई० में वह शाहज़ादा बिदार-बख़्त की आधीनता में सेवा कर रहा था। अपने राज्य के शासन की देख-भाल के लिए उसने अपने पुत्र रतनसिंह को रामपुरा भेजा। रामपुरा पहुँच कर रतनसिंह ने अपने पिता के विश्वस्त सेवकों को अलग कर दिया, सारी सत्ता अपने हाथ में लेकर राज्य में वह अपनी मनमानी करने लगा; उसने अपने पिता की आज्ञानुसार उसके पास द्रव्य भेजने से भी इन्कार कर दिया। गोपालसिंह ने सम्राट् की सेवा में निवेदन किया कि राजाज्ञा

रामपुरा में रतनसिंह का आधिपत्य; रतनसिंह का इस्लाम धर्म ग्रहण करना, १६९८ ई०

से रतनसिंह को दरबार में बुला लिया जावे, किन्तु सम्राट् ने इस प्रार्थना की ओर ध्यान न दिया। कुछ काल के बाद मालवा के सूबेदार मुख़्तियार ख़ाँ के प्रयत्न से रतनसिंह ने इस्लाम-धर्म ग्रहण कर लिया। अब तो रतनसिंह को 'इस्लाम ख़ाँ' का ख़िताब मिला और रामपुरा का राज्य भी पुरस्कार-स्वरूप उसे दे दिया गया; रामपुरा का नूतन नाम-करण हुआ और अब 'इस्लामपुरा' कहलाया जाने लगा। इन सब घटनाओं से खिन्न होकर गोपालसिंह ने शाहज़ादे बिदारबख़्त की सेना को छोड़ कर रामपुरा की राह ली। गोपालसिंह ने सेना एकत्रित करके रामपुरा को हस्तगत करने का प्रयत्न किया (जून, १७०० ई०)।[1] कोटा के शासक रामसिंह हाड़ा के पुत्र, भीमसिंह ने द्रव्य तथा कपड़े आदि देकर गोपालसिंह की सहायता की।[2]

---

[1] भीमसेन, २, पृ० १३० अ; अख़बारात, जून १०, १७०० ई०

[2] अख़बारात, जून ११, १७०० ई०

सम्राट् ने इस विद्रोह को दबाने के लिए पूरा पूरा प्रयत्न करने का निश्चय किया। जुलाई १०, १७०० ई० के दिन बिदारबख़्त को आज्ञा हुई कि वह मालवा में जाकर इस विद्रोह को दबावे, परन्तु एक सप्ताह बाद ही आज़म मालवा के लिए रवाना हो गया एवं बिदारबख़्त नहीं गया।[1] अब आज़म को आज्ञा हुई कि गोपालसिंह को दबाने के लिए जो प्रयत्न किए जा रहे थे उनका भी वह निरीक्षण करता रहे।[2] इस समय फ़िरोज़ जंग बख़्तबुलन्द के विद्रोह को दबाने में लगा हुआ था, किन्तु सम्राट् ने उसे वापिस बुलाया; तब तक आज़म बहुत दूर न गया था एवं उसे हुक्म हुआ कि मालवा जाने के पहले वह बख़्तबुलन्द के विद्रोह को दबावे। जून, १७०१ ई० में आज़म मालवा पहुँच सका, किन्तु उसी समय उसे गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया और गुजरात चले जाने की आज्ञा हुई।[3]

इधर मालवा के सूबेदार मुख़्तियार ख़ाँ ने अपने पुत्र इफ़्तियार ख़ाँ को गोपालसिंह के विरुद्ध भेजा; सम्राट् ने विशेष रूप से आज्ञा दी थी कि सब रास्तों पर पूरा प्रबन्ध किया जावे और गोपालसिंह को पकड़ कर क़ैद कर लिया जाय; किन्तु सब प्रयत्न विफल हुए, गोपालसिंह भाग कर मेवाड़

[1] अख़बारात, जुलाई १०, १७ और सितम्बर १६, १७०० ई०

[2] भीमसेन, २, पृ० १३३ ब। ख़फ़ी ख़ाँ यह नहीं लिखता कि आजम को गोपालसिंह के विरुद्ध भेजा गया था (ख़फ़ी०, २, पृ० ४७४); किन्तु भीमसेन ने इस बात का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है।

[3] भीमसेन लिखता है कि जब आजम बुरहानपुर में था तभी उसकी नियुक्ति की गई थी (भीमसेन, २, पृ० १३० ब)। किन्तु मा० आ० में यह स्पष्ट लिखा है कि जब आजम धार में ठहरा हुआ था उसी समय नियुक्ति का आज्ञा पत्र उसे मिला (मा० आ०, पृ० ४४२) और इस कथन की पुष्टि अख़बारात, दिसम्बर १, १७०१ ई०, से होती है।

के महाराणा के राज्य में जा पहुँचा।[१] गोपालसिंह के प्रति महाराणा को सहानुभूति थी, एवं महाराणा की प्रेरणा से ही मलका-बजाना के जागीरदार उदयभान सक्तावत ने गोपालसिंह को आश्रय दिया; और महाराणा ने भी गुप्त रूप से द्रव्य देकर उसकी मदद की (फ़रवरी, १७०१)।[२] सन् १७०२ के दिसम्बर मास में रामपुरा के रतनसिंह, तथा देवलिया (प्रतापगढ़) के रावत प्रतापसिंह के पुत्र, कीर्तिसिंह ने मालवा के सूबेदार, अबूनसर ख़ाँ को सूचना दी कि महाराणा की सेना ने रामपुरा की सीमा पार कर उस पर चढ़ाई कर दी। अबूनसर ख़ाँ ने तत्काल महाराणा के वकील बाघमल को बुलाया और इस कार्यवाही के लिए पूछ-ताछ की; बाघमल ने जवाब दिया कि यह ख़बर झूठी है और मेवाड़ के महाराणा की ओर से इस बात का मुचलका लिख दिया कि शाही इलाक़े में किसी भी प्रकार की धूम-धाम न की जावेगी।[३]

गोपाल सिंह की क्षमा प्रार्थना। उसका दूसरा विद्रोह, १७०६-०७ ई०

महाराणा गोपालसिंह के लिए कुछ न कर सका, एवं अन्त में सन् १७०३ ई० में गोपालसिंह ने सम्राट् से क्षमा प्रार्थना की और शाही अधीनता स्वीकार कर ली। सम्राट् ने उसे क्षमा कर दिया और उसे वही पुराना मन्सब दे दिया। उसे हैदराबाद में स्थित कौलास का फ़ौजदार भी नियुक्त कर दिया, किन्तु उसके पूर्वजों की जागीर रामपुरा उसे नहीं

[१] भीमसेन, २, पृ० १३० ब; अख़बारात, फ़रवरी २६, १७०१ ई०

[२] वीर०, २, पृ० ७४१–२

[३] वीर०, २, पृ० ७४७–८

मिली।[1] सन् १७०५ में एक बार फिर गोपालसिंह के बुरे दिन आए। उसकी फ़ौजदारी उससे छीन ली गई और जब वह पुनः निर्धन हो गया, तब वह मरहठों से जा मिला। सन् १७०६ ई० के जनवरी मास में उसने परसु महरठा से मदद माँगी और सेना लेकर माण्डू, धार, की राह मालवा में घुसने की सोची। परन्तु इसको रोकने के लिए बिदारबख़्त नोलाय (बड़नगर) जा पहुँचा जिससे यह प्रयत्न भी विफल हुआ।[2] जब मरहठों ने मार्च १७०६ ई० में गुजरात पर चढ़ाई की तो गोपालसिंह ने उस सेना का भी साथ दिया।[3]

कुछ वर्षों तक रामपुरा में पूरी शान्ति रही और रतनसिंह ही वहाँ शासन करता रहा। जिस समय बिदारबख़्त मालवा का सूबेदार था, रतनसिंह बिदारबख़्त की शाही सेना के साथ था। नवम्बर, १७०५ ई० में शाहज़ादे की आज्ञा के बिना ही शाही सेना को छोड़ कर वह उज्जैन चला आया और वहाँ से रामपुरा लौट गया।[4] अब महाराणा की कृपा प्राप्त करने के लिए उसने महाराणा के साथ पत्र-व्यवहार भी शुरू किया। किन्तु उसके सारे प्रयत्न विफल हुए, महाराणा ने यही उत्तर दिया कि रतनसिंह के भावों पर ही उसके प्रति उनका बर्ताव निर्भर रहेगा। फ़रवरी

[1] अख़बारात, भीमसेन २, पृ० १४५ ब। टाड ने लिखा है कि "राणा ने (सम्राट् के विरुद्ध) शस्त्र ग्रहण किये और इस विद्रोह में मालवा ने भी (राणा का) साथ दिया" (टॉड० १, पृ० ४६३); परन्तु किसी दूसरे आधार से इस कथन की पुष्टि नहीं होती है।

[2] भीमसेन, २, पृ० १५५ अ; इनायत०, पृ० ४५ अ

[3] भीमसेन, २, पृ० १५६ अ; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३१०-१

[4] इनायत०, पृ० ७५ अ, ८७ अ

७, १७०६ को रतनसिंह ने महाराणा को पत्र द्वारा अपनी स्वामि-भक्ति तथा आज्ञाकारिता का आश्वासन भी दिया।[1] किन्तु बाद की घटनाओं से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि रतनसिंह के प्रति महाराणा के भाव कभी भी अच्छे नहीं रहे। यद्यपि इस विद्रोह के कारण आगामी वर्षों में अनेकानेक राजनैतिक उलझनें पड़ने वाली थीं और कई विकट षड्यन्त्र रचे जाने वाले थे, इस समय तो एकाध बार के सिवाय, जब कि गोपालसिंह ने रामपुरा को हस्तगत करने का प्रयत्न किया, मालवा प्रान्त में विशेष गड़बड़ नहीं हुई। यद्यपि इस विद्रोह का प्रारम्भ सम्राट् की धार्मिक नीति में निहित है, यह विद्रोह प्रधानतया राजनैतिक ही था।

५. मालवा और मरहठे; उनके प्रारम्भिक आक्रमण तथा मालवा के साथ उनका प्रथम सम्पर्क (१६९८-१७०६ ई०)

ऐसी कोई भी सम्भावना न थी कि मालवा और मरहठों में किसी भी प्रकार का सम्पर्क एवं सम्बन्ध स्थापित हो सके। भौगोलिक दृष्टि से

मरहठे और मालवा

वे बहुत ही दूर-दूर स्थित थे; सांस्कृतिक दृष्टि से उनमें कोई समानता न थी; सामाजिक बातों में वे पूर्णतया विभिन्न थे। पुनः मालवे की हिन्दू-प्रजा, असहिष्णुता-प्रधान कट्टर धार्मिक नीति तथा भारत में मुस्लिम सभ्यता एवं सत्ता के आधिपत्य के विरुद्ध उठने वाली विरोधी भावना के प्रतिनिधि और प्रतिपादक के स्वरूप में भी मरहठों के साथ किसी भी प्रकार का अपनापन अनुभव नहीं कर सकती थी। मालवा के हिन्दू और विशेषतया वहाँ के राजपूत तो महाराणा प्रताप के प्रशंसक तथा समर्थक थे, उनके

---

[1] वीर०, २, पृ० ७६०-१

लिए उदयपुर के महाराणा ही "हिन्दुआ सूरज" थे; मरहठे तो नए-नए उजड्ड आगन्तुक मात्र थे। सुदूर दक्षिण में जो राजपूत राजा एवं सेनापति शाही सेना में सेवा करते हुए सम्राट् की ओर से मरहठों के विरुद्ध लड़ रहे थे, उनकी दृष्टि में भी मरहठे कट्टर शत्रु ही थे, उन्हें वे कभी मित्र न मान सके। इस साधारण नियम के अपवाद भी मिलते थे, किन्तु वे बहुत ही थोड़े थे, और यदा-कदा ही देख पड़ते थे।

सन् १६९८ ई० में महाराष्ट्र को लौट जाने पर, राजाराम ने जागीर-प्रथा को पुनर्जीवित किया और उसे मरहठा राजनीति में विशेष महत्त्व देकर आगामी महान मरहठा-सत्ता की नींव डाला। किन्तु राजाराम के भाग्य में यह न लिखा था कि वह पूर्ण रूपेण मरहठों की सत्ता का पुनर्निर्माण कर सके, उसने बीज बो दिया और वह बीज भूमि में पड़ा अदृष्ट रूप से अंकुरित होता रहा।

आक्रमणों का एक मात्र कारण; उन आक्रमणों का सच्चा महत्त्व

इस समय प्रथम बार मालवा पर आक्रमण करने का विचार मरहठे सेनानायकों को आया और सफलता-पूर्वक वह आक्रमण भी हुआ। एवं जब ताराबाई ने मुग़लों के विरुद्ध आक्रमणशील नीति अंगीकार करने की सोची तब उसने मालवा को भी मरहठों के आक्रमण-क्षेत्र में गिन लिया। इस समय मुग़ल-सत्ता को हानि पहुँचाने के लिए इन अनेकानेक उपायों को कार्य रूप में परिणत करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया गया, किन्तु उन सब प्रयत्नों का आधार न तो किसी सुसंगठित सत्ता की प्रेरणा ही थी और न मरहठों के अधिपति की आज्ञा ही। राजाराम की मृत्यु के साथ ही मरहठों के राज्य का केन्द्रीय संगठन बिलकुल छिन्न-भिन्न हो गया, और सब मरहठे

सरदार, चाहे वे नाम-मात्र के लिए भी राजाराम के उत्तराधिकारियों के अधीन थे या न थे, अपनी इच्छा एवं सुविधानुसार अपने ही स्वार्थ और लाभ के लिए मुग़लों के राज्य में लूट-खसोट करने लगे और मालवा तक जा पहुँचे। इन प्रारम्भिक आक्रमणों का एक मात्र महत्त्व इसी बात में है कि इन से मरहठों के लिए एक नया रास्ता खुल गया, उनको एक नवीन कार्य-क्षेत्र मिला, और साथ ही साथ पूर्णतया विभिन्न तथा पृथक् इन दो सत्ताओं में सम्पर्क भी स्थापित हो गया। अतएव पूरे बारह वर्ष बाद जब पेशवा एवं उसके सेनापति नवीन प्रान्तों को जीत कर अपने राज्य को बढ़ाने का उपाय सोचने लगे, तब उन्होंने भी इन प्रारम्भिक आक्रमणकारियों का ही अनुसरण किया। बालाजी विश्वनाथ ने राह साफ़ की और बाजीराव ने राजाराम की नीति तथा उसके इरादों को पूर्णरूप से कार्यरूप में परिणत किया। राजाराम और बाजीराव की नीतियों को सम्बद्ध करने वाली अदृष्ट श्रृंखला इन्हीं प्रारम्भिक आक्रमणकारियों के स्वरूप में हमें मिलती है।

मालवा पर मरहठों का सर्व-प्रथम आक्रमण सन् १६९९ ई० में हुआ।[1] नवम्बर मास में जब औरंगज़ेब सतारा के क़िले का घेरा डालने के लिये जा रहा था, उसी समय कृष्णाजी सावन्त नामक एक मरहठा सेनापति ने १५००० मरहठे सवारों को लेकर नर्मदा नदी पार की और

---

[1] अपने "मेमायर" में मालकम लिखता है कि सन् १६९० से ही मरहठों ने धरमपुरी पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया था, और सन् १६९८ ई० में मरहठों ने माण्डू के क़िले को हस्तगत कर लिया था। मालकम के इस उल्लेख की पूरी-पूरी विवेचना इसी अध्याय के परिशिष्ट "अ" में देखो।

धामुनी के आस-पास के कुछ प्रदेशों में लूट-खसोट कर लौट आया।

कृष्णाजी सावन्त का आक्रमण, १६९९-१७०० ई०

भीमसेन लिखता है कि "पहिले के सुलतानों के समय से अब तक कभी भी मरहठों ने नर्मदा को पार नहीं किया था। उसने (कृष्णाजी सावन्त ने) लूट-खसोट की और बिना किसी प्रकार के विरोध के वह घर लौट आया।"[1] सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि—"जो मार्ग इस प्रकार खुला वह १८ वीं शताब्दी के मध्य में जब तक मालवा पूर्णतया मरहठों के आधिपत्य में न आ गया किसी भी प्रकार बन्द न हुआ।"[2]

ज्वर से पीड़ित होकर मार्च २, १७०० ई० को राजाराम मर गया और उसके बाद उसका पुत्र कर्ण गद्दी पर बैठा, किन्तु वह भी राज्यारोहण के तीन सप्ताह बाद ही शीतला से रुग्ण होकर मर गया। राजाराम की स्त्री, ताराबाई ने अपने दस-वर्षीय पुत्र, शिवाजी को गद्दी पर बैठाया और रामचन्द्र पण्डित की सहायता से वह स्वयं शासन करने लगी।[3] शासन की बागडोर ग्रहण करते ही ताराबाई सम्राट् की अधीनता स्वीकार करने

---

[1] इस आक्रमण का उल्लेख केवल भीमसेन ने ही (२, पृ० १२९ अ) किया है। इस आक्रमण के पहिले, सिवाय एक उल्लेख के इतिहास में कृष्णाजी सावन्त का कुछ भी पता नहीं लगता। अख़बारात में ही यह उल्लेख मिलता है कि अप्रेल, १६९९ ई० में देवगढ़ के बख़्तबुलन्द ने उसे पकड़ कर क़ैद कर लिया था। उसी साल जून महीने में जब हमीद ख़ाँ ने देवगढ़ के क़िले को हस्तगत किया तब शायद कृष्णाजी निकल भागा। इस आक्रमण के बाद भी कृष्णाजी के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

[2] औरंगजेब, ५, पृ० ३८२

[3] अख़बारात, अप्रेल १ और ४, १७०० ई०; मा० आ०, पृ० ४२०; भीमसेन, २, पृ० १३० अ; औरंगजेब, ५, पृ० १३५-६, १९९

को उतारू हो गई और सम्राट् को भी इस विषय में कहला भेजा, किन्तु सम्राट् ने इस प्रार्थना को ठुकरा दिया और यह चाहा कि मरहठों के सब क़िले उसके अधिकार में दे दिये जावें ।[1] अब तो ताराबाई मुग़लों के विरुद्ध एक आक्रमणशील नीति का प्रयोग करने को सोचने लगी । इस नवीन नीति का ख़फ़ी ख़ाँ ने विशद वर्णन किया है; वह लिखता है, "शाही इलाक़े में बरबादी करने के प्रयत्न में उसने कुछ भी उठा नहीं रखा; लूट-खसोट करने के लिए दक्षिण के छः सूबों तथा मालवा के सूबे में भी सिरोंज और मन्दसौर पर्यन्त सेनाएँ भेजीं । सम्राट् के पुराने पुराने सूबों तक में वे जा पहुँचे और जिधर-जिधर निकले लूट-खसोट ही नहीं की किन्तु सब कुछ नष्ट कर दिया । जिधर-जिधर ताराबाई के ये सेनानायक गये वहाँ-वहाँ उन्होंने अपनी स्थापना का चिरस्थायी प्रबन्ध किया, अपने कमाविसदार (लगान वसूल करनेवाले कार्यकर्ता) नियुक्त कर उन्होंने सालों-महीनों तक डेरों में या हाथियों के बीच ही अपने बाल-बच्चों के साथ आनन्द पूर्वक जीवन बिताया । उनका साहस बहुत बढ़ गया । उन्होंने सब परगनों को आपस में बाँट लिया, और शाही तरीक़े के अनुसार ही अपने सूबेदार, कमाविसदार तथा राहदार नियुक्त किये ।"[2]

राजाराम की मृत्यु, १७०० ई० । ताराबाई का प्रभुत्व एवं उसकी नवीन नीति

आगे चल कर ख़फ़ी ख़ाँ लिखता है कि—"अहमदाबाद की सीमा तक एवं मालवा प्रान्त तक में आक्रमण कर ये (मरहठे सेनानायक) सारे

[1] अख़बारात, मार्च १२, १७००; औरंगज़ेब, ५, १३६-७

[2] ख़फ़ी०; २, पृ० ५१६-७; ईलियट, ७, पृ० ३७३-४

देश को उजाड़ते हैं; दक्षिण के सूबों से लेकर उज्जैन के आस-पास तक यह बरबादी होती है।"[1] इस समय के मराठी ग्रन्थों तथा अन्य आधारों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि मालवा पर मरहठों की दृष्टि अवश्य थी, उसे अपने कार्य-क्षेत्र में शामिल कर लिया था, किन्तु इस समय मालवा में उन्हें विशेष सफलता प्राप्त न हुई। खानदेश के प्रान्त तक ही यत्र-तत्र जागीरें दी गई थीं और उसी प्रान्त में उन्होंने अनेकानेक अपने नाके तथा थाने स्थापित किये थे; अब तक मालवा में उन्होंने न तो कोई जागीर ही दी और न कोई थाने ही स्थापित करने का साहस किया।[2] यद्यपि ताराबाई ने यह सारा प्रबन्ध एवं अन्य उपाय ढूँढ कर उनकी कल्पना की, किन्तु मरहठों की सत्ता की निर्बलता के कारण ही वह उन सब इरादों को पूर्णतया कार्यरूप में परिणत न कर सकी। अपनी व्यक्तिगत स्वेच्छा और संकल्प के साथ ही साथ अपने निजी स्वार्थ एवं सुविधा के अनुसार भी प्रत्येक सेना-नायक ने इस ओर प्रयत्न किया; और इसी कारण इस समय मालवा में मरहठे अपनी सत्ता की जड़ न जमा सके। सन् १७१३ ई० के बाद बालाजी विश्वनाथ को इस बात के लिए नये सिरे से प्रयत्न करना पड़ा।

यद्यपि ताराबाई के सब प्रयत्न विफल हुए, किन्तु उनसे मरहठों की सत्ता में कुछ नव चेतनता का संचार अवश्य हुआ और मालवा तक पहुँच

---

[1] खफ़ी०, २, पृ० ५१७-८; ईलियट, ७, पृ० ३४७-८

[2] बुआजी पवार की जागीर के बँटवारे की जो सनद देखने को मिली है, उस से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। बुआजी पवार की कोई भी जायदाद खानदेश से उत्तर में न थी, उसी प्रान्त तक ही उनकी सत्ता सीमित थी। धारच्या०, पृ० ५-७

कर उस प्रान्त पर आक्रमण करने के प्रयत्न सन् १७०३ ई० के बाद पुनः आरम्भ हुए। सन् १७०३ के आरम्भ में, जब सम्राट् कोण्डाना (सिंहगढ़) के क़िले का घेरा लगाये बैठा था, मरहठों ने एक बार फिर नर्मदा को पार किया और उज्जैन के आस-पास तक उपद्रव मचाया। कुछ ही महीनों के बाद एक दूसरे दल ने बुरहानपुर को लूटने के बाद "नर्मदा के दक्षिण में मालवा की ही सीमा में स्थित" खरगोन शहर पर चढ़ाई की और उसे विध्वंस करने में कुछ उठा न रखा।[1]

इन नगण्य आक्रमणों के बाद एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण आक्रमण हुआ। सन् १७०३ ई० की बरसात का मौसिम समाप्त होते ही आक्टोबर महीने में नीमा सिंधिया बरार में जा घुसा; बरार के नायब-सूबेदार, रुस्तम ख़ाँ को हराया, होशंगाबाद परगने पर आक्रमण किया और नर्मदा को पार कर वह मालवा में आ पहुँचा। "चूँकि धन्ना तथा अन्य मरहठे सेनापतियों के साथ नीमा सिंधिया की बनती न थी, उसने जोश में आकर नर्मदा को पार किया; हिन्दुस्तान में आ घुसा और सिरोंज तक आक्रमण किया। छत्रसाल बुन्देला की प्रेरणा से उसने मालवा प्रान्त को बरबाद कर दिया।"[2] जिन जिन प्रान्तों में ये आक्रमणकारी जा पहुँचते थे, वहाँ के शासक अपने प्रान्त को लूट-खसोट तथा बरबादी से बचाने के लिए इन आक्रमणकारियों को बहुत सा द्रव्य देकर

नीमा सिंधिया का मालवा पर आक्रमण, १७०३-१७०४ ई०

---

[1] औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८२-३; भीमसेन, २, पृ० १४४ ब; अख़बारात, फ़रवरी ११, १७०३

[2] भीमसेन, २, पृ० १४८; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८३

उन्हें सन्तुष्ट कर देते थे कि उस प्रान्त से वे चले जावें; मनुची के कथनानुसार द्रव्य-प्राप्ति का प्रलोभन ही मरहठों को बारंबार आक्रमण करने को प्रेरित करता था।[1] मरहठों के दल में कोई ५०,००० सवार थे। होशंगाबाद की ओर जाने के पहिले ही आक्रमणकारी दो दलों में विभक्त हो गए।[2] एक दल तो माण्डू की ओर चला और दूसरा नीमा सिंधिया के नेतृत्व में हण्डिया के पास ही मालवा प्रान्त में जा घुसा और राह में आने वाले गाँवों को लूटता, उन्हें उजाड़ कर जलाता हुआ सिरोंज तक जा पहुँचा।[3]

ज्यों ही सम्राट् ने मालवा पर होने वाले मरहठों के इस आक्रमण की ख़बर सुनी, वह बहुत चिन्तित हो गया, और उसकी चिन्ता इस कारण से भी अधिक बढ़ गई कि उत्तरी भारत से दक्षिण को भेजा जाने वाला ख़ज़ाना इस समय सिरोंज में रखा हुआ था; समुचित रक्षकों के एकत्रित न हो सकने के कारण ही अब तक वह दक्षिण को नहीं भेजा जा सका था। सम्राट् ने आक्टोबर ३१, १७०३ के दिन शाहज़ादे बिदारबख़्त को

---

[1] मनुची, ३, पृ० ५०२

[2] मरहठों के दल के यों विभक्त होने का उल्लेख केवल मनुची ही करता है (मनुची, ३, पृ० ४२६)। माण्डू पर होने वाले आक्रमण की विशेष घटनाएँ नवाजिश ख़ाँ के पत्रों के संग्रह में मिलती है (नवाजिश०, पृ० १७ ब-१८ ब)। सर यदुनाथ सरकार ने माण्डू पर होने वाले इस आक्रमण का उल्लेख नहीं किया है।

[3] औरंगजेब, ५, पृ० ३८४, भीमसेन, २, पृ० १४७ अ; इनायत०, पृ० ३० ब। "शिव चरित्र प्रदीप—गदाधर प्रल्हाद शकावली" (पृ० ६८) में लिखा है कि इस आक्रमण के समय नीमा सिंधिया के अतिरिक्त केसोपंत और परसो जी भोंसले भी मरहठों के इस दल के साथ थे; किन्तु फ़ारसी इतिहासकार उन के नामों का उल्लेख नहीं करते हैं। सम्भव है कि इस दल के प्रधान नेता, नीमा सिंधिया, के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति के नाम का उल्लेख करना उन्हें आवश्यक प्रतीत न हुआ हो।

आज्ञा दी कि जल्दी-जल्दी प्रयाण कर वह मरहठे आक्रमणकारियों पर धावा करे, उन्हें मार भगावे और सिरोंज में रखे हुए ख़ज़ाने को दक्षिण में ले आवे।[१] इस समय आज़म गुजरात में था, आक्रमणकारियों को दण्ड देने के लिए मालवा प्रान्त में जाने के लिए सम्राट् ने उसे भी आज्ञा दी।[२] परन्तु तब बिदारबख़्त मालवा से बहुत दूर था; ऐसे धावे के लिए उसकी सेना भी न तो पर्याप्त ही थी और न उसकी पूरी तैयारी ही थी; पुनः सम्राट् ने १,००० सवारों की मदद देने का प्रबन्ध किया था किन्तु यह सहायता भी अपर्याप्त थी।[३] आज़म भी गुजरात से नहीं हिला।[४] इसी समय (नवम्बर, १७०३ ई०), मरहठों के किसी दूसरे दल का पीछा करता हुआ, फ़िरोज़ जंग ख़ानदेश में आ पहुँचा और सम्राट् ने मालवा के आक्रमणकारियों का पीछा कर उन्हें दण्ड देने का कार्य उसे ही दे दिया। अपना केम्प तथा अपना भारी-भारी सामान बुरहानपुर में ही छोड़ कर फ़िरोज़ जंग मालवा के लिए रवाना हुआ।[५] बिदारबख़्त भी बुरहानपुर की ओर जा रहा था, सम्राट् ने उसे आज्ञा दी कि वह बुरहानपुर में ही ठहर कर लौटते हुए मरहठों की राह देखे और दक्षिण की ओर जाते हुए उन मरहठों को उचित दण्ड दे।[६]

---

[१] इनायत०, पृ० ४३ अ, ४५, ३१ अ-ब, ५८, १२ अ; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८४

[२] इनायत०, पृ० १२ अ

[३] इनायत०, पृ० ४६ अ-ब, १२ अ; मनुची, ३, पृ० ५०९; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८४

[४] इनायत०, पृ० १४ ब

[५] भीमसेन, २, पृ० १४८ ब; मा० आ०, पृ० ४८३

[६] इनायत०, पृ० ३१ अ-ब; ५९, ७९ अ

जब मरहठे सिरोंज शहर का घेरा डाले बैठे थे फ़िरोज़ जंग भी जा पहुँचा। मरहठों ने सारे शहर को बुरी तरह से लूटा; किन्तु सिरोंज के चौधरी, गोपाल की वीरता के ही कारण मरहठे शाही ख़ज़ाने को हाथ न लगा सके; यही गोपाल चौधरी किसी समय राज-विद्रोही रह चुका था।

सिरोंज का युद्ध; जनवरी, १७०४

फ़िरोज़ जंग ने घेरा डालने वालों पर हमला किया और मरहठों की सेना के अग्रगामी भाग को चीरता हुआ जिस हाथी पर बैठा नीमा युद्ध कर रहा था उस तक जा पहुँचा। तब तो नीमा हाथी पर से कूद पड़ा और घोड़े पर बैठ कर भाग खड़ा हुआ।[1] युद्ध में अनेकानेक मरहठे एवं उनके स्थानीय अफ़ग़ान साथी या तो आहत हुए या मारे गए, और बाक़ी बचे हुए मरहठे बुन्देलखण्ड की ओर भाग गए। बुरहानपुर में लूटे हुए अनेकानेक झण्डे, नगाड़े, हाथी, ऊँट तथा दूसरा बहुत-सा माल सिरोंज में आ कर फ़िरोज़ जंग के हाथ आए। रुस्तम ख़ाँ के गाय-बैल तथा उसके क़ैद सैनिक, जिन्हें मरहठे हाँक कर अपने साथ लिये जा रहे थे, उन्हें भी

[1]अख़बारात, मार्च ११, और १३, १७०४; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८४–५। भीमसेन, फ़िरोज़ जंग के प्रतिस्पर्धी, ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ का समर्थक था, एवं उसने फ़िरोज़ जंग के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा है। वह लिखता है कि मरहठों के साथ कोई भी युद्ध नहीं हुआ, तथापि फ़िरोज़ जंग ने विजय प्राप्ति की सूचना सम्राट् को दे दी; जब सम्राट् को सच बात मालूम हुई तब विजय प्राप्ति के पुरस्कार-स्वरूप जो जो सम्मान आदि दिए जाने वाले थे उन को देने में विलम्ब किया (भीमसेन, २, पृ० १४८ ब)। मनुची भी लिखता है कि "किसी ने भी मरहठों की राह में बाधा न डाली और वे सकुशल लौट आए" (मनुची, ३, पृ० ५०२)। किन्तु अख़बारात से यह स्पष्ट साबित है कि उपर्युक्त दोनों कथन ग़लत हैं; कालिमात० (पृ० ४४ अ, तथा बाद के पृष्ठ) भी अख़बारात के कथन की पुष्टि करता है।

यहाँ छुड़ाया ।[१] भागे हुए आक्रमणकारी नरवर के पास की पहाड़ी घाटियों में होते हुए कालाबाद (कालाबाग) के प्रान्त में जा घुसे;[२] वे धामुनी एवं गढ़ा की राह दक्षिण को लौटने की सोच रहे थे, किन्तु फ़िरोज़ जंग उनका पीछा किये ही गया ।[३] फ़रवरी १० को भीमगढ़ से रवाना होकर वह छत्रसाल के विरुद्ध बढ़ा और धामुनी के जंगलों में जाकर डेरा डाला । इस समय नीमा की सेना इसी जंगल के बाहर ठहरी हुयी विश्राम कर रही थी; फ़िरोज़ जंग की सेना के अग्रगामी भाग ने खंजर ख़ाँ के सेनापतित्व में नीमा पर अचानक आक्रमण किया । उस लड़ाई में यद्यपि शाही सेना की बहुत क्षति हुई, परन्तु आक्रमणकारी बुरी तरह से हारे और तितर-बितर होगए । फ़िरोज़ जंग अब दक्षिण के लिए लौट पड़ा और अप्रेल ८, १७०४ को बुरहानपुर पहुँचा ।[४]

इस समय सम्राट् तोरना के क़िले का घेरा डाले बैठा था; उत्तर से कोई ख़बर नहीं आने से वह अधिकाधिक चिन्तित हो रहा था । आज़म ने भी शाही सेना की मदद के लिए मालवा में कुछ भी सेना नहीं भेजी थी, एवं मार्च २, १७०४ को सम्राट् ने आज़म को एक पत्र लिखा जिसमें इस बेपरवाही के लिए उसकी ख़ूब भर्त्सना की ।[५] मार्च ११ को जासूसों की रिपोर्ट सम्राट् के पास पहुँची और दो दिन बाद फ़िरोज़ जंग का भी पत्र मिला, जिसमें शाही सेना की विजय का पूरा हाल दिया हुआ था । फ़िरोज़

---

[१] अख़बारात, मार्च ११, १७०४

[२] मनुची, ३, पृ० ५०२, ५०९; ४, पृ० ४५९

[३] इनायत०, पृ० १५ अ, ९३ ब; कालिमात०, पृ० ४४ अ एवं आगे के पृष्ठ।

[४] अख़बारात, मार्च १६, १७०४ ई०; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८५

[५] इनायत०, पृ० १४ ब

जंग के मन्सब में दो हज़ार सैनिकों की वृद्धि कर दी गई और उसे "सिपह-सालार" का ख़िताब दिया गया। शाही सेना के अन्य अफ़सरों को भी पुरस्कार दिया गया। सिरोंज के बहादुर चौधरी तथा फ़ौजदार को भी पुरस्कार मिले।[1]

माण्डू पर मरहठों का आक्रमण; उसकी विफलता

आक्रमणकारियों का दूसरा दल, बीजागढ़ होता हुआ, माण्डू की ओर बढ़ा; नर्मदा के तीर पर पहुँच कर इधर-उधर फैल गया और आठ-नौ दिन तक नर्मदा पार करने का लगातार प्रयत्न किया, लड़ते भी रहे, किन्तु दूसरे किनारे पर नहीं पहुँच सके। माण्डू के फ़ौजदार नवाज़िश ख़ाँ ने मालवा प्रान्त के सूबेदार, अबूनसर शायस्ता ख़ाँ को लिखा कि वह सेना लेकर माण्डू चला आवे जिससे दोनों की सम्मिलित सेनाएँ आक्रमणकारियों को हरा कर भगा दें, और इस प्रकार उन्हें नर्मदा पार न करने देकर मालवा पर होने वाले इस आक्रमण को रोक दें। किन्तु रुस्तम ख़ाँ की हार की ख़बर सुनकर शाही सेनापतियों के दिल में डर बैठ गया था। शायस्ता ख़ाँ ने सिर्फ़ ६० घुड़सवार भेजे और स्वयं उज्जैन के क़िले में आश्रय लिए बैठा रहा। इतने ही में २०,००० मरहठे सवारों का एक दूसरा दल सुलतानपुर होता हुआ मालवा में आ घुसा; नर्मदा को पार कर माण्डू पर चढ़ आया। इस आक्रमण में अवासगढ़ (बड़वानी) के ज़मींदार मोहन सिंह ने मरहठों को रास्ता बताया। माण्डू की ओर बढ़ते हुए इस दल को रोकने के लिए कुछ शाही सेना ने विफल प्रयत्न भी किया। यह

---

[1] अख़बारात, मार्च १४, २०, २४, सन् १७०४ ई०; मा० आ०, पृ० ४८१; इनायत०, पृ० १५ अ; औरंगजेब, ५, पृ० ३८५

सोचकर कि उसकी सेना पर्याप्त न थी, नवाज़िश ख़ाँ माण्डू के क़िले को छोड़कर धार में जा छिपा और जहाँगीरपुर की पहाड़ियों तथा घाटियों की निगहबानी करता रहा; वह चाहता था कि मरहठों को उज्जैन की ओर बढ़ने से रोके। शाही सेना आक्रमणकारियों से लड़ती रही और अन्त में मरहठों को हताश कर दिया। नवाज़िश लिखता है कि—"निरन्तर युद्ध के बाद शाही सेना की विजय हुई और मालवा का सूबा निरापद बना रहा, उसकी रक्षा होगई।"[1] किन्तु अबूनसर ख़ाँ की निष्क्रियता एवं नवाज़िश ख़ाँ की भीरुता का हाल सुनकर सम्राट् बहुत ही क्रुद्ध हुआ। उसने नवाज़िश को माण्डू की फ़ौजदारी से हटा दिया, और अबूनसर ख़ाँ को आदेश दिया कि भविष्य में वह अधिक क्रियाशील हो।[2] बिदारबख़्त इस समय खरगोन में था, उसे सम्राट् ने आज्ञा दी कि वह मालवा में जाकर जो आक्रमणकारी मरहठे माण्डू के आस-पास घूम रहे थे उनको मार भगाए।[3] फ़िरोज़ जंग की विजय के फल-स्वरूप अब मालवा पर किसी दूसरे आक्रमण की कोई आशंका नहीं रही; दक्षिण भारत की राह भी खुल गई।[4] मार्च, १७०४ ई० के प्रारम्भ में पत्रों के ३५५ थैले और फलों के ५५ टोकरे सम्राट् की सेवा में पहुँचे। किन्तु जो शाही ख़जाना अभी उज्जैन में ही पड़ा था, उसे दक्षिण भेजना था; मरहठों के आक्रमण के परिणाम-स्वरूप प्रान्त में ही जो अनेकानेक स्थानीय विद्रोह उठ खड़े

[1] नवाजिश, पृ० १७ ब, १८ ब; कालिमात०, पृष्ठ ४४ अ-४५ अ; इनायत०, पृ० १२७ अ, ६३ अ

[2] कालिमात०, पृ० ४४ अ-४५ अ; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८६-७

[3] इनायत०, पृ० १२५ अ, १२७ अ, ६३ ब, १४ ब, १५ अ

[4] अख़बारात, मार्च ८, १७०४ ई०; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८६

हुए थे उनको दबाना भी ज़रूरी था। पुनः यह बात भी निश्चित रूप से ज्ञात न थी कि नीमा दक्षिण को लौट गया या नहीं। सिरोंज के आस-पास मरहठों ने जो अड्डे बना लिए थे उनको तोड़-फोड़ कर साफ़ करना था।[२]

मालवा में बिदारबख़्त का दौरा; मार्च-मई, १७०४ ई०[१]

बिदारबख़्त खरगोन से रवाना होकर मालवा की ओर बढ़ा; ज़ुल्फ़ीक़ार ख़ाँ को आदेश हुआ कि वह भी शाहज़ादे के साथ जाए।[३] किन्तु जब फ़िरोज़ जंग ने सम्राट् को सूचना दी कि नीमा बरार में ही है और मालवा पर आक्रमण होने की कोई आशंका न रही, ज़ुल्फ़ीक़ार ख़ाँ को शाहज़ादे के साथ न जाने का हुक्म हुआ। शाहज़ादे को भी लिखा गया कि बरसात शीघ्र ही शुरू हो जावेगी एवं उसका दौरा करना अत्यावश्यक नहीं था।[४] किन्तु बिदारबख़्त मालवा की ओर बढ़ चुका था, वह सिरोंज पहुँचा और ज्यों ही वहाँ बिखरे हुए मरहठों ने उसके आने का वृत्तान्त सुना वे बुन्देलखण्ड और इलाहाबाद की ओर भाग गए।[५] शाहज़ादा तत्काल उज्जैन लौट आया, वहाँ से शाही ख़ज़ाने को दक्षिण की ओर रवाना कर, खरगोन चला गया। यहाँ भील और

---

[१] इस दौरे की घटनाएँ इनायतुल्ला के पत्र-संग्रह से संकलित की गई हैं। पत्रों पर न तो कोई तारीख़ ही दी गई है और न वे कालानुक्रम से ही रखे गए हैं। इन पत्रों का पूर्ण अध्ययन करने के बाद मैं इसी परिणाम पर पहुँचा कि यद्यपि इस समय बिदारबख़्त मालवा का सूबेदार नहीं नियुक्त किया गया था, उसने सन् १७०४ के मार्च—मई महीनों में ही यह दौरा किया।

[२] इनायत०, पृष्ठ ६१ अ, ६३ ब, २८ अ, ३० अ, ३१ अ, ३२ अ-ब, ५८ अ

[३] इनायत०, पृष्ठ १२९ अ, ५९ अ, ३२ अ

[४] इनायत०, पृष्ठ २९ अ, ४० ब

[५] इनायत०, पृष्ठ २९ अ, १२८ अ

कोलियों के विद्रोह को दबाने तथा अवासगढ़ के विद्रोही ज़मींदार, मोहन सिंह का दमन करने का प्रयत्न किया।[1] इसी समय शाहज़ादे ने छत्रसाल बुन्देला पर चढ़ाई करने की भी सोची, किन्तु बरसात आरम्भ होने वाली ही थी अतएव उस इरादे को कार्य रूप में परिणत न कर सका।[2] इसी दौरे में शाहज़ादे ने जो प्रत्यक्ष देखा उसे बाद में सम्राट् की सेवा में यों निवेदन किया, "मरहठों के आक्रमण से प्रान्त में बहुत नुक़सान हुआ है; ख़ानदेश तो बिलकुल बरबाद हो गया है, और साथ ही ख़ानदेश से लगे हुए मालवा प्रान्त के प्रदेश भी उजड़ गए हैं"।[3] कुछ मास बाद जब शाहज़ादे को मालवा की सूबेदारी दी जाने लगी तब इसी दुर्दशा के कारण उसे स्वीकार करने में वह हिचकिचाने लगा।[4] इस दौरे के बाद शीघ्र ही शाहज़ादे को आज्ञा हुई कि वह बुरहानपुर को लौट आवे, क्योंकि इस समय मालवा पर मरहठों का पुनः आक्रमण होने की आशंका नहीं रह गई थी।[5]

नीमा सिंधिया के नेतृत्व में होने वाले उपर्युक्त आक्रमण के बाद मालवा पर मरहठों का कोई बड़ा आक्रमण नहीं हुआ। सन् १७०४ ई० की बरसात ख़तम होने पर बिदारबख़्त को आज्ञा हुई कि वह मालवा चला जावे और मरहठों के पुनः आक्रमण की सम्भावना को न रहने दे। शाही आज्ञानुसार ज़ुल्फ़ीक़ार ख़ाँ भी बुरहानपुर

मरहठों के बाद के आक्रमण; १७०४-०७ ई०

[1] इनायत०, पृ० १२८ अ, ४० अ

[2] इनायत०, पृ० ३० अ, ३२ अ-ब, २९ ब

[3] इनायत०, पृ० १५ अ, ६० अ, ६१ अ

[4] इनायत०, पृ० १९ अ, १३२ ब

[5] इनायत०, पृ० १०६ ब

गया। आक्टोबर, १७०४ ई० के प्रारम्भ में सम्राट् को ख़बर मिली कि नीमा पुनः मालवा पर आक्रमण करने की सोच रहा था। शाहज़ादे को इस बात की सूचना दे दी गई और उसे आज्ञा हुई कि अगर ऐसा कोई आक्रमण हो तो जहाँ तक सम्भव हो आक्रमणकारियों को ख़ानदेश से आगे बढ़ने न दे।[१] सन् १७०५ ई० में यह आशंका थी कि कहीं परसु मरहठा हंडिया की राह मालवा पर आक्रमण न कर दे, इसलिए आक्रमण-कारियों को रोकने तथा ख़ान आलम की मदद करने के लिए शाहज़ादा हंडिया गया।[२] सन् १७०५ ई० के प्रारम्भिक महीनों के बाद से ही मालवा में मरहठों का उपद्रव नहीं रहा।[३] बिदारबख़्त ने मालवा में पुनः शान्ति स्थापित की और उसके बाद मालवा में केवल दो ही उपद्रव हुए। प्रथम तो (शायद सन् १७०५ ई० में) मरहठों ने बड़वानी गाँव का घेरा लगाया।[४] इसके बाद जनवरी, १७०६ ई० में गोपालसिंह चन्द्रावत की सहायतार्थ परसु मरहठा ने ४००० सवार भेजने का इरादा किया, इन सवारों का सामना करने के लिए बिदारबख़्त को नोलाई (बड़नगर) की ओर जाना पड़ा; किन्तु मरहठों का यह प्रयत्न विफल हुआ।[५] इसके बाद ही बिदारबख़्त गुजरात भेज दिया गया। उसके चले जाने के बाद भी साल भर तक मालवा में पूर्ण शान्ति रही और मरहठों का कोई भी आक्रमण नहीं हुआ।

---

[१] इनायत०, पृ० ९१ ब, ९२ ब, ९३ अ, १०३ ब, १०७ अ; अख़बारात, आक्टोबर २०, १७०४ ई०; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८९

[२] इनायत०, पृ० ८७ अ

[३] इनायत०, पृ० ३७ अ

[४] इनायत०, पृ० ६४ अ

[५] इनायत०, पृ० ८५ अ

६. अन्य साधारण उपद्रव (१६६८–१७०७ ई०)

उपर्युक्त अनेकानेक बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण विद्रोहों एवं आक्रमणों के अतिरिक्त कई साधारण स्थानीय उपद्रव भी हुए। सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि—"इस शासन काल के अन्तिम वर्षों में जिन जिन व्यक्तियों ने मालवा प्रान्त की शान्ति भंग की, उनकी गणना नहीं की जा सकती।"[१] "मरहठे, बुन्देला तथा बेकार अफ़ग़ान सारे प्रान्तों में उपद्रव मचा रहे थे"[२] और प्रान्त भर में अनेकानेक आक्रमणों के परिणाम-स्वरूप यह अराजकता पूर्ण प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी। जुलाई, १६६६ ई० में उमर नामक एक पठान शोलापुर की जेल तोड़ कर भाग निकला और कोटड़ी-पिरिया सरकार में जाकर लूट मार मचाने लगा।[३] देवगढ़ का पदच्युत, विद्रोही राजा, बख़्तबुलन्द देवगढ़ के क़िले का आश्रय लिए बैठा था और हामिद ख़ाँ ने क़िले का घेरा डाला था; इसी समय बख़्तबुलन्द क़िले से भाग कर मालवा में आ घुसा। वह धामुनी होता हुआ गढ़ पहुँचा और प्रान्त के उस प्रदेश में बहुत धूमधाम की। यद्यपि बख़्तबुलन्द दूसरी बार मालवा में नहीं आया, उसके स्थानीय मुसलमान साथियों ने सन् १७०३ और १७०४ ई० में इस प्रान्त में पुनः उपद्रव मचाया था।[४]

फ़रवरी, १७०० ई० में निसार नामक एक दूसरे पठान ने अपने

---

[१]औरंगज़ेब, ५, पृ० ३९०

[२]इनायत०, पृ० १५ अ

[३]अख़बारात, जुलाई ५, १६९९ ई०

[४]औरंगज़ेब, ५, पृ० ४०८-१०; अख़बारात, जुलाई ५, ६, १६९९ ई०; मा० आ०, पृ० ४०४

२००० साथियों को लेकर बहुत उपद्रव किया।[1] कुछ महीनों बाद ही, जुझारराव विद्रोही हो गया; खातोली परगने के गाँवों पर वह चढ़ दौड़ा, उन गाँवों को जला कर वहाँ के सब ढोरों को घेर कर ले गया।[2] सिरोंज का चौधरी, गोपाल बरसों क़ैद रहा; ज्यों ही क़ैद से छूटा उसने सिरोंज के लोगों पर फिर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया, उद्धत होकर शाही आज्ञा की अवज्ञा भी करने लगा। सम्राट् ने आज्ञा दी कि उसे पकड़ कर शाही दरबार में हाज़िर किया जाय। गोपाल की माँ ने भी शाही लगान आदि देने से इन्कार किया। किन्तु जब सिरोंज पर नीमा का आक्रमण हुआ और गोपाल ने आक्रमणकारियों का वीरता से सफलता-पूर्वक सामना किया, तब तो सम्राट् ने उसे भी पुरस्कार दिया। किन्तु सम्राट् ने इस उपद्रवी चौधरी पर से अपनी नज़र नहीं हटाई, और बारंबार उसके बारे में पूछताछ करता रहा।[3]

जनवरी, १७०५ ई० में जज़िया वसूल करने वाला एक मुसलमान, ब्रह्मदेव सिसोदिया के पुत्र, देवीसिंह की ज़मींदारी में जो पहुँचा तो ज़मींदार के आदमियों ने उस मुसलमान को पकड़ा और उसकी मूछ तथा डाढ़ी के बाल उखाड़ कर छोड़ दिया।[4] नवाज़िशख़ाँ ने अपनी पत्रावली में इस बात का विशद वर्णन किया कि किस प्रकार अनेकानेक छोटे मोटे उपद्रवों को दबाने के लिए उसे बारंबार सेना ले जानी पड़ी। हर बार

[1] औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८९

[2] अख़बारात, मई २७, १७००

[3] इनायत०, पृ० ३ ब, २६ ब, १५ अ, ८४ अ

[4] अख़बारात, जनवरी २८, १७०५ ई०

जब कभी शाही ख़ज़ाना या अन्य कोई वस्तुएँ प्रान्त में होकर दक्षिण को भेजी जाती थीं, तब बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। नवाज़िशख़ाँ ने किसी अब्बास अफ़ग़ान का उल्लेख किया है, जो ५००० साथियों को लेकर आम रास्तों पर लूट मार करता था और उज्जैन के पास से शाही डाक भी सही सलामत निकलने न पाती थी।[1] सन् १७०३-४ में जब मरहठों का आक्रमण हुआ, तब तो सारे प्रान्त में उपद्रव मच गया। अवासगढ़ का ज़मींदार, मोहनसिंह, मरहठे आक्रमण-कारियों से जा मिला; भील और कोली भी विद्रोही हो गए थे। इसी समय उत्तर में भी भीलों का विद्रोह उठा और माधो नामक किसी भील ने गागरोन के क़िले की नींव डाली। सन् १७०४ में मोहनसिंह ने नन्दुरबार और बीजागढ़ के आसपास बहुत लूट मार की।[2] बिदारबख़्त ने सम्राट् की सेवा में जो पत्र लिखे थे उनमें भी अनेकानेक छोटे-छोटे उपद्रवों का उल्लेख मिलता है। अतएव यह पढ़कर कोई आश्चर्य नहीं होता है कि जब नवाज़िशख़ाँ को माण्डू की फ़ौजदारी से अलग किया गया तब उसने इसे अपना सौभाग्य समझा, एवं "मुग़ल साम्राज्य के प्रख्यात मोती", बिदारबख़्त को भी इस प्रान्त की सूबेदारी स्वीकार करने में हिचकिचाहट हुई।[3]

---

[1] नवाजिश, पृ० १७ ब। जहाँ तक ज्ञात है नवाजिश ख़ाँ की पत्रावली की एक ही प्रति उपलब्ध हो सकी है, और यह प्रति सर यदुनाथ सरकार के संग्रह में सुरक्षित है। औरंगज़ेब, ५, पृ० ३८९

[2] नवाजिश, पृ० १८ ब; इनायत०, पृ० ३१ अ, ५७ ब, १०१ ब, १३८ अ, १४८ ब, ४० अ, १०६ अ, ६४ अ

[3] नवाजिश, पृ० ७ ब; इनायत०, पृ० १९ ब, १३२ ब

७. आधुनिक मालवा का प्रारम्भ; मालवा-निवासियों की परिस्थिति; (१६९८-१७०७ ई०)

आधुनिक मालवा के निर्माण में किसी एक व्यक्ति या एक सत्ता का ही हाथ न रहा; अनेकानेक कारणों के सम्मिलित प्रभाव एवं उन प्रवृत्तियों के विकास से ही मालवा को इसका आधुनिक स्वरूप प्राप्त हुआ है। पतनोन्मुख मुग़ल-साम्राज्य, मरहठों की निरन्तर बढ़ती हुई सत्ता तथा प्रान्त की बदलती हुई स्थानीय राजनीति ने ही मालवा को एक नवीन ढाँचे में ढाल दिया। १८ वीं शताब्दी के अन्तिम युगों में एक नवीन शक्ति ने प्रान्तीय राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश किया; वह नवीन शक्ति थी अंग्रेज़ी सत्ता। समय बीतता गया, महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं और छिन्न-भिन्न करने वाली प्रवृत्तियाँ अधिकाधिक शक्तिशाली होती गईं। मुग़ल-साम्राज्य के एक महत्त्वपूर्ण सुसंगठित प्रान्त, मालवा के भग्नावशेषों में से जिस नवीन मालवा का उद्भव हुआ वह कई छोटे-बड़े असम्बद्ध राज्यों का एक समूह मात्र था। ऐतिहासिक कारणों से यह राज्य आज कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण बन गए हैं; भारतीय एवं प्रान्तीय राजनीति में उनके वर्तमान स्थान का विचार करने से भी यह अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि उन विभिन्न राज्यों के उत्थान एवं विकास की विवेचना की जावे।

१८ वीं शताब्दी के मालवा के निर्माण के कारण

मालवा के इतिहास के इस परिवर्तन-काल में प्रान्तीय तथा स्थानीय राजनैतिक घटनाओं का महत्त्व बहुत ही बढ़ गया था; किन्तु यह खेद की बात है कि अब तक इतिहासकारों ने इस महत्त्वपूर्ण विषय के अध्ययन की ओर पूरा-पूरा ध्यान नहीं दिया। अतएव प्रान्तीय इतिहास के इस क्षेत्र में

स्थानीय राजनीति का महत्त्व; इसके अध्ययनार्थ आवश्यक आधार-सामग्री की कमी

खोज के लिए बहुत गुंजाइश है, किन्तु दुर्भाग्य से प्रान्तीय राजनीति के इस पहलू पर प्रकाश डालने वाली सामग्री का बहुत कुछ अभाव ही है। इस काल की राजनैतिक अराजकता ही इस अभाव के लिए बहुत कुछ ज़िम्मेदार भी है। इस उथल-पुथल के बाद भी जो सामग्री बची रह गई वह आज विभिन्न राज्यों के सरकारी मुहाफ़िज़-ख़ानों में बन्द पड़ी सड़ रही है; और उन राज्यों के अधिकारी इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं कि कहीं वह सामग्री किसी इतिहासकार को देखने के लिए न मिल जावे; उन्हें इस बात की पूरी आशंका रहती है कि उस सामग्री में होने वाली खोज के परिणाम-स्वरूप कहीं वे अपने वर्तमान गौरवपूर्ण पद से च्युत न हो जावें। किन्तु इस अध्याय में जिन जिन ख़ास घटनाओं तथा बातों की विवेचना की गई है, वे सब सच्ची हैं; क्योंकि प्राप्य सामग्री के अभाव के होते हुए भी प्रान्तीय इतिहास की विभिन्न घटनाओं तथा राजनीति के प्रवाह में जो जो प्रधान प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूपेण देख पड़ती हैं उन्हीं के आधार पर उक्त सभी बातों का उल्लेख किया गया है।

मालवा के राज्यों का आरम्भ

ऐसा कहा जाता है कि आधुनिक मालवा के प्रायः सब राजपूत राज्यों के निर्माता मुग़ल-सम्राट् ही थे, उनकी नींव डालने का यश उन्हीं सम्राटों के सिर मढ़ा जाता है; किन्तु यह विश्वास जितना प्रचलित और फैला हुआ है उतना ही ग़लत भी है। मुग़लों ने तो केवल एक ही राजपूत राज्य की स्थापना की; मालवा की सीमा पर स्थित कोटा राज्य ही वह एक-

मात्र अपवाद है। दूसरे सब राजपूत अधिपति जागीरदार एवं ज़मींदार ही थे, उन्हें केवल दीवानी अधिकार ही दिए गए थे, फ़ौजदारी अधिकार शाही अधिकारियों के हाथ में ही रहे। जिन व्यक्तियों को चिरकाल के लिए वंशपरम्परागत ज़मीन दी गई थी वे ज़मींदार कहलाते थे; जागीरें शाही सेवा के एवज़ में सेवा-काल तक के लिए ही व्यक्तिगत रूप से दी जाती थीं। कई व्यक्ति ऐसे भी थे जो ज़मींदार के साथ ही साथ जागीरदार भी कहलाते थे; इन लोगों को चिरकाल के लिए वंशपरंपरागत ज़मीन दी जाती थी, किन्तु साथ ही उस ज़मीन के बदले में शाही सेवा करना उनके लिए बाध्य होता था। इन व्यक्तियों के मन्सब में ज्यों-ज्यों वृद्धि होती जाती थी, त्यों-त्यों उनको अधिकाधिक जागीरें भी मिलती थीं; किन्तु यह मान-वृद्धि तथा जागीरें व्यक्तिगत ही रहती थीं। मालवा पर मुग़लों के आधिपत्य के अन्तिम दिनों में जिन-जिन ज़मींदारों और जागीरदारों के पास बहुत कुछ ज़मीन थी, जिनके अधिकार में बड़ी-बड़ी जागीरें थीं, और जो साम्राज्य के पतनकाल में इतने शक्तिशाली हो गए थे कि अपनी ज़मींदारियों पर अपना आधिपत्य बनाए रख सकें, उन्होंने साम्राज्य की निर्बलता से लाभ उठाया और धीरे-धीरे दीवानी के अतिरिक्त अन्य अधिकार भी हड़प लिए। इस अराजकता के काल में ये ज़मींदारियाँ पूर्णरूपेण सर्वाधिकार सम्पन्न राज्य बन गईं; अब उनके शासक सब प्रकार के न्यायाधिकारों एवं प्रभुत्व का प्रयोग करने लगे। इस प्रकार मुग़ल-साम्राज्य के पतन, मरहठे आक्रमणकारियों की नीति-विशेष तथा सब से अधिक इन आक्रमणकारियों के निरन्तर बढ़ते हुए कार्यक्षेत्र एवं आक्रमण प्रदेश के ही फल-स्वरूप यह जागीरें एवं ज़मींदारियाँ सर्वाधिकार सम्पन्न-राज्यों में परिणत हो गईं।

जिन-जिन राजपूत-घरानों ने मुग़ल सम्राटों की सच्चे दिल से, स्वामि-भक्ति पूर्वक सेवा की, उनके वंशजों को मालवा में बसाने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया था। इस प्रकार मालवा में राजपूतों के एक नए दल का प्रवेश हुआ और इन्हीं राजपूतों ने आगे चलकर मालवा में इन राज्यों की स्थापना की। जिस समय मुग़लों ने मालवा को जीत कर अपने साम्राज्य में मिलाया था, उस समय यहाँ अफ़ग़ानों एवं स्थानीय राजपूतों का ही आधिपत्य था। अफ़ग़ान बहुत काल से इस प्रान्त पर शासन कर रहे थे; और स्थानीय राजपूत मालवा की बादशाहत के अधीन रह कर भी एक प्रकार से स्वाधीन थे; यही नहीं बरसों तक उस मुसलमानी बादशाहत की नीति तथा उसके शासन का परिचालन भी उन्होंने ही किया था। इन दोनों दलों से यह आशा रखना, कि वे मुग़ल-सम्राटों के प्रति किसी प्रकार की विरोधी भावना न रखेंगे, व्यर्थ ही था। अकबर से लेकर औरंगज़ेब तक, सब मुग़ल-सम्राटों की यह बड़ी इच्छा रही कि दक्षिण भारत को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया जावे और साम्राज्य के इस प्रसार के लिए यह अत्यावश्यक जान पड़ा कि मालवा को एक आज्ञाकारी तथा स्वामि-भक्त प्रान्त बनाया जाय। एवं उन सम्राटों ने राजपूताने के राजपूत राजाओं के छोटे भाइयों तथा पुत्रों को मालवा में जागीर दी और इस प्रकार उस प्रान्त को इन स्वामिभक्त राजपूतों का एक उपनिवेश बनाने का प्रयत्न किया। अकबर ने बजरंगगढ़ (जो अब राघोगढ़ के नाम से प्रसिद्ध है) के खीची घराने की स्थापना की। शाहजहाँ ने कोटा को एक स्वतन्त्र राज्य बनाया और रतलाम तथा

मालवा में नए राजपूत बसाने की मुग़लों की नीति

आसपास के परगने रतनसिंह राठौर को प्रदान किए। औरंगज़ेब ने महाराणा जयसिंह के भाई, राजा भीमसिंह को बदनावर का परगना दिया, और रतलाम की जागीर ज़ब्त कर लेने के बाद पुनः सीतामऊ के राठौर राज्य की स्थापना की।

मालवा में इन राजपूतों के प्रवेश तथा उनकी स्थापना से प्रान्तीय सामाजिक जीवन में एक नई उलझन पैदा हो गई। कितने ही ऐसे नए ज़मींदारों को कई परगने इसी शर्त पर दिये जाते थे कि वे स्थानीय ज़मींदारों को दबाकर, उनकी ज़मीन छीन कर, उस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लें। किन्तु इन ज़मींदारों को प्रायः इतना अवसर न मिला कि वे अपनी इन ज़मींदारियों में अपनी शक्ति सुसंगठित करके उन पर अपना आधिपत्य स्थायी बना सकें, अतएव वे इतने शक्तिशाली न बन सके कि दक्षिण से आनेवाले आक्रमणकारियों से मुग़ल साम्राज्य की रक्षा कर सकते। पुनः यह ज़मींदारियाँ इतनी छोटी थीं कि उनके अधिपति किसी भी प्रकार शक्तिशाली नहीं बन सकते थे। मुग़ल-सम्राटों के सारे प्रयत्न विफल ही हुए और प्रान्त में साम्राज्य के शक्तिशाली समर्थकों का पूर्ण अभाव ही रहा। यद्यपि इनमें से बहुत से ज़मींदार आक्रमणकारियों का सफलता पूर्वक सामना न कर सके किन्तु वे अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफल अवश्य हुए और इस अराजकता से लाभ उठा कर उन्होंने उन ज़मींदारियों को सर्वाधिकार सम्पन्न राज्यों में परिणत कर दिया। और जब अँग्रेज़ आए तो उन्होंने इन सब राज्यों को स्वाधीन राज्य मानकर उन राज्यों के उस विकसित स्वरूप को स्थायित्व प्रदान किया, और उस विकास में जो कुछ भी शेष रहा था, उसे भी पूरा कर दिया।

मालवा की उत्तरीय सीमा से दक्षिण की ओर बढ़ते ही सबसे पहिले शिवपुरी राज्य आता है जहाँ कछवाहों का शासन था। ये कछवाहे पहिले नरवर पर राज्य कर चुके थे। इस समय राजा अनूपसिंह ही इस राज्य का शासक था। उसने खाण्डेराय की मदद से, जो बाद में अनूपसिंह का सेनापति भी बन गया था, आसपास के सब विद्रोहियों एवं धंधेरा के बैस राजपूतों को दबा दिया था। जब औरंगज़ेब की मृत्यु हुई उस समय राजा अनूपसिंह काबुल में शाहज़ादा मुअज़्ज़म के पास शाही सेना में सेवा कर रहा था।[1] यद्यपि यह राज्य आगरा की सूबेदारी के अन्तर्गत था, किन्तु मालवा की उत्तरी सीमा पर स्थित होने से इस प्रान्त के उस प्रदेश की राजनीति के साथ इस राज्य का बहुत गहरा सम्बन्ध था। आगरा से जो सड़क दक्षिण को जाती थी वह भी इसी राज्य में होकर गुज़रती थी, एवं सैनिक दृष्टि से भी इस राज्य का बहुत महत्त्व था।

आगे चलकर पूर्व में विद्रोही छत्रसाल बुन्देला का नव-स्थापित राज्य पड़ता था। उससे दक्षिण में, मालवा की पूर्वी सीमा पर अहीरवाड़ा का प्रदेश था। इस प्रदेश में बजरंगगढ़ का खीची राज्य ही प्रधान था, जिस की राजधानी सिरोंज थी। अकबर और जहाँगीर के शासनकाल में ही इस राज्य की स्थापना हुई थी। इस समय राजा धीरजसिंह इस राज्य का शासक था, किन्तु उसे विद्रोही अहीरों को दबाने तथा अपने राज्य में शान्ति स्थापित करने के कारण अवसर ही न मिला। अहीरवाड़ा के पश्चिम में राजगढ़ और नरसिंहगढ़ के राज्य स्थित थे। इन रियासतों में उमट राजपूतों का ही आधिपत्य होने से यह सारा प्रदेश उमटवाड़ा कहलाता था।

---

[1] खाण्डे०, पृ० १३३-८०, ५३७-४५

उमटवाड़ा के उत्तर में कोटा राज्य था, जिसे शाहजहाँ ने एक सर्वाधिकार पूर्ण स्वतन्त्र रियासत बना दी थी। इस समय कोटा राज्य पर राव रामसिंह हाड़ा शासन कर रहा था। वह एक वीर योद्धा था; सम्राट् का उस पर पूरा विश्वास था। पिछले बरसों में वह मरहठों के साथ दक्षिण में युद्ध कर रहा था। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद उसने शाहज़ादे आज़म का पक्ष लिया और जाजव के युद्ध में वीरता-पूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। कोटा के उत्तर-पूर्व में उसी से मिला हुआ बून्दी का राज्य था। राव बुधसिंह हाड़ा सन् १६६५ ई० में बून्दी की राजगद्दी पर आरूढ़ हुआ; उसने शाहज़ादे मुअज़्ज़म का साथ दिया। यद्यपि कुछ काल के लिए पाटन का परगना कोटा के शासक के अधिकार में दे दिया गया था, परन्तु मुअज़्ज़म की सिफ़ारिश पर वह परगना फिर बून्दी राज्य में मिला दिया गया। टोंक के परगने को पाकर तो बून्दी राज्य अधिक शक्तिशाली होगया।[1]

बून्दी के पश्चिम-दक्षिण में रामपुरा का राज्य था। गोपालसिंह के विद्रोह तथा उसके पुत्र रतनसिंह के इस्लाम-धर्म स्वीकार करने के विवरण के साथ ही साथ इस राज्य-सम्बन्धी सभी घटनाओं का पूरा उल्लेख किया जा चुका है। रामपुरा से मिला हुआ देवलिया का राज्य था। यह राज्य विशेषतया जंगली पहाड़ी प्रदेश में ही स्थित था, किन्तु अकबर ने कुछ परगने मालवा के समतल प्रदेश में भी दे दिये थे, जिससे इस राज्य की सीमा

---

[1] अख़बारात, जुलाई २२, १६९५ ई०

वंशभास्कर के अनुसार बुधसिंह का राज्यारोहण दिसम्बर २३, १६९५ ई० को हुआ। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वंशभास्करकार ने वही तारीख़ दी है जिस दिन यह कार्य विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ होगा। उसके पिता की मृत्यु इसके बहुत पहले, शायद जून मास में, हो गई थी। (वंश०, ४, पृ० २८९७, २९२३-४)

उस प्रदेश में भी फैल गई थी। सन् १६६० ई० तक यह राज्य एक प्रकार से मेवाड़ के महाराणा के ही अधीन रहा, किन्तु उस वर्ष औरंगज़ेब ने इस राज्य को स्वाधीन कर दिया।[1] सन् १६९८ ई० में रावत प्रतापसिंह गद्दी पर बैठा, और उसने प्रतापगढ़ शहर की नींव डाली; आगे चल कर यही शहर इस राज्य की राजधानी बन गया। चूँकि यह राज्य मालवा की सीमा पर ही था, सम्भव है कि यह मालवा के सूबेदार के ही निरीक्षण में रहा हो।

देवलिया के पश्चिम एवं दक्षिण में बागड़ का गुहिल राज्य फैला हुआ था। एक ही घराने के दो भाइयों के वंशजों का यहाँ संयुक्त शासन था, और दोनों ही शासक समान शक्तिशाली भी थे। यह राज्य अब भी बहुत कुछ उदयपुर के महाराणा के अधीन था। कुछ ही वर्षों तक शासन करने के बाद सन् १७०२ ई० में रावल खुमानसिंह की मृत्यु हुई और तब उसके पुत्र रामसिंह ने सम्राट् की सेवा में उपस्थित होकर शाही सेना में नौकरी कर ली। उसको १००० ज़ात—१००० घोड़ों का मन्सब मिला। सम्राट् ने बीच में पड़ कर उस राज्य के गृहकलह का भी अन्त किया। सारा राज्य दो विभागों में विभक्त किया गया; डूँगरपुर की जागीर रामसिंह को दी गई और बाँसवाड़ा की जागीर कुशलसिंह के पुत्र को मिली। बाँसवाड़ा का यह सद्यःस्थापित राज्य मालवा की सीमा पर ही था एवं कुशलसिंह के पुत्र को आज्ञा हुई कि वह आधा टाँका मालवे के सूबेदार को देवे तथा बाक़ी आधा गुजरात सूबे के ख़ज़ाने में जमा करावे।[2]

[1] वीर०, २, पृ० ४३९-४४२

[2] मिरात, सप्लीमेंट (गा० ओ० सीरीज़, नं० ५०), पृ० २२५; डूँगरपुर, पृ० १२२

बाँसवाड़ा के दक्षिण में मालवा की पश्चिमी सीमा पर गुजरात से मिले हुए अमझरा और झाबुआ के दो राठौर राज्य थे। सन् १६३४ ई० में शाहजहाँ ने झाबुआ की जागीर पर जिस घराने की पुनः स्थापना की थी वही राठौर घराना इस समय भी वहाँ शासन कर रहा था। सन् १६६८ ई० में कुशालसिंह नामक राजा इस स्थान पर राज्य कर रहा था। वह एक अयोग्य, निर्बल शासक था। उसने अपने राज्य का बहुत कुछ हिस्सा अपने छोटे भाइयों और पुत्रों में बाँट दिया। उसके निर्बल तथा असंगठित शासन के कारण ही मरहठों को मालवा पर आक्रमण करने के लिए वही एक अच्छा रास्ता मिल गया।[1] झाबुआ की दक्षिण सीमा से लगा हुआ अमझरा का राज्य था। जयरूप राठौर इस राज्य का शासक था। नर्मदा की घाटियों तथा वहाँ की पहाड़ियों में से विद्रोहियों एवं आक्रमणकारियों को मार भगाने में, जयरूप के छोटे भाई जगरूप ने नवाज़िशख़ाँ की बहुत मदद की थी, जिसके पुरस्कार-स्वरूप जगरूप को मन्सब मिला था और अन्य मानवृद्धि भी हुई।[2]

नर्मदा के दक्षिण में, नन्दुरबार-सरकार के अन्तर्गत अवासगढ़ का राज्य था, जो अब बड़वानी राज्य के नाम से प्रसिद्ध है। जोधसिंह नामक व्यक्ति सन् १६६८ ई० में यहाँ राज्य कर रहा था। मोहनसिंह नामक उसका सौतेला भाई जोधसिंह का कट्टर शत्रु था। सन् १७०० ई० के लगभग किसी प्रकार जोधसिंह को मरवा कर मोहनसिंह स्वयं राजा बन बैठा। किन्तु मोहनसिंह शाही अधिकारियों की राह का काँटा बन गया।

---

[1] इनायत०, पृ० ३४ ब

[2] नवाज़िश, पृ० १० अ, ११ ब-१२ अ

उसने मरहठे आक्रमणकारियों का साथ दिया; सन् १७०३-०४ ई० में उन्हें माण्डू पर चढ़ा कर ले गया; मरहठे आक्रमणकारियों के बिखर जाने पर भी भीलों एवं कोलियों से मिलकर वह उपद्रव मचाता ही रहा; और अन्त में नन्दुरबार तथा बीजागढ़ के आस-पास बहुत लूट मार की। इस समय शाही अधिकारियों ने जोधसिंह के पुत्र परबतसिंह की मदद की, किन्तु परबतसिंह बहुत दिन तक अवासगढ़ में न टिक सका और सन् १७०८ ई० के बाद फिर मोहनसिंह बड़वानी राज्य का मालिक बन बैठा।[1]

मालवा के मध्य भाग में बहुत शीघ्रता के साथ निरन्तर परिवर्तन हो रहे थे। सन् १६५८ ई० में, औरंगज़ेब के विरुद्ध धरमत के युद्ध में रतनसिंह राठौर के मारे जाने के बाद भी उसके पुत्र रामसिंह तथा रामसिंह के वंशजों का रतलाम की ज़मींदारी पर अधिकार बना रहा। किन्तु सन् १६६५ ई० में शाही अप्रसन्नता के फलस्वरूप इस राज्य का अस्तित्व ही मिट गया। रामसिंह का दूसरा पुत्र, केशवदास इस समय रतलाम का अधिपति था; वह शाही सेना के साथ दक्षिण में सेवा कर रहा था। इधर रतलाम में केशवदास के कर्मचारियों ने इस प्रदेश के "अमीन-इ-जिज़िया" को मार डाला। ज्यों-ही सम्राट् को इस हत्या की सूचना हुई वह बहुत ही अप्रसन्न हुआ तथा जागीर ज़ब्त करके उसे शाहज़ादे आज़म के कर्मचारियों के अधिकार में देने की आज्ञा दी और केशवदास का मन्सब भी घटा दिया।[2] छः-सात साल तक इस राठौर घराने को दुर्भाग्य सताता ही रहा, किन्तु केशवदास

[1] बड़वानी गज़े० (१९०८) पृ० ४; इनायत०, पृ० ३१ अ, १०१ ब, १०६ अ; नवाजिश०, पृ० १८ अ

[2] अख़बारात, जून ८ और ९, १६९५ ई०

दक्षिण में शाही सेवा करता ही रहा।[1] शीघ्र ही सम्राट् फिर प्रसन्न हो गया; जो कुछ ज़मीन पहिले प्रदान की जा चुकी थी, उसके सिवाय सन् १७०१ ई० में सम्राट् ने केशवदास को तितरोद परगने की ज़मींदारी एवं जागीर भी दी। वर्तमान सीतामऊ राज्य की सीमा इसी परगने की सरहद्द तक ही सीमित रह गई। इस प्रकार ३१ आक्टोबर, १७०१ को शाही सनद द्वारा वर्तमान सीतामऊ राज्य की नींव पड़ी।[2] सन् १७१४ ई० में जब सम्राट् फ़र्रुख़सियर ने राजा केशवदास को आलोट का परगना भी दिया तब तो इस राज्य का विस्तार बहुत बढ़ गया।[3]

सीतामऊ राज्य की स्थापना के बाद कुछ ही सालों में रतनसिंह राठौर के पाँचवें पुत्र, छत्रसाल राठौर ने रतलाम में एक नवीन राज्य की स्थापना की। छत्रसाल शाही सेना में नौकरी कर रहा था। वह शाहज़ादा

---

[1] शाही पत्रों तथा रिपोर्टों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि इन दिनों में भी केशवदास तत्परता के साथ शाही सेवा करता रहा। अख़बारात, सितम्बर ३, १६९९, तथा इसी वर्ष का एक और अख़बार। इस समय केशवदास दक्षिण में नलगुण्डा का क़िलेदार तथा फ़ौजदार था।

[2] सीतामऊ राज्य की शाही सनद। इस सनद को पढ़ने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि केशवदास को जब तितरोद का परगना दिया गया उस से पहिले भी उस परगने से दूनी आमदनी की जमीन उस के अधिकार में थी। सीतामऊ-राज्य के पुराने काग़ज़ों से यह स्पष्ट है कि किसी समय नाहरगढ़ का परगना भी इसी राज्य के अन्तर्गत रहा था, किन्तु यह बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती कि किस वर्ष तथा किस दिन यह परगना केशवदास को मिला। सम्भव है कि तितरोद का परगना मिलने के पहिले ही उसे नाहरगढ़ का परगना मिल चुका हो, और यद्यपि नाम नहीं लिखा था, तितरोद की शाही सनद में जिस जमीन का पहिले ही दिया जाना लिखा है उससे नाहरगढ़ परगने का ही निर्देश हो।

[3] सीतामऊ राज्य के पुराने काग़ज़ात; आलोट परगने की शाही सनद।

आज़म का विश्वासपात्र भी था। जब केशवदास की रतलाम की ज़मींदारी ज़ब्त कर ली गई, उस समय केशवदास के काका, छत्रसाल को भी दुर्भाग्य ने आ घेरा, पेनुकुण्डा की क़िलेदारी से उसे अलग कर दिया गया और उसकी भी जागीर ज़ब्त कर किसी दूसरे को दे दी गई।[1] किन्तु अपने भतीजे के समान छत्रसाल ने भी शाही सेवा न छोड़ी; १७वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में पुनः भाग्य ने पलटा खाया, और शाही सेना में उसकी पद-वृद्धि हुई।[2] अप्रेल, १७०१ ई० में पन्हाला के क़िले पर धावा करते समय किसी युरोपीय गोलन्दाज़ का निशाना बन कर छत्रसाल का सब से बड़ा लड़का, हठीसिंह मारा गया।[3] रतलाम के वर्तमान राज्य की स्थापना किस वर्ष हुई इस प्रश्न पर कोई भी इतिहासकार निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता, क्योंकि इस प्रश्न के सम्बन्ध में कोई विश्वसनीय ऐतिहासिक आधार अब तक नहीं मिला; फिर भी यह कहा जा सकता है कि सन् १७०५ ई० तक इस राज्य की स्थापना हो चुकी थी। इसके बाद शीघ्र ही छत्रसाल की मृत्यु हो गई और वह अपने पीछे एक पौत्र और दो पुत्रों को छोड़ गया।[4]

[1] अख़बारात, जून ९, १०, जुलाई ९, सन् १६९५ ई०

[2] अख़बारात, जून १३, जुलाई २२, १६९५ ई०; सितम्बर ३, १६९६ ई०, आक्टोबर २०, १७००

[3] अख़बारात, अप्रेल ३०, १७०१। हठीसिंह की मृत्यु की जो विभिन्न तिथियाँ राजवंशावली, ख्यातों एवं रतलाम और सैलाना के गज़ेटियरों में दी गई हैं वे सब ग़लत हैं।

[4] गज़ेटियरों में छत्रसाल की मृत्यु सन् १७०९ ई० में होना बताई गयी है, किन्तु राजगुरु की पोथियों में सन् १७०५–०६ ई० (सं० १७६२ वि०) लिखा मिलता है। इन दोनों सनों में राजगुरु की पोथियों वाली तारीख़ अधिक सही जान पड़ती है। सन् १७०३ ई० में छत्रसाल का मन्सब १,५०० घोड़ों का हो गया और अगले साल

अपनी मृत्यु के पहिले छत्रसाल ने अपनी ज़मींदारी के बराबर-बराबर तीन हिस्से करके उन्हें अपने तीनों वंशजों को दे दिए थे; और कहा जाता है कि उसने यह भी निश्चित कर दिया था कि तीनों का मान तथा उनके अधिकार भी समान रहेंगे। इस बँटवारे के फलस्वरूप बारह वर्ष बाद (१७१८ ई०) बहुत झगड़े हुए। ऐतिहासिक दृष्टि से इस बात का निश्चित रूप से प्रतिपादन किया जा सकता है कि रतलाम के जिस प्रथम राठौर राज्य की स्थापना रतनसिंह राठौर ने की थी, उसका रतलाम के इस दूसरे एवं वर्तमान राठौर राज्य से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। प्रथम राज्य का अन्त होने के बाद कोई आधा युग बीत जाने पर ही इस दूसरे राज्य की स्थापना हुई थी। किन्तु परम्परागत कथाएँ एवं विश्वास आसानी से नष्ट नहीं होते; दन्तकथाओं, आख्यायिकाओं तथा जन-साधारण में प्रचलित विश्वासों का घना कुहरा ऐतिहासिक सत्य को छिपा कर उसे धुँधला तथा अस्पष्ट बना देता है।

मध्य मालवा में एक और महत्त्वपूर्ण राज्य सिसोदियों का भी था; उदयपुर के महाराणा जयसिंह के भाई, राजा भीमसिंह के वंशज बदनावर में राज्य कर रहे थे। राजा भीमसिंह का पुत्र, सूरजमल सन् १७०० ई० तक राज्य करता रहा; उस वर्ष उत्तर-पश्चिमी सीमा पर विद्रोही जातियों के विरुद्ध युद्ध करता हुआ वह मारा गया। उसके बाद उसका पुत्र, सुलतानसिंह

उसे सातारा का क़िलेदार नियुक्त किया गया (मा० आ०, पृ० ४२४; औरंगज़ेब, ५, पृ० ३९१ फ़ुटनोट)। यह सम्भव है कि सन् १७०३ ई० में जब छत्रसाल के मन्सब में वृद्धि हुई उस समय उसे रतलाम का परगना भी मिला हो। परन्तु इस विषय की विश्वसनीय ऐतिहासिक सामग्री प्राप्य न हो सकने के कारण इतिहासकार इस प्रश्न पर कोई निश्चित मत नहीं दे सकता है।

गद्दी पर बैठा । जब मरहठों का मालवा पर आक्रमण हुआ, और मुग़ल-मरहठा द्वन्द होने लगा उस समय, सन् १७३६ ई० के लगभग, इस राज्य का अस्तित्व मिट गया और सुलतानसिंह के वंशजों के अधिकार में मेवाड़ के अन्तर्गत स्थित बनेड़ा की जागीर के अतिरिक्त कुछ न रहा ।

उपर्युक्त विशिष्ट राज्यों एवं ज़मींदारियों के अतिरिक्त सैकड़ों छोटे-छोटे ठिकाने, जागीरदार तथा गाँवों के मालिक सारे प्रान्त में पाए जाते थे । इनमें से कई शाही सेना में नौकरी करते थे और बहुत से लूट-खसोट करके ही अपना गुज़ारा कर लेते थे । यद्यपि इन छोटे-छोटे ठिकानों या जागीरों में से बहुत से इस आगामी महान अराजकता के काल में भी अपना अस्तित्व बनाए रख सके, किन्तु उनका प्रान्तीय इतिहास पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और इसी कारण उनका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता ।

इन विभिन्न राज्यों के इतिहासों का ध्यान-पूर्वक अध्ययन करने से एक बात स्पष्ट हो जाती है, कि स्थापना के बाद ही उन रियासतों के या वहाँ के शासकों का महत्त्व तथा गौरव एकबारगी घट जाता था । ज्योंही किसी राज्य या ज़मींदारी की स्थापना होती थी, उसके संस्थापकों तथा शासकों के लिए यह अत्यावश्यक हो जाता था कि वे तत्स्थानीय बातों की ओर ही विशेष ध्यान दें, एवं साम्राज्य के विशाल महत्त्वपूर्ण क्षेत्र से वे अलग हो जाते थे; उनका क्षेत्र संकुचित एवं सीमित हो जाता था । राघोगढ़, झाबुआ तथा अन्य राज्यों के शासकों के इतिहास में उपर्युक्त प्रवृत्ति की ही आवृत्ति हुई, और अन्य राज्यों के राजघरानों का भी भविष्य यही होने को था । मरहठों के आक्रमण एवं साम्राज्य के पतन से महत्त्व-

पूर्ण क्षेत्रों में घुस पड़ने की रही-सही सम्भावनाएँ भी विनष्ट हो गईं। ये राज्य अथवा ज़मींदारियाँ प्रायः बहुत ही छोटे-छोटे होते थे, और विशेषतया उनकी स्थापना हुए बहुत समय भी नहीं बीता था, एवं ज्यों ही साम्राज्य की केन्द्रीय सत्ता निर्बल होने लगी, उन राज्यों तथा ज़मींदारियों की भी दशा बिगड़ने लगी, उनके अस्तित्व तक पर भी आ बनी।

मालवा - निवासियों की परिस्थिति

प्रान्त के निवासियों की भी दशा दिन पर दिन बिगड़ती जा रही थी। आन्तरिक विद्रोह एवं बाह्य आक्रमणों के कारण प्रजा की दरिद्रता बढ़ती जा रही थी, और विशेषतया जिन लोगों का जीवन खेती पर ही निर्भर था, उनकी हालत तो दयनीय हो रही थी। प्रान्त की आर्थिक समृद्धि का अन्त हो चुका था, और इस आर्थिक संकट का प्रभाव स्पष्टतर होता जा रहा था। रास्ते निर्विघ्न न रहे, लूट-खसोट होती थी, एवं यात्रा करना एक कठिन बात थी; व्यापार एक प्रकार से बन्द हो गया था। किसानों की दुर्दशा तथा विपत्ति का पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता; ज़मींदार भी अपनी ज़मींदारियों का पूरा लगान वसूल नहीं कर पाते थे। मालवा का सारा दक्षिणी भाग उजड़ गया था; बिदारबख़्त के कथनानुसार यह सारा प्रदेश बरबाद हो चुका था। इस प्रान्त की प्रजा के हृदय में अब साम्राज्य के लिए कोई विशेष आकर्षण तथा प्रेम नहीं रह गया था। जज़िया-कर की वसूली के अतिरिक्त, सूबेदारों के निरन्तर अत्याचार, रिश्वतख़ोरी तथा भूमि का लगान निश्चित करने की त्रुटिपूर्ण पद्धति आदि के परिणाम-स्वरूप भार जब प्रजा के लिए असह्य हो गया, तथा इतना सब होते हुए भी जब उनकी रक्षा कर सकने वाला कोई न रह गया, तब तो प्रजा का सम्राट्,

साम्राज्य तथा उनके कर्मचारियों पर से विश्वास उठ गया; अब वे आत्म-रक्षा के उपाय सोचने लगे और उसका प्रयत्न करने लगे। प्रत्येक को अपना ख़याल आया, साम्राज्य के हिताहित पर विचार करने के लिए किस को फ़ुरसत थी ?

परिशिष्ट—अ.

सन् १६९०–९८ ई० में मालवा पर होने वाले मरहठों के आक्रमण

धरमपुरी के माल-सम्बन्धी बही-खातों तथा माण्डू के पहिले के ज़मींदार के वंशज, शिवलाल, द्वारा दिए गए हस्तलिखित ग्रन्थ के आधार पर सर जान मालकम ने अपने "मेमायर" में निम्नलिखित घटनाओं का उल्लेख तथा प्रतिपादन किया है :—

१. धरमपुरी पर मरहठों का पहिला आक्रमण सन् १६९० ई० में हुआ; बाद में सन् १६९४, १६९६ तथा १६९८ में भी आक्रमण हुए थे।

२. इस प्रकार ये आक्रमण पूरे सात वर्षों तक होते रहे और जब आमेर के राजा सवाई जयसिंह ने उनके विरुद्ध चढ़ाई की तब ही वे बन्द हुए।

३. सन् १६९६-८ के आक्रमण में मरहठों ने माण्डू का क़िला ले लिया और तीन महीने तक घेरा लगा कर धार के क़िले को भी हस्तगत किया।

४. सवाई जयसिंह मरहठे आक्रमणकारियों का मित्र था, और जब उस पर इस बात का दोषारोपण किया गया तब वह माण्डू गया; उसके आने की ख़बर सुन कर मरहठे दक्षिण को लौट गए।

५. कुछ ही वर्षों बाद वे फिर चढ़ आए और उदाजी पवार ने माण्डू पर अपना झण्डा गाड़ दिया, किन्तु शीघ्र ही सन् १७०६ में उसे लौट जाना पड़ा। (मालकम—मेमायर, जिल्द १, पृष्ठ ६०-४ मय सब फुटनोटों के)

मालवा के इतिहास-सम्बन्धी मराठी, फ़ारसी तथा अन्य भाषाओं के जो-जो आधार-ग्रन्थ प्राप्त हैं, उनमें से किसी में भी इन घटनाओं का उल्लेख नहीं मिलता। इतिहासों में सन् १६६६ ई० में कृष्णा जी सावन्त के नेतृत्व में मालवा पर होने वाले मरहठों के आक्रमण का ही उल्लेख सब से पहिले मिलता है। यह बात सम्भव नहीं प्रतीत होती है कि सन् १७०७ ई० से पहिले माण्डू एवं धार के क़िलों पर मरहठों की विजय जैसी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुई हों और "मासीर-इ-आलमगीरी" में उसका उल्लेख न किया जावे या "अख़बारात" में उस घटना की सूचना न मिले। नवीनतम खोजों के आधार पर धार का इतिहासकार भी स्पष्ट रूपेण लिखता है कि उदाजी पवार का सार्वजनिक जीवन सन् १७०६ या उससे एकाध वर्ष पहिले ही प्रारम्भ होता है। (धार संस्थानचा इतिहास, १, पृ० ६)

सन् १७०० ई० में उसके पिता की मृत्यु पर जब जयसिंह आमेर की गद्दी पर बैठा, तब उसकी उम्र २१ वर्ष (वंशभास्कर में १२ वर्ष की ही होना बताया है) की ही थी। (अख़बारात, फ़रवरी १८ और २०, सन् १७०० ई०; वंशभास्कर, ४, पृ० २६३६-३७) सन् १७०२ में खेलना के घेरे के समय यद्यपि जयसिंह अपनी योग्यता साबित कर चुका था, तदपि सन् १७०४-५ ई० में सम्राट् के विचारानुसार जयसिंह बहुत ही कच्ची उम्र का था, और अनेकानेक बातों में दूसरों

पर ही निर्भर रहता था; एवं यह बात असम्भव जान पड़ती है कि सन् १६६५-८ ई० में जब जयसिंह एक अल्हड़ राजकुमार ही था, तब उसने ऐसे राजनैतिक मामलों में महत्त्वपूर्ण भाग लिया हो।

सर जान मालकम ने जिन सालों में उपर्युक्त घटनाएँ होना बताया है वे प्रमाणित ऐतिहासिक घटनाओं तथा विवरणों के विरुद्ध पड़ती हैं, एवं अविश्वसनीय हैं। यह सम्भव है कि बही-खातों, पत्रों या पुराने हस्त-लिखित ग्रन्थों में दिए गए अरबी, मालवी, फ़सली या शाहूर सन्-संवतों को ईस्वी सन् में बदलने में सर जान मालकम कहीं ग़लती कर गया हो। माण्डू का मरहठों द्वारा जीता जाना, सवाई जयसिंह की मालवा पर चढ़ाई, माण्डू छोड़कर मरहठों का दक्षिण को लौट जाना आदि जो-जो घटनाएँ सर जान मालकम सन् १६६८ ई० में होना बतलाते हैं, वे सब सन् १७२६-१७३० ई० में ही हुईं। सन् १७२३-३० ई० की ऐतिहासिक घटनाओं को सन् १६६०-६८ में होना मान कर मालकम कोई ३२ वर्ष की ग़लती कर बैठा।

तीसरा अध्याय

मालवा का बढ़ता हुआ महत्त्व (१७०७-१७१९)

१. इस युग की प्रधान प्रवृत्तियाँ

मालवे के इस युग के इतिहास में बहुत ही महत्त्वपूर्ण या सनसनी फैलाने वाली कोई घटना नहीं घटी। तथापि आगामी युगों में जब प्रान्त को मरहठों के उमड़ते हुए आक्रमणों, विजयों तथा उनके आधिपत्य की स्थापना का सामना करना पड़ा और उस समय जो-जो प्रवृत्तियाँ प्रान्तीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण हो गयीं, उनका उद्भव इसी युग में हुआ। अतएव आगामी युगों की उन प्रवृत्तियों को ठीक तरह समझने के लिए इस युग का अध्ययन अत्यावश्यक हो जाता है। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद ही उसके उत्तराधिकारी मुग़ल-सम्राट् उत्तर को लौट पड़े, जिससे शाही सत्ता का केन्द्र पुनः उत्तरी भारत में आ पहुँचा। किन्तु फिर भी दक्षिण के सूबों का महत्त्व किसी भी प्रकार कम नहीं हुआ। जो कोई भी साहसी व्यक्ति तत्कालीन परिस्थिति से लाभ उठाने की इच्छा करता था, उसकी दृष्टि इन्हीं सुदूर प्रान्तों पर जा टिकती थी। इन सूबों पर आधिपत्य या सत्ता स्थापित करने से ही उस व्यक्ति की शक्ति बहुत बढ़ जाती, किन्तु उन सूबों पर तब तक आधिपत्य स्थापित करना कठिन था, जब तक कि वह मालवा पर किसी भी प्रकार का अधिकार न जमा ले; उत्तरी और दक्षिणी भारत को सम्बद्ध करने वाली यह शृंखला राजनैतिक

शतरंज में एक महत्त्वपूर्ण वस्तु थी। अतएव आर्थिक तथा राजनैतिक कारणों से ही शाही दरबार के विभिन्न शक्तिशाली अमीर इस प्रान्त को अधिकार में लाने के लिए आपस में झगड़ने लगे। किन्तु इस से इस प्रान्त को तो कुछ भी लाभ नहीं हुआ। जो कोई भी अमीर इस प्रान्त के सूबेदार नियुक्त किये जाते थे, वे न तो मालवा में जाने की ही सोचते थे और न उसके आन्तरिक शासन की ओर ही कुछ विशेष ध्यान देते थे; मालवा को अपने अधिकार में कर लेने पर भी उन्हें दिल्ली के शाही दरबार में ही बने रहना अत्यधिक आवश्यक जान पड़ता था। प्रान्त के आन्तरिक शासन के प्रति सूबेदार तथा अन्य उच्चाधिकारियों की इस उपेक्षा से मालवे की विभिन्न ज़मींदारियों तथा भावी राज्यों के विकास में बहुत सहायता मिली।

पुनः राजनैतिक परिस्थिति तथा साम्राज्य की निर्बलता से लाभ उठाने की आशा से अनेकानेक व्यक्तियों ने प्रान्तीय मामलों में हाथ डालने का साहस किया। मालवा के पड़ोसी, राजपूताने के राजाओं ने अपना-अपना मतलब बनाने की सोची। उदयपुर का महाराणा रामपुरा के प्रदेश को पुनः अपने राज्य में मिला लेने के लिए उत्सुक था। सन् १७०८ ई० में राजपूताने की तीन सत्ताओं में जो एकता स्थापित की गई थी, उस सन्धि के फलस्वरूप आमेर के शासक, जयसिंह ने अनजाने ही मालवा के राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश किया; मालवा के राजपूतों की दृष्टि में अब उसका महत्त्व स्थापित हो गया। बरसों बाद जब जयसिंह मालवा का सूबेदार बना तब तो यह महत्त्व बहुत ही बढ़ गया। मालवा की राजनीति में जयसिंह के प्रवेश से प्रान्तीय मामलों में एक नई उलझन बढ़ने लगी। अब जयसिंह

एक ऐसे राज्य की स्थापना के स्वप्न देखने लगा जो यमुना से नर्मदा तक फैला हुआ हो, और इस स्वप्न को सच्चा बनाने के लिए उसने कोई प्रयत्न उठा न रखा।

उधर मरहठे भी धीरे-धीरे मालवा की सीमा तक पहुँच रहे थे। शाहू के शासन-काल के प्रारम्भिक वर्ष आन्तरिक संगठन तथा कोल्हापुर के घराने के साथ चलनेवाले गृह-युद्ध में ही बीत गये। किन्तु ज्योंही बालाजी विश्वनाथ पेशवा बना, परिस्थिति में एकबारगी परिवर्तन हुआ; उसने शाहू की सत्ता को दृढ़तर बना कर एक आक्रमणशील नीति प्रारम्भ की। इस युग की समाप्ति के समय, मरहठे मालवे की दक्षिणी सीमा तक पहुँच चुके थे और उन के इस विस्तार को सम्राट् के शाही फ़रमान द्वारा क़ानूनी स्वरूप दिया जा चुका था। अपने फ़रमान द्वारा सम्राट् ने मरहठों का दक्षिणी सूबों से चौथ वसूल करने का हक़ मान लिया। पुनः इस समय से साम्राज्य की नीति भी बदलने लगी। प्रारम्भ में तो साम्राज्य के उच्चपदाधिकारी ही, एवं बाद में जब आगामी युगों में मरहठों की सत्ता बढ़ने लगी तब तो स्वयं सम्राट् भी मरहठों की माँगें पूरी कर उनसे सुलह कर लेने को उत्सुक हो गया।

मालवा के पड़ोस में ही मरहठों की सत्ता बढ़ने लगी; केन्द्रीय सत्ता की निर्बलता अधिकाधिक स्पष्ट देख पड़ने लगी; और आमेर के जयसिंह के नेतृत्व में उसकी ही नीति का अनुसरण करते हुए राजपूत एक दूसरे ही मार्ग पर चलने लगे। पुनः उस समय प्रान्तीय शासन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा था। इस प्रकार आगामी मुग़ल-मरहठा द्वन्द्व के लिए सभी तैयारियाँ हो चुकी थीं, केवल उपयुक्त अवसर के आने की ही

देर थी। यह अवसर इस युग की समाप्ति के कोई ९ वर्ष बाद आया; जो बीज इस सारे युग में दृष्टि से दूर धरती में पड़े-पड़े अंकुरित हो रहे थे वे ही तब बाहर फूट निकले।

२. मालवा के सूबेदार (१७०७-१७१९)

फ़रवरी १३, सन् १७०७ को ही आज़म को अहमदनगर से मालवा के लिए रवाना कर दिया गया था, किन्तु विधि का विधान यही था कि वह उस प्रान्त पर शासन न करे। फ़रवरी २० को अपने बूढ़े पिता की मृत्यु की खबर सुनकर आज़म एकबारगी लौट पड़ा और अहमदनगर जाकर उसने अपने मृत पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया की। मृत औरंगज़ेब ने अपने वसीयतनामे में सारे साम्राज्य को अपने तीन लड़कों में बाँट दिया था, किन्तु मृत सम्राट् की इच्छाओं को ठुकरा कर आज़म ने स्वयं को सम्राट् घोषित किया।[1] आज़म चाहता था कि समस्त मुग़ल-साम्राज्य पर वही एकछत्र शासन करे, किन्तु दूसरे दोनों भाइयों से लड़ना अवश्यम्भावी था, इस लिए युद्ध की पूरी-पूरी तैयारियाँ होने लगीं। बिदारबख़्त इस समय गुजरात में था, उसे आज्ञा हुई कि वह सीधा आगरा चला जावे और शाहज़ादे मुअज़्ज़म को आगे बढ़ने से रोक दे। मालवा के सूबेदार, अब्दुल्ला ख़ाँ को आदेश हुआ कि वह भी शाहज़ादा बिदारबख़्त के साथ जावे। किन्तु शीघ्र ही ये आज्ञाएँ रद्द कर दी गईं और बिदारबख़्त को हुक्म हुआ कि आज़म के आने तक वह मालवा में ही उसका इन्तज़ार करे। पिता की आज्ञानुसार अपनी सेना को भंग कर बिदारबख़्त मालवा के लिए रवाना

---

[1] औरंगज़ेब, ५, पृ० २६२-३; इर्विन, १, पृ० ६

हुआ; मार्च २६, १७०७ ई० को शाहजहाँपुर जा पहुँचा, और उज्जैन के ही आस-पास कोई एक मास और बीस दिन तक ठहरा रहा। तब उसको आज़म का हुक्म मिला कि वह ग्वालियर के लिए रवाना हो जावे।[1]

आज़म का मालवा में होकर जाना

अप्रेल १५ को आज़म बुरहानपुर से रवाना हुआ। अकबरपुर के घाट की राह न लेकर उसने पाण्ढेर होती हुई तुमारी की घाटी में से जाने वाली राह ली। तुमारी की घाटी बहुत ही लम्बी, तथा तंग थी और उस राह में पानी मिलना भी असम्भव था, एवं गरमी तथा जलाभाव के कारण सेना को बहुत कठिनाई उठानी पड़ी। राह में गरासियों[2] ने भी बहुत तकलीफ़ दी; जिस किसी पर भी उनका बस चला, उसे उन्होंने लूटा। जब आज़म (भोपाल से २० मील उत्तर-पश्चिम में) दुराहा नामक स्थान पर पहुँचा, तब शाही केम्प से शाहू निकल भागा और दक्षिण के लिए रवाना हो गया; आज़म ने भी इस बात की ओर विशेष ध्यान नहीं

[1]आज़म०, पृ० १३५-७, १४८-५०, १६६; कामराज, पृ० ६९ अ, ८४; मा० उ०, ३, पृष्ठ ६५८-९; इरादत, स्काट, २, भाग ४, पृष्ठ १६-१८; कामवर; खुशहाल, पृ० ३६७ अ; इर्विन, १, पृ० १४-१५

[2]इर्विन ने भूल से इन्हें जंगली जातियाँ लिखा है (इर्विन, १, पृ० १४)। इन में से कई गरासिये राजपूत भी होते थे; ये विद्रोही (क़ानून के विरोधी) का सा जीवन बिताते थे। लूट-खसोट कर जो द्रव्य वे इकट्ठा कर सकते थे, उसी से ही उनका गुज़ारा चलता था; किन्तु कई ज़मींदार तथा अन्य व्यक्ति भी उनकी माँगें पूरी कर उनसे अपना पिंड छुड़ाते थे, और इस प्रकार उनके भरण-पोषण का प्रबन्ध हो जाता था। मालकम, १, पृ० ५०८-१४

दिया।[1] मई ४ को आज़म सिरोंज पहुँचा। यहाँ उसने सुना कि मुअज़्ज़म लाहौर पहुँच गया है। बिदारबख़्त इस समय ग्वालियर के लिए रवाना हो गया था; आज़म ने उसकी मदद के लिए ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ, कोटा के रामसिंह हाड़ा, दतिया के दलपत बुन्देला, ख़ान आलम और अन्य दूसरे सेनापतियों को सेना लेकर भेजा। ये सब संयुक्त सेनाएँ बढ़ती चली गईं, और ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ की सहमति के बिना ही चम्बल को पार कर बिदारबख़्त धौलपुर पहुँच गया और वहाँ आज़म की राह देखने

[1] भीमसेन, २, पृ० १६३ अ। सर यदुनाथ ने इसी कथन को ठीक माना है (औरंगजेब, ५, पृ० २०४)। इस समय भीमसेन आजम की सेना के साथ ही था। भीमसेन का संरक्षक, दलपत बुन्देला, आजम का एक विश्वस्त सलाहकार था एवं यह बात सम्भव है कि अपने संरक्षक के द्वारा भीमसेन को ठीक ठीक बातें ज्ञात हुई हों, इसी लिए उसका कथन अधिक विश्वसनीय माना गया है। ख़फ़ी ख़ाँ के कथनानुसार ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ की शाहू के साथ घनिष्टता होने के कारण शाहू के मामलों में उसे दिलचस्पी थी; अतएव ज़ुल्फ़िक़ार के आग्रह करने पर आजम ने शाहू को छोड़ दिया (ख़फ़ी० २, पृ० ५८१–२)। डफ़, सरदेसाई एवं इर्विन ने ख़फ़ी ख़ाँ के कथन को ही ठीक माना है; डफ़ (आक्सफ़र्ड), १, पृ० ३१४; इर्विन २, पृ० १६२; सरदेसाई, मध्य, १, पृ० २। सरदेसाई यह भी लिखते हैं कि "सवाई जयसिंह आदि राजपूत आजम के साथ थे,.....उन्होंने भी शाहू को छोड़े जाने में मदद की,..."; किन्तु यह कथन ग़लत है, जयसिंह इस समय आजम के साथ नहीं था, मालवा में आकर ही वह बिदारबख़्त की फ़ौज में शामिल हो गया था (इर्विन, १, पृ० १५)। डफ़ तो यह भी लिखता है कि आजम एवं शाहू के बीच एक सन्धि भी हुई (डफ़, १, पृ० ३१४)। भीमसेन का कथन ही विश्वसनीय जान पड़ता है, एवं ख़फ़ी ख़ाँ का कथन अग्राह्य है।

'संशोधक' में भास्कर वामन भट्ट ने दक्षिण को लौटते हुए शाहू का एक पत्र प्रकाशित किया है, किन्तु उस से भी इस प्रश्न पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। (संशोधक—ऐतिहासिक लेख, चर्चा, पृ० १५४)।

लगा ।[1] आज़म जल्दी-जल्दी ग्वालियर की ओर बढ़ रहा था । इसी समय

नेजाबत ख़ाँ की मालवा की सूबेदारी पर नियुक्ति, अप्रेल, १७०७

आज़म ने नेजाबत ख़ाँ को मालवे का सूबेदार नियुक्त किया । अब्दुल्ला ख़ाँ आज़म के पास चला आया और उसकी सेना के साथ हो गया ।[2] जब आज़म सिरोंज ठहरा हुआ था, गोपाल चौधरी उसके सम्मुख उपस्थित हुआ और अपने सैनिकों को लेकर साथ चलने को उद्यत हुआ । आज़म ने उसे क़ैद करवा कर उसकी कामुकता तथा ग़रीब प्रजा पर अत्याचारों के लिए बादशाह क़ुली ख़ाँ के हवाले किया; बादशाह क़ुली ख़ाँ ने गोपाल को मार डाला ।[3] अब सेना ग्वालियर की ओर बढ़ी । राह में शिवपुरी के राजा अनूपसिंह का पुत्र, गजसिंह, आज़म की सेना में आ मिला । अनूपसिंह उधर मुअज़्ज़म के साथ शाही सेना में नौकरी कर रहा था । पीछे काम को सम्हालने के लिए वहाँ के सेनापति खाण्डेराय को शिवपुरी में ही छोड़ दिया ।[4] इधर भी राह में आज़म को अनेकानेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं; गरमी ज़ोरों से पड़ रही थी और पीने को स्वच्छ पानी भी मुश्किल से मिलता था । ज्यों-ही आज़म ने मालवे की सीमा पार की, उसे सूचना मिली कि शाहज़ादा मुअज़्ज़म के दूसरे लड़के शाहज़ादा मुहम्मद अज़ीम ने आगरा को हस्तगत कर लिया ।

जाजव के युद्ध-क्षेत्र में जून ८, १७०७ ई० को दोनों सेनाओं

---

[1] भीमसेन, २, पृ० १६३; इरादत, स्काट, ४, पृ० १६-१८, २०-२६; कामराज, पृ० ८४; इर्विन, १, पृ० १५, १७-१९

[2] आज़म०, पृ० १९३-४, २००; मा० उ०, २, पृ० ८७१

[3] आज़म०, पृ० २१५-२२१

[4] खाण्डे०, पृ० १९४-६, ५४३-५४६

में युद्ध हुआ, जिस में आज़म तथा उस के दोनों पुत्र लड़ते हुए मारे गए। कोटा का रामसिंह हाड़ा भी मारा गया और इस प्रकार मुअज़्ज़म के सहायक बून्दी के बुधसिंह हाड़ा की बन आई। दलपत बुन्देला भी काम आया। आमेर का जयसिंह अपने स्वामी को छोड़ कर शाहज़ादा मुअज़्ज़म की ओर जा मिला, किन्तु मुअज़्ज़म ने उसका स्वागत नहीं किया। जयसिंह का छोटा भाई, बिजयसिंह, मुअज़्ज़म के साथ ही था; मुअज़्ज़म सर्वदा बिजयसिंह का ही पक्ष लेता रहा।[1] युद्ध के बाद शिवपुरी के राजा अनूपसिंह ने अपने पुत्र को बुलाकर मुअज़्ज़म के सम्मुख पेश किया। गजसिंह ने युद्ध में विशेष भाग नहीं लिया था; उसके पिता की सेवा का भी ख़याल कर मुअज़्ज़म ने उसे क्षमा प्रदान की। अनूपसिंह को नरवर तथा शाहाबाद के परगने दिए।[2]

मालवा की सूबेदारी पर शाहज़ादे जहाँशाह की नियुक्ति; १७०७-१७१२ ई०

सिंहासनारूढ़ होते ही सम्राट् बहादुरशाह ने अनेकानेक नियुक्तियाँ कीं। सम्राट् के चौथे पुत्र, शाहज़ादा खुजिस्ता अख़्तर को 'जहाँशाह बहादुर' का ख़िताब दिया, और अन्य तीनों भाइयों के साथ उसे भी ३० हज़ारी ज़ात तथा २०,००० घुड़सवारों का मन्सब मिला। जहाँशाह को मालवा का सूबेदार भी बना दिया और इस प्रान्त में अपना नायब-सूबेदार नियुक्त करने को उसे अनुमति भी दे दी गई।[3] इस समय के प्रान्तीय

---

[1] इर्विन, १, पृ० २२-३५; भीमसेन, २, पृ० १६५ अ; इरादत, पृ० ३७; कामराज, पृ० २७; याहया०, पृ० ११३ ब; टाड (आक्सफ़र्ड), ३, पृ० १४९५-१४९६; वंश०, ४, पृ० २९७२; २९९३-२९९९

[2] खाण्डे०, पृ० १९७, ५५१-३

[3] इर्विन, १, पृ० ३६

शासन सम्बन्धी काग़ज़ों के अभाव के कारण जहाँशाह बहादुर के नायब-सूबेदारों के नामों का पता नहीं लगता है।[१] इस शाहज़ादे की सूबेदारी में केवल तीन ही महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुईं। प्रथम तो दक्षिण जाते तथा वहाँ से लौटते समय बहादुरशाह का मालवा में होकर निकलना। दूसरे, उदयपुर में मेवाड़, मारवाड़ एवं आमेर के राजपूत नरेशों में सन्धि हुई और इस मित्रदल ने रामपुरा के गोपालसिंह चन्द्रावत का पक्ष लेकर मालवा के प्रान्तीय मामलों में हस्तक्षेप करने का विफल प्रयत्न किया। अन्तिम महत्त्वपूर्ण बात कोटा-बून्दी का द्वन्द्व था, जो आगामी चालीस बरस तक चलता रहा, और उस द्वन्द्व का परिणाम समय-समय पर पलटता ही रहा।

बहादुरशाह का मालवा में होकर निकलना; अप्रेल-मई, १७०८ ई० एवं दिसम्बर, १७०९-मई, १७१० ई०

सन् १७०८ ई० में जोधपुर का मामला सन्तोषजनक ढंग से तय करने के बाद सम्राट् बहादुरशाह अजमेर लौट आया और वहाँ से चित्तौड़ होता हुआ उज्जैन की तरफ़ चला। राह में उदयपुर के महाराणा की ओर से भेंटें लेकर महराणा के कर्मचारी सम्राट् की सेवा में उपस्थित हुए; उसी समय सम्राट् को यह सूचना मिली कि महाराणा जंगलों में भाग गया है। किन्तु सम्राट् को यह अधिक आवश्यक प्रतीत हुआ कि वह दक्षिण में जाकर कामबख़्श को दबावे, इसलिए महाराणा को दण्ड देने के लिए

---

[१] अपने "मेमायर" की जिल्द १ के पृष्ठ ६५ पर फ़ुटनोट में मालकम ने लिखा है कि सन् १७१०-११ ई० में जयसिंह मालवा का नाज़िम या सूबेदार था। यह जान पड़ता है कि जिस काग़ज़ के आधार पर मालकम ने उपर्युक्त बात लिखी है, उस के सन्-संवत को ईस्वी सन् में पलटने में वह कोई ग़लती कर गया। मालवा में जयसिंह सन् १७१३ ई० के बाद ही सूबेदार बन कर आया, उसके पहिले नहीं।

सम्राट् वहाँ नहीं ठहरा।[1] अप्रेल मास में सम्राट् सेना-समेत मण्डलेश्वर पहुँचा,[2] और वहीं अप्रेल २० को उसे सूचना मिली कि जोधपुर-नरेश महाराजा अजीतसिंह, आमेर-नरेश जयसिंह तथा दुर्गादास राठौर, जो शाही सेना के साथ थे, भाग गए।[3] किन्तु सम्राट् दक्षिण जाने को अधिक उत्सुक था। मई १, १७०८ को नौनहरा घाटी में होता हुआ वह मई ७ को नर्मदा पार कर दक्षिण की ओर बढ़ा।[4]

दक्षिण से लौटते समय दिसम्बर १५, सन् १७०६ ई० को सम्राट् ने नर्मदा पार कर मालवा-प्रान्त में प्रवेश किया और माण्डू तथा नालछा होता हुआ उत्तर की ओर बढ़ा। जनवरी ६, सन् १७१० ई० को वह देपालपुर पहुँचा, और जनवरी २८ को उज्जैन के पास कालियादह में उसने डेरा डाला। उसका इरादा था कि उज्जैन से रवाना होकर जिस राह से आया था उसी रास्ते वह लौट जावे, किन्तु इसी समय सिक्खों के

---

[1] बहादुर०, पृ० ६४–९४; भीमसेन, २, पृ० १७२ अ; कामवर; इर्विन, १, पृ० ४८९

[2] इर्विन ने इस स्थान का नाम "मण्डेश्वर" लिखा है, किन्तु मण्डेश्वर ग्वालियर राज्य में स्थित मन्दसौर शहर का नाम है। इर्विन, १, पृ० ४९–४७, ३४७। ओझा इर्विन की ग़लती बता कर इस स्थान को नर्मदा नदी पर स्थित मण्डलेश्वर बताते हैं (राजपूताना, २, पृ० ९१३)। वीर विनोद (२, पृ० ८३४) एवं वंशभास्करकार (४, पृ० ३०१०–११) भी ओझा के मत की पुष्टि करते हैं। अन्य आधार-ग्रन्थों में भी अजीतसिंह आदि का नर्मदा के तीर से ही लौटने का उल्लेख मिलता है एवं इर्विन का कथन भ्रमपूर्ण जान पड़ता है।

[3] बहादुर०, पृ० ९६–७; भीमसेन, २, पृ० १७२ ब; खुशहाल, पृ० ३७६ ब; इर्विन, १, पृ० ४९–५०, ५७

[4] बहादुर०, पृ० १००–१०१; भीमसेन, २, पृ० १७२ ब; इर्विन, १, पृ० ५०

विद्रोह की उसे सूचना मिली और वह पंजाब जाने के लिए उत्कण्ठित हो गया। अतएव वह हाड़ौती के मुकुन्द-दर्रा में होता हुआ अजमेर की तरफ़ चला। राह में ही महाराजा अजीतसिंह तथा जयसिंह आकर सम्राट् की सेवा में उपस्थित हुए; शाहज़ादा अज़ीमुश्शान के बीच में पड़ कर उन्हें समझाने से उन्होंने सम्राट् की अधीनता पुनः स्वीकार कर ली।[१] इन पाँच बरसों में जब कि शाहज़ादा जहाँशाह मालवा का सूबेदार रहा, वहाँ के प्रान्तीय शासन की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया।[२]

राज्यगद्दी के लिए गृह-युद्ध; जहाँदार शाह की अन्त में विजय; फ़रवरी – मार्च, १७१२ ई०

लाहौर में ही सम्राट् बहादुरशाह की फ़रवरी, १७१२ ई० में मृत्यु होगई। चारों शाहज़ादे सम्राट् के साथ ही थे, अतएव लाहौर में ही राज्यगद्दी के लिए युद्ध प्रारम्भ हो गया। शुरू में तो जहाँदार शाह, जहाँशाह एवं रफ़ीउश्शान ने मिल कर अज़ीमुश्शान का सामना किया; युद्ध में अज़ीमुश्शान मारा गया। अब तो तीनों विजयी भाइयों में परस्पर झगड़ा चला। मार्च १७ के युद्ध में जब जहाँशाह की विजय

---

[१] बहादुर०, पृ० १८३; कामवर, पृ० ६७-८; इरादत, स्काट, पृ० ५७ ६१; ख़फ़ी०, २, पृ० ६६०-१; वीर०, २, पृ० ७८०-१; इर्विन, १, पृ० ६७, ७१, ७३

[२] इस काल की प्रान्तीय महत्त्व की घटनाओं का कुछ भी विवरण नहीं मिलता है। खाण्डेराय रासो में (पृ० २२२-२६६) लिखा है कि १७०९-१२ ई० में अली खाँ नामक एक पठान मालवा के दक्षिण-पूर्वी भाग में बहुत ही जोरदार हो गया था। उस ने पहिले गौड़ों पर चढ़ाई कर उन्हें हराया; वहाँ से उमटवाड़ा की ओर बढ़ा, उस पर भी अधिकार कर खीचीवाड़े को

होने लगी उसी समय वह भी मारा गया। दूसरे दिन रफ़ीउश्शान की हार हुई और वह भी मारा गया। तब जहाँदार शाह सिंहासनारूढ़ हुआ।[1]

नया सम्राट् अप्रेल १२, सन् १७१२ को दिल्ली के लिए रवाना हुआ। मई १६ को शाही कैम्प सराय-दौरा में था;[2] यहीं कड़ा-माणिकपुर के फ़ौजदार, सर बुलन्द ख़ाँ ने, जो शाहज़ादा अज़ीमुश्शान का साला था, सम्राट् की सेवा में उपस्थित होकर उन प्रान्तों का कोई दस-बारह लाख रुपये का संचित लगान सम्राट् को भेंट किया। सर बुलन्द ख़ाँ के साथ पाँच-छः हज़ार सैनिक भी थे। इसी समय अज़ीमुश्शान का पुत्र शाहज़ादा फ़र्रुख़सियर बिहार में विद्रोह कर रहा था, उसका साथ न देकर सम्राट् की सेवा में उपस्थित होकर सर बुलन्द ख़ाँ ने जो स्वामिभक्ति प्रदर्शित की, उसके पुरस्कार-स्वरूप उसे गुजरात की सूबेदारी दे दी गई। सर बुलन्द ख़ाँ के पहिले अमानत ख़ाँ गुजरात का सूबेदार था। ख़ाँजहाँ कोकलतास की सिफ़ारिश और उसी की ज़िम्मेवारी पर अमानत ख़ाँ को

जीतता हुआ, नरवर की ओर बढ़ा। अली ख़ाँ ने बूँदी पर भी आक्रमण किया था। जब वह नरवर की ओर बढ़ा तब खाण्डेराय ने ससैन्य उसका सामना कर उसे अनेक बार हराया (जनवरी-फ़रवरी, १७१२ ई०); राजगढ़ के पास भी एक युद्ध हुआ और अन्त में खगवर में अली ख़ाँ मारा गया (खाण्डे० पृ० २९१-५)। इस घटना का अन्य किसी ग्रन्थ या दूसरे काग़ज़ों में उल्लेख नहीं मिला।

[1] इर्विन, १, पृ० १५८-१८५

[2] सराय-दौरा में शाही कैम्प होने की जो तारीख़ केटेलार ने दी है, वही पुरानी पद्धति की बना कर यहाँ दी गई है। वेलेण्टाइन के समान केटेलार भी सम्राट् के लाहौर से रवाना होने की दूसरी ही तारीख़ देता है। ज० पं० हि० सो०, जिल्द० १०, अंक १, पृ० ३५, ४०; वेलेण्टाइन, पृ० २९७; इर्विन, १, पृ० १९०-१

अब मालवा की सूबेदारी दी गई। इस समय जुल्फ़िक़ार ख़ाँ प्रधान मन्त्री था, किन्तु इस प्रश्न पर उसकी सम्मति नहीं ली गई।[1] यह नया सूबेदार फ़रवरी, १७१३ ई० तक इस प्रान्त पर शासन करता रहा। इसी अर्से में रामपुरा का रतनसिंह उर्फ़ इस्लाम ख़ाँ विद्रोही हो गया और अमानत ख़ाँ का सामना करने लगा, जिससे अमानत ख़ाँ को उसके साथ युद्ध करना पड़ा। इस विजय के बाद अमानत ख़ाँ को 'शाहमत ख़ाँ' का ख़िताब मिला।[2]

अमानत ख़ाँ, मालवा का सूबेदार; जुलाई, १७१२ ई०-फ़रवरी, १७१३ ई०

जहाँदार शाह को हरा कर जब फ़र्रुख़सियर सिंहासनारूढ़ हुआ तब उसने शाहमत ख़ाँ (अमानत ख़ाँ) को मुबारिज़ ख़ाँ का ख़िताब दिया और उसे पुनः गुजरात का सूबेदार नियुक्त कर अहमदाबाद भेज दिया। मालवा की सूबेदारी आमेर के राजा, सवाई जयसिंह को दी गई, और उसे हुक्म हुआ कि वह आमेर से ही सीधा मालवा चला जावे।[3] अब सारे साम्राज्य में सैयदों का ही बोल-बाला था; कोटा का राजा भीमसिंह इन्हीं सैयदों

सवाई जयसिंह, मालवा का सूबेदार; फ़रवरी, १७१३ ई०—नवम्बर, १७१७ ई०

---

[1] ख़फ़ी०, २, पृ० ७१५; फ़र्रुख़०, पृ० ४९ अ; मा० उ०, ३, पृ० ७३०–१; मिरात०, १, पृ० ३९१; इर्विन, १, पृ० १९१–२; २, पृ० १३८

[2] मा० उ०, ३, पृ० ७३३; इर्विन, २, पृ० १३८

[3] मिर्ज़ा मुहम्मद, इबरत०, पृ० १७४; इर्विन, १, पृ० २६२। वंशभास्कर (४, पृ० ३०४२) में यह भी लिखा है कि रूप नगर (किशन गढ़) राज्य के राजा बहादुर की सिफ़ारिश से ही जयसिंह को यह सूबेदारी मिली।

का कृपा-पात्र था इसलिए उसका साहस बढ़ गया और बून्दी के राजा बुधसिंह को हरा कर अपना बदला लेने की तैयारी करने लगा। उज्जैन जाते समय राह में जयसिंह बून्दी भी गया था; बून्दी से उसके रवाना होने के कुछ ही दिन बाद कोटा वालों ने बून्दी पर आक्रमण किया।[१] गोपालसिंह चन्द्रावत एक बार फिर रामपुरा राज्य पर क़ब्ज़ा कर बैठा, और जयसिंह ने इस घटना की उपेक्षा की। जयसिंह ने उदयपुर की सन्धि पर हस्ताक्षर किये थे, और उस सन्धि की शर्त के अनुसार जयसिंह ने भी वादा किया था कि रामपुरा के राज्य को पुनः हस्तगत कर लेने में वह गोपालसिंह की पूरी-पूरी मदद करेगा[२]; इस कारण से भी उसने गोपाल सिंह का विरोध नहीं किया। सन् १७१५ ई० में दक्षिण जाते समय सैयद हुसैन अली मालवा में से निकला किन्तु जयसिंह उससे नहीं मिला। सैयद ने क्रुद्ध होकर सम्राट् की सेवा में जयसिंह की शिकायत की; निर्बल सम्राट् ने सैयद को जवाब दिया कि अगर वह चाहे तो जयसिंह को मालवा की सूबेदारी से च्युत कर सकता है; किन्तु सैयद ने जयसिंह को उस पद से नहीं हटाया।[३] इसी वर्ष से मरहठे पुनः मालवा पर आक्रमण करने लगे।[४] जयसिंह इन आक्रमणों को रोकने का प्रबन्ध भी नहीं कर पाया था कि

---

[१] जयसिंह, जनवरी ३१, १७१४ को बून्दी से रवाना हुआ; और फ़रवरी २, १७१४ को बून्दी पर आक्रमण हुआ। वंश० ४, पृ० ३०४२-३

[२] टाड, १, पृ० ४६६; वीर०, २, पृ० ९८९

[३] मा० उ०, ३, पृ० ३२६

[४] अठले मण्डलोई दफ़्तर (अप्रकाशित), पत्र सं० ८, ९, १३; सरदेसाई, मध्य० १, पृ० ३१७

सम्राट् ने सैयदों को निकाल बाहर करने के षड्यन्त्र में सम्मिलित होकर सहायता देने के लिये जयसिंह को दिल्ली बुला लिया। जयसिंह को मालवा से बुलाने के लिए मार्च २०, १७१६ ई० को दिल्ली से हरकारा भेजा गया। मई २४ को जयसिंह के सराय-अलावर्दी ख़ाँ पहुँचने की सूचना सम्राट् के पास पहुँची; और दो दिन बाद वह सम्राट् के दरबार में उपस्थित हुआ।[1] दिन प्रति दिन जयसिंह के प्रति सम्राट् की श्रद्धा बढ़ने लगी। सितम्बर १५, सन् १७१६ ई० को विद्रोही चूड़ामन जाट को दबाने का कार्य उसे सौंपा गया। बुधसिंह पर सम्राट् फिर प्रसन्न हो गया था। उसके अतिरिक्त नरवर के राजा गजसिंह और कोटा के राव भीमसिंह को भी जयसिंह के साथ भेजा। इस प्रकार दो वर्ष तक जयसिंह इसी विद्रोह को दबाने में लगा रहा।[2] अतएव इस समय मालवा के शासन-कार्य की उपेक्षा होना स्वाभाविक ही था। जयसिंह की अनुपस्थिति में मरहठों को मालवा प्रान्त में घुस कर चौथ आदि वसूल करने का अवसर मिल गया। मरहठों ने अब मालवा में अपनी सत्ता स्थापित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया, और अपनी सेना के अनेकानेक सेनापतियों तथा अन्य कर्मचारियों को मालवा में 'मोकासा' भी दिया।[3]

इधर सम्राट् और सैयदों में मनमुटाव बढ़ रहा था। सैयद हुसैन

---

[1] कामवर, पृ० १४०; मा० उ०, पृ० ८२; मिर्ज़ा, पृ० २९३; वंश०, ४, पृ० ३०५१–२; इर्विन, १, पृ० ३२४, ३३३

[2] इर्विन, १, पृ० ३२४ एवं आगे के पृष्ठ, पृष्ठ ३३३ तथा उस के आगे के पृष्ठ; क़ानूनगो, जाट्स, १, पृ० ५१–२; कामवर, पृ० १४०, १६७; शिव०, पृ० १२ अ; वंश०, ४, पृ० ३०५२–३; ३०५६

[3] ख़फ़ी०, २, पृ० ७८१; पे० द०, ३०, पत्र सं०, १७ अ, १७ ब

अली ख़ाँ इस समय दक्षिण में ही था, और एक प्रकार से उसी के बल पर उसके भाई वज़ीर कुतुब-उल-मुल्क की सत्ता स्थित थी, इसलिए सम्राट् हुसैन अली ख़ाँ के विरुद्ध किसी शक्तिशाली अमीर को मालवा की ओर भेजने की सोच रहा था। जब सन् १७१७ ई० में पुनः मरहठों ने मालवा पर आक्रमण किया, सम्राट् फ़र्रुख़सियर ने मुहम्मद अमीन ख़ाँ को मालवा की सूबेदारी पर नियुक्त किया।[1] नये सूबेदार ने बहुत-सा समय दिल्ली में ही तैयारी करने में लगा दिया; ऐसा प्रतीत होता था कि उसे रवाना होने की जल्दी न थी, एवं सम्राट् व्यग्र होगया। मुराद को आज्ञा हुई कि मुहम्मद अमीन ख़ाँ को जल्दी ही रवाना होने के लिए तैयार करे, परन्तु अमीन ख़ाँ टस से मस न हुआ। तब तो मुराद के ही कहने पर सम्राट् ने मुहम्मद अमीन ख़ाँ को दूसरे बख़्शी के पद से हटा कर सर्वदा के लिए मालवा का सूबेदार नियुक्त कर दिया। यह चाल चल गई और अन्त में नवम्बर १९, १७१७ ई० को मुहम्मद अमीन ख़ाँ मालवा के लिए रवाना हुआ।[2] जब वह दिल्ली से रवाना हो रहा था, उस समय उसने बड़ी-बड़ी बातें बनाईं कि उसे दोस्त मुहम्मद ख़ाँ से (जिसने बाद में भोपाल राज्य की स्थापना की) बहुत सहायता प्राप्त होगी। किन्तु जब वह मालवा पहुँचा तब उसे ज्ञात हुआ कि उसकी सारी बड़ी-बड़ी बातें

मुहम्मद अमीन ख़ाँ, मालवा का सूबेदार; नवम्बर, १७१७ — दिसम्बर १७१८ ई०

[1] ईर्विन, १, पृ० ३३९–३४०, ३६५; मध्य०, १, पृ० ८८; मा० उ०, १, ३२९–३३०

[2] मा० उ०, १, पृ० ३३९; ईर्विन, १, पृ० ३३९–४०

कोरी बातें ही थीं। शीघ्र ही उसने बहुत से सैनिकों, तोपों आदि को भेजने के लिए दिल्ली लिखा, बहुत सा रुपया भी माँगा, किन्तु इतनी सब मदद करना सम्राट् के लिए असम्भव था; उसकी प्रार्थना अस्वीकृत हुई।[1]

मालवा में मुहम्मद अमीन ख़ाँ

दिल्ली में यही विश्वास हो गया कि वह जल्द ही लौट आना चाहता है। इधर मालवा में तरह-तरह की ख़बरें फैल रही थीं कि मुहम्मद अमीन ख़ाँ ६०,००० अनुभवी घुड़सवारों को लेकर हुसैन अली ख़ाँ से लड़ने को दक्षिण जा रहा है। इन सब ख़बरों को सुनकर हुसैन अली बहुत ही चिन्तित हो गया, और अन्त में नवम्बर १३, सन् १७१८ को सम्राट् को सूचना मिली कि पिछले महीने में ही हुसैन अली औरंगाबाद से चल पड़ा। दिसम्बर ४, १७१८ को बुरहानपुर से रवाना होकर हुसैन अली ने नर्मदा को पार किया। जब हुसैन अली ने सुना कि मुहम्मद अमीन ख़ाँ सैनिकों को एकत्रित करके लड़ाई की तैयारी कर रहा है तो उसने नासिरुद्दीन ख़ाँ ईरानी को मुहम्मद अमीन ख़ाँ के असली इरादों का पता लगाने को भेजा; इतने ही में हुसैन अली को सूचना मिली कि मुहम्मद अमीन ख़ाँ दिल्ली को लौट गया। हुसैन अली अब उज्जैन की ओर चला। राह में माण्डू के पास से निकला तो अमीर ख़ाँ का पुत्र, मरहमत ख़ाँ, जो माण्डू का फ़ौजदार था, बीमारी का बहाना करके हुसैन अली से मिलने के लिये नहीं आया, जिससे हुसैन अली को बहुत क्रोध आया। माण्डू के पास हुसैन अली को दिल्ली से भेजा हुआ इख़लास ख़ाँ मिला।

---

[1] इर्विन, १, पृ० ३६१ फ़ुटनोट में दिया गया 'दस्तूर-उल्-इंशा', पृ० ५३ का उल्लेख।

सम्राट् का यह विश्वास था कि इख़लास ख़ाँ का सैयदों पर बहुत प्रभाव है, एवं उसे इस उद्देश्य से भेजा कि समझा-बुझा कर वह हुसैन अली को दिल्ली जाने से रोके। किन्तु इख़लास ख़ाँ ने हुसैन अली को सारी बातों से परिचित कर दिया और दिल्ली में सम्राट् तथा वज़ीर के बीच जो खींचा-तानी हो रही थी उसका भी कच्चा चिट्ठा सुना दिया। दिसम्बर १६, (ख़फ़ी ख़ाँ के मतानुसार २६), सन् १७१८ ई० को हुसैन अली उज्जैन पहुँचा। उसने निश्चय किया कि मन्दसौर होता हुआ वह दिल्ली जायगा।[1]

मुहम्मद अमीन ख़ाँ का दिल्ली लौटना और पद-च्युति; दिसम्बर १७१८ ई०—जनवरी, १७१९ ई०

मुहम्मद अमीन ख़ाँ को दिल्ली से कोई मदद नहीं मिली, एवं जब उसने हुसैन अली का दिल्ली लौटने का वृत्तान्त सुना, तब तो वह बड़े अस-मंजस में पड़ गया। उसकी सेना इतनी बलवान न थी कि वह हुसैन अली को दिल्ली जाने से रोक सकता, और यदि वह एक ओर हट कर हुसैन अली को जाने भी देता तो इसमें मुहम्मद अमीन ख़ाँ की कायरता प्रकट होती। इर्विन लिखता है कि, "उसके सौभाग्य से उसे दिल्ली लौट आने की आज्ञा मिली और वह शीघ्र ही दिल्ली के लिए रवाना हो गया।" इधर मालवा में यह ख़बर फैली कि वह बिना शाही आज्ञा के ही मालवा से रवाना हो गया। यह स्पष्ट है कि निर्बल, अस्थिर-वृत्ति वाले सम्राट् ने ही उसके शक्तिशाली प्रधान मन्त्री को धोखा देने के लिए इस प्रकार की ख़बरें उड़वाई

---

[1] ख़फ़ी०, २, पृ० ७९४-७; कामराज, इबरत, पृ० ६५ अ, तथा बाद के पृष्ठ; मा० उ०, १, पृ० ३४९; इर्विन, १, पृ० ३५७, ३६०, ३६५—७, ३६८ इर्विन "मण्डेश्वर" लिखता है, जो मन्दसौर का ही दूसरा नाम था; देखो थार्नटन का गज़ेटियर, पृ० ६४५-६

थीं, किन्तु वज़ीर बहुत ही काइयाँ था और सत्य बात उससे छिपी न रह सकी।[1] किन्तु जब तक मुहम्मद अमीन ख़ाँ आगरा पहुँचा, सम्राट् पुनः अपने इरादे बदल चुका था। वज़ीर के ही प्रस्ताव पर सम्राट् ने उसको हुक्म भेजा कि वह पुनः मालवा को लौट जावे; किन्तु यह आज्ञा उसके निजी इरादों के लिए बाधा-जनक थी एवं मुहम्मद अमीन ख़ाँ उसका पालन करने को तैयार न हुआ। सम्राट् बहुत ही क्रुद्ध हुआ और मुहम्मद अमीन ख़ाँ की जागीर तथा उसका मन्सब ज़ब्त कर लिया।[2] कुछ महीनों तक मालवा बिना सूबेदार के ही रहा।

फ़र्रुख़सियर को गद्दी से उतारना; रफ़ी-उद्दाराजात का राज्यारोहण; फ़रवरी १८, १७१९ ई०

ज्यों-ही हुसैन अली दिल्ली पहुँचा, सैयदों की शक्ति बहुत बढ़ गई। जो कोई भी उनके विरोधी थे, उनको या तो सैयदों ने अपनी ओर मिला लिया या वे सम्राट् से इतने अप्रसन्न हो गये थे कि अब वे सम्राट् का साथ देंगे यह सम्भव न रहा। जयसिंह और बुधसिंह अब भी फ़र्रुख़सियर के सहायक थे, अतः वज़ीर ने सम्राट् को विवश किया कि उन दोनों राजाओं को अपनी-अपनी राजधानी चले जाने की आज्ञा दे दे। दिल्ली से रवाना होने से पहिले बुधसिंह को कोटा के भीमसिंह हाड़ा की सेना के साथ एक छोटी-मोटी लड़ाई भी लड़नी पड़ी।[3] जब पूरी तैयारी

[1] ख़फ़ी ख़ाँ (२, पृ० ८००-८०२) इस अफ़वाह का उल्लेख करता है; मा० उ० में (१, पृ० ३४९) भी इसी की पुनरावृत्ति हुई है। ईर्विन १, पृ० ३६१ फ़ुटनोट, पृ० ३६६ फ़ुटनोट

[2] ईर्विन, १, पृ० ३६६-७, ३८७

[3] ख़फ़ी०, २, पृ० ८०६; ईर्विन, १, पृ० ३७१, ३७६; वंश०, ४, पृ० ३०६५-६६

हो गई तो फ़रवरी १८ के दिन सैयदों ने फ़र्रुख़सियर को गद्दी से उतार दिया और शाहज़ादा रफ़ीउश्शान के सब से छोटे लड़के, शाहज़ादा रफ़ी-उद्-दाराजात को सिंहासन पर बिठाया।

इस बालक-सम्राट् के सिंहासनारूढ़ होने से सैयदों का आधिपत्य स्थायी हो गया, और अब वे शासन को पुनः संगठित करने में लग गये। जिन-जिन अमीरों ने सैयदों की मदद की थी, उन्हें पुरस्कार-स्वरूप ऊँचे ऊँचे पद तथा ओहदे दिए गए। निज़ाम से उन्हें अपने अनिष्ट की आशंका रहती थी, अतएव उसे किसी प्रान्त की सूबेदारी देकर दिल्ली से बाहर भेजना ही उचित प्रतीत हुआ। मालवा की सूबेदारी उसने इसी शर्त पर

मालवा की सूबेदारी पर निज़ाम की नियुक्ति; फ़रवरी २०, १७१९ ई०

स्वीकार की कि वह पुनः उस पद से च्युत नहीं किया जावेगा।[1] मालवा की सूबेदारी पर निज़ाम की नियुक्ति के साथ ही प्रान्त के इतिहास में एक नवीन युग का प्रारम्भ होता है। प्रारम्भ में निज़ाम एवं सैयदों में खींचा-तानी होने लगी, और सैयदों के पतन के बाद इस द्वन्द्व में सम्राट् ने सैयदों का स्थान ग्रहण किया और तब सम्राट्-निज़ाम-द्वंद आरम्भ हुआ। मालवा में मरहठों के प्रवेश के साथ ही यह गुत्थी अधिक उलझ गई।

इस युग के प्रान्तीय शासन के इतिहास में कोई भी विशेष उल्लेखनीय बात नहीं हुई, अगर कोई थी तो केवल यही कि किसी ने भी प्रान्त

---

[1] इर्विन, १, पृ० ३८६-८९, ४०५-१५; ख़फ़ी०, २, पृ० ८१७; कामवर, पृ० १८८; शिव०, पृ० २७ अ; वारिद, पृ० १५७ ब; अहवाल-उल्-ख़वाकीन, पृ० १४५ ब, १४६ अ, १५२ (इर्विन से उद्धृत); ख़ुशहाल०, पृ० ४१३ ब, ४१४ अ

के आन्तरिक शासन की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। प्रत्येक व्यक्ति ने अपने निजी लाभ के उद्देश्य से ही मालवा को अपने अधिकार में लाने का प्रयत्न किया, और इसके लिए काफ़ी खींचा-तानी भी हुई। केन्द्रीय सत्ता की ओर से होने वाली इस उपेक्षा के कारण ही स्थानीय ज़मींदार तथा जागीरदार साम्राज्य की बिलकुल परवाह न करने लगे। साम्राज्य के प्रति विभिन्न जागीरदारों के जो-जो कर्तव्य थे या उनकी जो-जो सेवाएँ अनिवार्य थीं, उनकी ओर प्रान्त के सूबेदारों ने कोई ध्यान नहीं दिया, और इस प्रकार उन्होंने अनजाने ही उन ज़मींदारों तथा जागीरदारों के राजनैतिक विकास में सहायता की। शासन-व्यवस्था का ह्रास दिन पर दिन होता गया; मरहठों के उमड़ते हुए प्रवाह की ठेस पाकर यह निर्बल जर्जर शासन-शकट छिन्न-भिन्न हो जावेगा, इस बात में किसी को भी कोई शंका न थी। मरहठे सैनिक मालवा में घुस चुके थे और वे अब वहाँ अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे। इस समय के प्रान्तीय सूबेदारों ने मरहठों के इन तुच्छ प्रयत्नों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, किन्तु आगामी युग में यही प्रयत्न इतने बढ़ गए कि उन्होंने मालवा में शाही सत्ता को चुनौती देने का साहस किया।

प्रान्तीय शासन की दशा

३. मरहठों का मालवा में प्रवेश; दक्षिण में उनको अधिकार-सम्बन्धी सनदों की प्राप्ति
(१७०७–१७१९)

औरंगज़ेब की मृत्यु का मरहठों की राजनीति पर क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा। शाहू के दक्षिण लौट जाने तथा सम्राट् बहादुर शाह के उत्तर में

चले आने से सारी राजनैतिक परिस्थिति बदल गई। कुछ बरसों तक मरहठे गृहयुद्ध में ही लगे रहे; कोल्हापुर घराने का यह विरोध शाहू के लिए जीवन भर भयप्रद ही रहा, राजाराम के ये वंशज मरहठों की सत्ता की राह के काँटे बन गए। इस समय मरहठा राजा, शाहू और मरहठों की सत्ता बहुत ही निर्बल होगए, एवं वे साम्राज्य के विरुद्ध कोई भी आक्रमणशील नीति अंगीकार नहीं कर सकते थे। कुछ बरसों तक शाहू को शाही अधिकारियों से मेल रख कर उनका ही साथ देना पड़ा। बहादुर शाह के शासन-काल में ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ ही दक्षिण का सूबेदार था; ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ की यही नीति थी कि किसी भी प्रकार मरहठों के साथ शान्ति-जनक समझौता कर लिया जावे, एवं उसके आदेश से ही उसके नायब, दाउद ख़ाँ पन्नी ने एक समझौता कर लिया, जिसके अनुसार जो सेनापति राजा साहू की अधीनता स्वीकार करें उन्हें चौथ देने का वादा किया गया; इतनी एक शर्त अवश्य रखी गई थी कि शाही कर्मचारी ही यह चौथ वसूल करेंगे और वे ही मरहठों को यह रुपया देंगे। ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ के मारे जाने के बाद दाउद ख़ाँ गुजरात भेज दिया गया और इस समझौते का भी अन्त हो गया।[1] इस समझौते के फलस्वरूप, एवं मरहठों की निर्बलता के कारण भी इन वर्षों

सन् १७०७ में मरहठों की सत्ता; उसकी निर्बलता

दाउद ख़ाँ पन्नी का शान्तिजनक समझौता; १७०९-१७१३ ई०

[1] मध्य०, १, पृ० २३-६८; इर्विन, २, पृ० १६२–३; डफ़, १, पृ० ३१९, ३२१; राजवाड़े, ८, पृ० ५४-५६। सरदेसाई के मतानुसार राजवाड़े में दिये गये पत्रों की तारीख़ें ग़लत हैं।

में (१७०७–१३ ई०) मालवा पर मरहठों का कोई आक्रमण नहीं हुआ[1]।

सन् १७१३ ई० में निज़ाम को दक्षिण की सूबेदारी पर नियुक्त किया गया, और जब तक सन् १७१५ ई० में हुसैन अली खाँ स्वयं दक्षिण न गया वही उस पद पर स्थित रहा। निज़ाम स्वयं मरहठों के साथ समझौता करने की नीति का विरोधी था एवं उसके दक्षिण जाते ही मरहठों के साथ फिर द्वन्द्व शुरू हो गया और सन् १७१८ ई० में जब तक विवश हो कर हुसैन अली ने सन्धि न करली यह द्वन्द्व चलता ही रहा।

दक्षिण में निज़ाम; बालाजी विश्वनाथ का उत्थान

दक्षिण के इस द्वन्द्व-काल में राजा शाहू के नए पेशवा, बालाजी विश्वनाथ ने मरहठों की सत्ता को एकता, संगठन तथा बल प्रदान कर शक्ति-शाली बनाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। इस प्रकार बालाजी विश्वनाथ ने अपने पुत्र के लिए राह साफ़ कर दी; उसके इन प्रयत्नों के बिना यह सम्भव न होता कि सन् १७२० ई० में अपने पिता की मृत्यु पर जब बाजीराव पेशवा बना, तब वह शीघ्र ही साम्राज्य के विरुद्ध आक्रमण-शील नीति का प्रयोग करता।

ज्योंहीं दक्षिण में मुग़ल-मरहठा द्वन्द्व आरम्भ हुआ, मालवा पर भी मरहठों के आक्रमण पुनः प्रारम्भ हो गए। सन् १७१५ के प्रारम्भ में दावल जी सोमवंशी ने मालवा पर आक्रमण किया और कुछ परगनों की प्रजा को बहुत ही कष्ट दिया। कम्पेल परगने के मण्डलोई, नन्दलाल ने

[1] मालकम के मतानुसार सवाई जयसिंह के प्रभाव से ही इन वर्षों में मरहठों का कोई आक्रमण नहीं हुआ (मालकम, १, पृ० ६३ फ़ुटनोट), किन्तु यह कथन भ्रम-पूर्ण है एवं विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है।

किसी प्रकार आक्रमणकारियों को २५,००० रु० देकर उनसे अपना पीछा छुड़ाया; यह रुपया लेकर मरहठे दक्षिण को लौट गए।[1] किन्तु शीघ्र ही मरहठों का फिर आक्रमण हुआ। सन् १७१७ के जनवरी मास में शाहू ने कान्हो जी भोंसले को मालवा-प्रान्त के परगनों में मोकासा प्रदान किया; नर्मदा से उत्तर में मोकासा आदि प्रदान करने का यह पहला ही अवसर था।[2] सन् १७१८ ई० में हुसैन अली ने मरहठों से सन्धि करली और कुछ काल के लिए मालवा पर होने वाले आक्रमण बन्द हो गए, किन्तु एक बार मरहठे सेनापतियों का जो प्रवेश प्रान्त में हो चुका था, उसके प्रभाव का न होना एक असम्भव बात थी।

हुसैन अली की सन्धि; सन् १७१८ ई०

शंकर जी मल्हार ने ही बीच में पड़कर मरहठों एवं सम्राट् के बीच यह सन्धि करवाई थी। इस सन्धि से हुसैन अली ने दक्षिण के छः सूबों में चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल करने का मरहठों का हक़ स्वीकार कर लिया, और साथ ही शाहू को उसके राज्य का, जो अब स्वराज्य कहलाता था, अधिपति भी मान लिया। सम्राट् इस सन्धि का अनुमोदन करने को तैयार न था, किन्तु दक्षिण में तो इस सन्धि की शर्तें व्यवहार में आती रहीं।[3]

---

[1] अ० म० द०, पत्र नं० १३, ८, ९; मध्य०, १, पृ० ३१७। शाही कर या लगान द्वारा वसूल किये जाने वाले द्रव्य में से रु० २५,०००) की छूट देकर एक प्रकार से सम्राट् ने ही यह रुपया चुकाया।

[2] पे० द०, ३०, पत्र नं० १७ अ, १७ ब; नेमाड़ और हंडिया परगनों का मोकासा, तथा उज्जैन और भिलसा परगनों की सरदेशमुखी कान्हो जी को दी गई थी। (जनवरी २४, १७१७ ई०)

[3] डफ़, १, पृ० ३३२-५; इर्विन, २, पृ० १६३-४; मेन क०, पृ० ११०-१; ख़ाफ़ी०, २, पृ० ७८१, ७९०; मध्य०, १, पृ० ८२-११५

नवम्बर १७१८ ई० में जब हुसैन अली दक्षिण से दिल्ली के लिए रवाना हुआ, वह अपने साथ मरहठों का एक दल भी लेता गया। पेशवा बालाजी विश्वनाथ सेना लेकर हुसैन अली के साथ गया; पेशवा का लड़का, बाजीराव भी अपने पिता के साथ दिल्ली गया। मरहठों की इस सेना में शाहू ने चुने हुए, सुप्रसिद्ध वीर मरहठे सेनापतियों को भेजा था, जिनमें से उदाजी पवार, खाण्डेराव दाभाड़े और कान्होजी भोंसले ही विशेष-रूपेण उल्लेखनीय थे। अन्य बातों के अतिरिक्त हुसेन अली ने मरहठों को यह आश्वासन भी दिया था कि वह सम्राट् से उस सन्धि का अनुमोदन करवा देगा।[1] मरहठों के लिए यह एक बहुत ही अच्छा अवसर था। दिल्ली जाकर वे साम्राज्य की आन्तरिक दशा का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त करने की आशा कर सकते थे।

हुसेन अली के साथ मरहठों का दिल्ली जाना; नवम्बर, १७१८ ई०

रफ़ी-उद्-दाराजात के सिंहासनारूढ़ होने के बाद शीघ्र ही मरहठों को तीन फ़रमान, मार्च ३ तथा १४, सन् १७१९ ई० को प्राप्त हुए। दक्षिण के छः सूबों से चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल करने की आज्ञा मरहठों को मिल गई; और सन् १६८१ ई० में जो राज्य शिवाजी के अधिकार में था, कुछ छोटे-मोटे परिवर्तनों के बाद

दिल्ली में फ़रमानों की प्राप्ति; मार्च, १७१९ ई०

---

[1] ग्रेण्ट डफ़ लिखता है कि शाहू ने पेशवा से इस बात के लिए भी आग्रह किया था कि मालवा और गुजरात से भी चौथ आदि वसूल करने के अधिकार की स्वीकृति का शाही फ़रमान प्राप्त करने का प्रयत्न करे। (डफ़, १, पृ० ३३६).

वह भी शाहू को दे दिया गया।[1] मार्च १० को मरहठों की सेना को सम्राट् की ओर से बिदा मिली और शीघ्रही पेशवा दक्षिण के लिए रवाना हो गया। दक्षिण में मरहठों का अस्तित्व, उनके राज्य का स्थायित्व, तथा चौथ आदि की वसूली का उनका अधिकार, ये सब अब सम्राट् द्वारा स्वीकृत होगए थे; एवं मरहठों को अब मुग़ल-साम्राज्य में राजाज्ञा-सम्मत एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हो गया था। इस प्रकार मरहठे मालवा की सीमा तक पहुँच गए। मालवा में वे कुछ थाने तथा चौकियाँ स्थापित कर ही चुके थे; बीजागढ़ के परगने में राजा शाहू को औरङ्ग़ज़ेब की दी हुई जागीर प्राप्त ही थी,[2] और अब यह स्वाभाविक ही था कि अपनी सत्ता एवं अपने क्षेत्र को बढ़ाने के इच्छुक मरहठे ललचाई हुई आँखों से मालवा की ओर ताकें। मालवा की सीमा तक पहुँच कर, उसके प्रदेश में प्रवेश कर, उसके आधिपत्य के लिए प्रयत्नशील होना एक अवश्यम्भावी बात थी।

---

[1] इर्विन, १, पृ० ३८२–४, ४०६–७; कामवर, १, १९९; डफ़, १, पृ० ३३७–३४०। जो तारीखें डफ़ ने दी हैं वे ग़लत हैं। (इर्विन, १, पृ० ४०७ फ़ुटनोट)

[2] औरंगजेब ने राजा शाहू को कुछ जागीर दी थी। उस समय शाहू शाही केम्प में क़ैद था। यह सम्भव है कि शाहू के खान-पान का व्यय चलाने के ही उद्देश्य से यह जागीर दी गई हो। किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि औरंगजेब की मृत्यु के बाद भी वह जागीर ज़ब्त नहीं की गई। इस जागीर की व्यवस्था का कार्य भी पेशवा के ही ज़िम्मे था। खरगोन परगने में स्थित केटारे गाँव के मुक़द्दमों को, तथा उस गाँव के रक्षाप्रबन्ध के लिए जो आज्ञाएँ पेशवा ने दी थीं, वे उस जागीर के प्रबन्धक की हैसियत से ही दी गयी थीं। वाड़, १, पृ० ९३; पे० द०, ७, पत्र सं० ३२

४. राजपूताने के राजपूत राजा तथा मालवा
(१७०७–१७१९ ई०)

औरंगज़ेब के मरते ही राजपूताने के राजपूत नरेशों की स्थिति तथा उनके महत्त्व में भी एकबारगी परिवर्तन हो गया। सिंहासनारूढ़ होते ही बहादुरशाह ने राजपूत नरेशों को प्रसन्न रख कर उनका सहयोग प्राप्त करने की नीति को अंगीकार किया, और इससे उन नरेशों का महत्त्व बहुत बढ़ गया। यह नरेश अब मालवा के प्रान्तीय मामलों में भी हाथ डालने का प्रयत्न करने लगे, जिससे मालवा के आन्तरिक मामलों में एक और नया प्रश्न उठ खड़ा हुआ। राजपूतों पर प्रायः तीन ही राजाओं का कुछ प्रभाव था; वे तीन नरेश थे मेवाड़, मारवाड़ तथा आमेर (जयपुर) के अधिपति। अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ पूर्ण करने के लिए जयसिंह मालवा पर दाँत लगाए बैठा था; मालवा के विभिन्न राजपूत-घरानों से शादी-ब्याह का सम्बन्ध होने से भी उन पर उसका प्रभाव था; इसके अतिरिक्त ज्यों-ज्यों शाही राजदरबार में उसका महत्त्व बढ़ने लगा त्यों-त्यों मालवा-प्रान्त में भी उसके प्रभाव की वृद्धि होती गई। जब वह मालवा का सूबेदार नियुक्त हुआ तब तो उसकी स्थिति अधिकाधिक दृढ़ होगई। इस समय मालवा की प्रान्तीय राजनीति में राजपूतों का बहुत बड़ा हाथ रहा था, एवं प्रान्त के तत्कालीन मामलों पर उनके दृष्टि-कोण तथा उनकी नीति का बहुत प्रभाव पड़ा। सरदेसाई का यह कथन कि–"१८ वीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में भारतीय राजनैतिक परिस्थिति पर राजपूतों का बहुत ही महत्वपूर्ण

राजपूताने के राजा तथा मालवा

प्रभाव पड़ा"[1] मालवा के इतिहास के लिए बहुत ही उपयुक्त है। मालवा तथा राजपूताने में मरहठों की भावी सफलता पर ही आगामी युगों में उत्तरी भारत पर होने वाली उनकी चढ़ाइयों का भविष्य निर्भर था।

जाजव के युद्ध के दो दुष्परिणाम यह हुए कि कोटा तथा बून्दी के हाड़ा-घरानों में बहुत ही घोर प्रतिद्वन्द्विता आरम्भ हुई; पुनः जयसिंह के दिल में बहादुर शाह के प्रति विरोधी भावनाओं ने घर कर लिया, जिससे अपने स्वार्थ के लिए, साम्राज्य के हिताहित का उसने कभी भी विचार नहीं किया।

कोटा-बून्दी द्वन्द्व; १७०७–१७१९ ई०

सन् १७०७ में राज्यगद्दी के लिए होने वाले युद्ध में कोटा और बून्दी के राजघरानों ने विभिन्न पक्षों का समर्थन किया था; किन्तु टाड के कथनानुसार इस द्वन्द्व का प्रधान कारण यह ही था कि कोटा का रामसिंह हाड़ा चाहता था कि बून्दी के स्थान पर वह स्वयं हाड़ा-चौहानों का प्रधान व्यक्ति माना जावे।[2] बहादुर शाह बुधसिंह से प्रसन्न था। अतः सिंहासनारूढ़ होते ही उसने बुधसिंह को "राव राजा" का ख़िताब भी दिया और कोटा-राज्य के जो ५४ क़िले ज़ब्त कर लिए थे, वे सब बुधसिंह को दे दिए गए।[3] किन्तु कोटा का क़िला बून्दी वाले हस्तगत न कर

---

[1] मेन क०, पृ० १०९; मध्य० १, पृ ७७-८०

[2] टाड, ३, पृ० १४९५

[3] टाड, ३, पृ० १४९६; वंशभास्कर के कथनानुसार (४, पृ० २९९८) बुधसिंह को "महारावराजा" का ख़िताब दिया गया था।

वंशभास्कर में निम्नलिखित १२ क़िलों के नाम दिये हैं—

१ कोटा, २ झालरापाटन, ३ गागरोन, ४ शाहबाद, ५ शेरगढ़, ६ बड़ोद,

सके;[1] राव रामसिंह का पुत्र, भीमसिंह कोटा की रक्षा कर रहा था। कुछ ही दिनों बाद बुधसिंह अपने राज्य के कार्य को कर्मचारियों के हाथ में छोड़ कर स्वयं भोग-विलास में पड़ गया।

ज्यों-ही सैयदों की शक्ति बढ़ी, त्यों-ही भीमसिंह की बन आई; उसने सैयदों का साथ दिया था। राज्यारूढ़ होने के बाद जब सम्राट् फ़र्रुख़सियर ने बुधसिंह को दरबार में बुला भेजा, तब वह नहीं आया इसलिए सम्राट् ने उससे रुष्ट होकर उसका सारा राज्य कोटा के भीमसिंह को प्रदान कर दिया। इस समय जयसिंह मालवा का सूबेदार था, बुधसिंह ने मालवा में जाकर उसकी शरण ली। सन् १७१६ ई० में जयसिंह की प्रार्थना पर सम्राट् पुनः बुधसिंह से प्रसन्न हो गया और बाराँ तथा मऊ के परगनों को छोड़ कर बाक़ी सारा बून्दी राज्य पुनः बुधसिंह को दे दिया; बाराँ और मऊ के परगने कोटा राज्य के अन्तर्गत ही रहे।[2] जब जयसिंह ने सेना लेकर जाटों के विरुद्ध चढ़ाई की तब बुधसिंह और भीमसिंह दोनों उसके साथ थे।[3] सन् १७१८ ई० में दिल्ली लौटने पर हुसैन अली ने जब फ़र्रुख़सियर को गद्दी से उतारने का इरादा किया, उस समय

---

७ चेचट, ८ छाबड़ा, ९ गुगैर, १० पचपाड़, ११ पादप, १२ डग। ये सब क़िले मालवा प्रान्त में ही स्थित हैं, और प्रायः सारे कोटा राज्य में फैले हुए थे। (वंश०, ४, पृ० २९९९)

[1] वंश०, ४, पृ० ३००८, ३०२२-२४

[2] वंश०, ४, पृ० ३०३०–१, ३०३९

[3] वंश०, ४, पृ० ३०४०–४३, ३०४३–४८, ३०५२–५६, ३०५८–५९; टाड, ३, पृ० १४९६, १५२४; ईर्विन, १, पृ० ३३३, ३२६; कामवर, पृ० १४०-१६८; शिव०, १२ अ

फ़र्रुख़सियर की सहायता करने वाले केवल दो ही व्यक्ति थे, जयसिंह और बुधसिंह; किन्तु सम्राट् से उन्हें आज्ञा दिलवा दी गई थी कि वे अपनी अपनी राजधानियों को लौट जावें। तत्कालीन परिस्थिति से लाभ उठाकर बुधसिंह को मरवा डालने के इरादे से भीमसिंह ने सेना लेकर बुधसिंह के निवास-स्थान को जा घेरा। जब शाही-आज्ञानुसार बून्दी लौट जाने के लिए बुधसिंह दिल्ली से रवाना हुआ, तब उसने इस सेना का सामना किया और लड़ कर ही निकल सका।[1] फ़र्रुख़सियर को गद्दी से उतारने के बाद जब सैयद साम्राज्य का प्रबन्ध संगठित करने लगे, उस समय उन्होंने बुधसिंह से अपना बदला ले लिया।[2] हाड़ौती में होने वाले इन झगड़ों से प्रान्त की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर निरन्तर अशान्ति ही बनी रही।

जयसिंह का असन्तोष; उदयपुर की सन्धि, सन् १७०८ ई०

कोटा-बून्दी से भी अधिक महत्त्व का प्रश्न जयसिंह का था; उपर्युक्त प्रश्न के समान इसका भी प्रारम्भ जाजव के युद्ध से ही हुआ। उस युद्ध के बीच में ही जयसिंह ने आज़म का साथ छोड़ दिया और आकर बहादुर शाह से मिल गया था, किन्तु फिर भी बहादुर शाह उसके छोटे भाई, विजयसिंह का ही पक्ष करता रहा। अप्रैल २०, १७०८ ई० को बहादुर शाह ने विजय सिंह को 'मिर्ज़ा राजा' का ख़िताब देकर उसे आमेर का राज्य दे

[1] वंश०, ४, पृ० ३०६५–६७; टाड, १, पृ० ४७३–४; ३, पृ० १४९६, १५२७; इर्विन, १, पृ० ३७६; शिव०, पृ० २४ अ; मिर्ज़ा०, पृ० ४४९; ख़फ़ी, २, पृ० ८०५–८०६; कामवर, पृ० १९१

[2] इर्विन, २, पृ० ५-६

दिया ।[1] सम्राट् ने जयसिंह को अपने साथ शाही केम्प में ही, एक प्रकार से नज़रबन्द कर रक्खा था । मारवाड़ की चढ़ाई के बाद महाराजा अजीतसिंह भी शाही केम्प में आगए । जब तक शाही केम्प नर्मदा के तीर तक पहुँचा, आमेर राज्य की पुनः स्थापना की जयसिंह की सब आशाएँ भग्न हो चुकी थीं, एवं वह अजीतसिंह तथा दुर्गादास के साथ शाही केम्प से निकल भागा और यह लोग सीधे उदयपुर पहुँचे । वहाँ एक सन्धि हुई जिससे उदयपुर, जोधपुर तथा आमेर के नरेशों में पुनः मेल हो गया । महाराणा की पुत्री के साथ जयसिंह का विवाह हुआ, और जयसिंह ने वादा किया कि यदि उदयपुर वाली महाराणी से कोई पुत्र हुआ तो वही गद्दी का अधिकारी होगा; इस प्रकार जयसिंह ने अब तक आमेर में प्रचलित ज्येष्ठाधिकार के नियम को रद्द कर दिया । इन तीनों नरेशों ने यह तय किया कि वे तीनों मिल कर ही काम करेंगे । इस सन्धि का प्रथम तथा सर्व-प्रधान उद्देश्य अपने-अपने राज्यों पर अजीतसिंह और जयसिंह की पुनः स्थापना करना था । उन्होंने यह भी तय किया कि जिन-जिन मामलों का तीनों राज्यों तथा राजाओं पर समान प्रभाव पड़े, तथा जो-जो बातें उनके राज्य, उनकी प्रजा एवं देश के लिए लाभदायक अथवा अत्यावश्यक प्रतीत हों, उन सब प्रश्नों पर वे सब सम्मिलित होकर ही अपनी नीति तथा अपना कार्यक्रम निश्चित करेंगे ।[2]

---

[1] बहादुर०, पृ० ११०; टाड, १, पृ० ४६५ फ़ुटनोट नं० ३; इरावत, स्काट, ४, पृ० ५८; इर्विन, १, पृ० ६७; वंश०, ४, पृ० ३०००–३००६; वीर०, २, पृ० ७६९-७७४

[2] वीर०, २, पृ० ७६९-७०, ७७२-७४; ७७५-७८; टाड, १, पृ० ४६५, ४६६; २, पृ० १०१४-५; ३, पृ० १३४१; इर्विन, १, पृ० ६७-७१; राजपूताना, २, पृ० ९१४-७

कुछ काल के लिए तो राजपूत जाति में एकता स्थापित हो गई; किन्तु आगे चलकर इस सन्धि के भयङ्कर परिणाम हुए तथा उसका राजपूताने की नीति पर दुष्प्रभाव पड़ा।

प्रारम्भ में तो यह मेल बहुत ही सफल हुआ और जैसा कि उस सन्धि का प्रधान उद्देश्य था, आमेर और मारवाड़ पुनः जयसिंह एवं अजीतसिंह के अधिकार में आगए। उन दोनों के प्रति अब सम्राट् की नीति भी उतनी कठोर न रही, और शाहज़ादा अज़ीमुश्शान के विशेष आग्रह करने पर सम्राट् ने आज्ञा दे दी कि वे दरबार में उपस्थित हो कर सम्राट् के प्रति आत्म-समर्पण करें, और जून ११, सन् १७१० ई० को वे सम्राट् के सम्मुख उपस्थित भी हुए।[1] इसके कुछ ही काल बाद इन तीनों नरेशों ने रामपुरा के मामले में हाथ डालने का तय किया। जिस समय औरङ्गज़ेब की मृत्यु हुई उस समय भी रतनसिंह, जिसने कि इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था, रामपुरा का स्वामी बना बैठा था, और उसका पिता गोपालसिंह इधर-उधर शरण ढूँढ़ रहा था। जब आज़म सेना लेकर उत्तर की ओर चला तब गोपालसिंह उससे आ मिला और जाजव के युद्ध में आज़म की ओर से ही लड़ा।[2] आज़म शाह की पराजय तथा मृत्यु से गोपालसिंह की सब आशाओं

रामपुरा एवं तीनों नरेश

[1] सम्राट् ने महाराणा को चिट्ठी लिखी और इस बात पर बहुत जोर दिया कि किसी न किसी तरह वह, सम्राट् तथा जयसिंह और अजीतसिंह के बीच शान्ति-पूर्वक कुछ समझौता करवा दे। वीर०, २, पृ० ७७३-६; इर्विन, १, पृ० ७१-७३। सितम्बर २६, १७०८ ई० को उन दोनों राजाओं को अपने अपने राज्य दिये जा चुके थे, किन्तु जून १७१० में शाही दरबार में उपस्थित हो कर उन्होंने सम्राट् की अधीनता स्वीकार की।

[2] आज़म०, पृ० १५९, २५२-३

पर पानी फिर गया, किन्तु तीनों नरेशों की ओर से अब महाराणा उसकी मदद करने लगा। महाराणा की सेना ने रामपुरा पर धावा किया, किन्तु रतनसिंह ने उसका सफलता-पूर्वक सामना कर उसे मार भगाया; उसकी इस सफलता के उपलक्ष में सम्राट् ने रतनसिंह को पुरस्कार भी दिया।[1] इसके बाद महाराणा ने गोपालसिंह के लिए फिर प्रयत्न नहीं किया।

सुनेरा का युद्ध; रतनसिंह की पराजय और मृत्यु; सन् १७१२ ई०

इस सफलता से रतनसिंह का साहस बढ़ गया और बहादुर शाह की मृत्यु के बाद जब गृह-युद्ध आरम्भ हुआ तब रतनसिंह ने परिस्थिति से लाभ उठाना चाहा; उसने उज्जैन को हस्तगत कर लिया और अपने राज्य की सीमा बढ़ाने की सोचने लगा। जब मालवा की सूबेदारी पर अमानत ख़ाँ नियुक्त हुआ, तब उसने रतनसिंह को सूचना दी कि वह उज्जैन छोड़ दे, किन्तु रतनसिंह ने सूबेदार के इस कथन पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अमानत ख़ाँ ने रहीमबेग़ नामक एक थानेदार को सारंगपुर पर धावा करने के लिए भेजा, किन्तु रतनसिंह ने उसे हरा कर उसके सैनिकों को मार भगाया। तब तो अमानत ख़ाँ स्वयं युद्ध की तैयारी करने लगा। रतनसिंह ने भी २०,००० सैनिकों की एक बड़ी सेना एकत्रित की; रुहेला दोस्त मुहम्मद ने भी उसी का साथ दिया। सारंगपुर से १० मील दक्षिण-पश्चिम दिशा में स्थित सुनेरा नामक स्थान पर युद्ध हुआ,[2] जिसमें रतन-

[1] अख़बारात, अगस्त २८, १७०९; टाड, १, पृ० ४६६

[2] ख़फ़ी ख़ाँ लिखता है (२, पृ० ६९४) कि, सारंगपुर नाले के पास ही यह युद्ध हुआ था। इस युद्ध के होने के कुछ ही मास बाद, जनवरी ६, सन् १७१३ ई० को डच

सिंह मारा गया। दोस्त मुहम्मद तथा उसके सैनिक भाग खड़े हुए और बाक़ी बची हुई सेना तितर-बितर होगई। अमानत ख़ाँ रामपुरा जा पहुँचा और वहाँ रतनसिंह की विधवाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार करली। अमानत ख़ाँ की इस विजय का हाल सुनकर जहाँदार शाह बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसे "शाहमत ख़ाँ" का ख़िताब दिया।[1]

रामपुरा का पुनः मेवाड़ में सम्मिलित हो जाना; मालवा से उसका सम्बन्ध-विच्छेद; सन् १७१३–१८ ई०

रतनसिंह की मृत्यु से उसके पिता ने लाभ उठाया। गोपालसिंह ने महाराणा की सहायता लेकर रामपुरा पर अधिकार जमा लिया। महाराणा ने रामपुरा परगने का कुछ हिस्सा गोपालसिंह को दिया और बाक़ी अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। अजीतसिंह के साथ न बन सकने के कारण दुर्गादास को मारवाड़ छोड़ना पड़ा था; वह आकर महाराणा के यहाँ नौकरी करने लगा और महाराणा ने रामपुरा के इस ख़ालसा परगने का शासन-प्रबन्ध दुर्गादास को ही सौंप

यात्री केटेलार युद्ध-क्षेत्र के पास से निकला था। उस ने निश्चित रूप से यह लिखा है कि सारंगपुर तथा शाहजहाँपुर के बीच, सड़क पर स्थित सुनेरा गाँव के पास ही यह युद्ध हुआ था। ज० पं० हि० सो०, खण्ड १०, भाग १, पृ० ८७

[1] ख़फ़ी ख़ाँ लिखता है कि कुछ ऐसी अफ़वाहें प्रचलित हैं कि रतनसिंह का यह विद्रोह वज़ीर ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ की ही गुप्त प्रेरणा से हुआ था। अमानत ख़ाँ को मालवा की सूबेदारी पर नियुक्त करते समय सम्राट् ने ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ की सम्मति नहीं ली थी, एवं ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ चाहता था कि किसी भी प्रकार अमानत ख़ाँ को अपमानित होना पड़े। ख़फ़ी०, २, पृ० ६९३-६९७; मा० उ०, २, पृ० १४७–८; ३, पृ० ७३०–१; इर्विन, २, पृ० १३८

दिया।[1] कुछ वर्षों बाद सन् १७१८ ई० में जयसिंह की प्रार्थना पर फ़र्रुख़सियर ने रामपुरा का परगना महाराणा को यथाविधि प्रदान कर दिया।[2] रामपुरा का जो परगना अकबर के समय से मालवा प्रान्त के अन्तर्गत रहा, अब उसीका पुनः इस प्रान्त से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। अगस्त २६, १७१७ ई० को गोपालसिंह एवं उसके पौत्र संग्रामसिंह ने महाराणा के साथ जो समझौता किया, उससे रामपुरा अब एक स्वाधीन, पूर्णाधिकार-प्राप्त राज्य न रह कर, उदयपुर के महाराणा के अधीन तथा उसी को कर देने वाली एक जागीर मात्र बन गया।[3]

मालवा के राजा तथा अजीतसिंह

सन् १७१७ ई० में मालवा के बहुत से राजा, जोधपुर के अजीतसिंह के साथ दिल्ली में उपस्थित हुए; उन में विशेष उल्लेखनीय थे, सीतामऊ का शासक केशवदास, रतलाम का कुँअर मानसिंह, रामपुरा का राव

---

[1] टाड, २, पृ० १०३४; वीर०, २, पृ० ९५७-९६२, ९८९-९०; राजपूताना, २, पृ० ९२६

[2] वीर विनोद (२, पृ० ९८९) के आधार पर ही ओझा लिखते हैं कि अगस्त १७१७ ई० में महाराणा ने जो समझौता दुर्गादास के साथ किया, उससे पहिले ही रामपुरा का परगना शाही फ़रमान द्वारा सम्राट् ने महाराणा को प्रदान कर दिया था (राजपूताना, २, पृ० ९२८, १३७८)। वंशभास्करकार के मतानुसार फ़रमान मई, १७१८ ई० में ही दिया गया (४, पृ० ३०६३–४)। दोनों कथनों में वंशभास्कर का कथन अधिक सत्य प्रतीत होता है। वीर विनोद में इस बात का उल्लेख किया गया है कि जिस फ़रमान द्वारा सम्राट् ने रामपुरा का परगना महाराणा को दिया वह अब भी मेवाड़ के मुहाफ़िज़ ख़ाने में विद्यमान है, किन्तु उस फ़रमान की प्रतिलिपि वीर विनोद में नहीं दी गई। वीर० २, पृ० ९८९

[3] वीर०, २, पृ० ९५७-९

गोपालसिंह चन्द्रावत और खिलचीपुर का राजा किशन।[1] मालवा के इतने शासक शायद दिल्ली में फिर कभी एकत्रित नहीं हुए। किन्तु मारवाड़ के राठौर-घराने का अब मालवा में उतना प्रभाव नहीं रह गया था; अजीतसिंह को गुजरात के मामलों से ही अवसर न मिलता था कि मालवा की ओर ध्यान दे सके। मालवे में तो जयसिंह का ही प्रभाव बहुत था और वह दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा था।

जज़िया का पुनः लगाया जाना; सन् १७१७–१७१९ ई०

इस युग के समाप्त होते-होते उदयपुर की सन्धि का कुछ भी प्रभाव नहीं रह गया। सन् १७१७ ई० में इनायतुल्ला की प्रेरणा से जब जज़िया कर पुनः मुग़ल-साम्राज्य की हिन्दू प्रजा पर लगाया गया तब इन तीन नरेशों का यह गुट भी उसका सफलता-पूर्वक विरोध नहीं कर सका। यह स्पष्ट था कि यह कर अधिक काल तक नहीं लगाया जा सकेगा, किन्तु सन् १७१६ ई० में जब तक रफ़ी-उद्-दाराजात ने अपने प्रथम दरबार में अन्तिम बार यह कर नहीं छोड़ दिया, तब तक यह कर बराबर वसूल होता ही रहा।[2]

५. आधुनिक मालवा का विकास (१७०७-१७१६)

इस युग में भी आधुनिक मालवा तथा यहाँ के वर्तमान राज्यों का विकास मंद तथापि अबाध गति से चलता ही गया। सम्राट् एवं उसके सूबेदारों को दिल्ली के ही षड्यन्त्रों तथा शाही दरबार की हल-चल से ही

[1] टाड, २, पृ० १०२३

[2] इर्विन, १, पृ० २४६, ३३४, ४०४; राजपूताना, २, पृ० ९२४-५; टाड, १, पृ० ४६९; वीर०, २, पृ० ९५४-५

अवसर न मिलता था; अतः प्रान्तीय आन्तरिक शासन की उपेक्षा की गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि पिछले युग की ज़मींदारियाँ एवं जागीरों को उपयुक्त अवसर मिल गया, और वे धीरे-धीरे राजनैतिक सत्ताएँ बन कर स्वाधीन राज्यों में परिणत होने लगीं। पुनः जब राजपूताने के राजपूत राजाओं का महत्त्व बढ़ा तथा जब जयसिंह आदि राजा मालवा के शासन में कुछ हाथ डालने लगे या उन्हें इस प्रान्त में उच्च पद प्राप्त हुए, तब तो मालवा के इन राजपूतों की स्थिति भी अधिकाधिक दृढ़तर होती गई, और उनके लिए यह सम्भव हो गया कि वे अपने शासन को सुदृढ़ बना कर अपने राजनैतिक पद को अधिकाधिक उच्च बना सकें। इस समय दिल्ली में

मालवा के राज्यों का स्वरूप-परिवर्तन

न तो कोई ऐसा शक्तिशाली व्यक्ति ही था और न दूरदर्शी ही, जो इन शासकों की इन प्रवृत्तियों को समझ कर उनको रोक सकता। प्रान्त के निम्नतर अधिकारी या कर्मचारियों का तो लाभ इसी में था कि वे इन राजाओं को ही प्रसन्न रखें और उनकी राह का काँटा न बनें; साम्राज्य के अधिकारों या उसके ठीक-ठीक न्याय-सम्मत पद का समर्थन करने से उन्हें लाभ होना तो दूर रहा, हानि ही पहुँच सकती थी। इस युग में यही महान प्रवृत्ति बढ़ती रही; किसी ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया और समय के साथ ही यह प्रवृत्ति दृढ़तर होती गई। इसके अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक या राजनैतिक महत्त्व की घटनाएँ बहुत ही थोड़ी हैं।

रामपुरा के स्वाधीन राज्य के पतन एवं कोटा-बून्दी द्वन्द्व का विवरण पहिले ही दिया जा चुका है; मालवा पर पुनः होने वाले मरहठों के आक्रमणों का भी उल्लेख पहिले हो गया है। प्रान्तीय इतिहास की आन्तरिक घट-

नावली में केवल तीन बातें ही रह गई हैं, जिनका कुछ विस्तार के साथ वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता है; शिवपुरी या नरवर राज्य की वृद्धि, आधुनिक भोपाल-राज्य का प्रारम्भ तथा रतलाम-राज्य का बँटवारा।

शिवपुरी के कछवाह राजा अनूपसिंह ने जाजव के युद्ध से लाभ उठाया। यद्यपि अनूपसिंह का पुत्र, गजसिंह आज़म की सेना के साथ था,

नरवर-राज्य की वृद्धि

अनूपसिंह बहादुर शाह का ही साथ देता रहा। पहिले की तथा इस युद्ध के समय अनूपसिंह की सेवाओं का विचार कर बहादुर शाह ने उसको शाहबाद और नरवर के परगने दे दिये।[1] सन् १७१० ई० में अनूपसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र, गजसिंह गद्दी पर बैठा। अनूपसिंह तथा उसके बाद गजसिंह ने अपने नए परगनों में अपना शासन स्थापित करने एवं उनपर अपना अधिकार सुदृढ़ बनाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। इन सारे प्रयत्नों में उन्हें उनके सेनापति, खाण्डेराय से बहुत सहायता मिली। जब जयसिंह ने जाटों पर चढ़ाई की तब गजसिंह भी उसके साथ भेजा गया।[2]

जिस समय मालवा की उत्तरी सीमा पर शिवपुरी का हिन्दू-राज्य शक्तिशाली होता जा रहा था, उसी समय मालवा के ही दक्षिणी भाग

दोस्त मुहम्मद ख़ाँ; भोपाल-राज्य का प्रारम्भ

में दोस्त मुहम्मद ख़ाँ रुहेला एक नई मुसलमानी रियासत की नींव डालने का प्रयत्न कर रहा था। दोस्त मुहम्मद ख़ाँ एक साहसी अफ़ग़ान वीर था, औरंगज़ेब के जीवन-काल के अन्तिम दिनों में

[1] खाण्डे०, पृ० १९७-९, ५५१-३

[2] खाण्डे०, पृ० २०२, २९०, ४६८-९; इर्विन, १, पृ० ३२४

अपनी क़िस्मत आज़माने के लिए वह भारत में आया था। कुछ दिनों तक वह जलाल ख़ाँ नामक एक अमीर के यहाँ नौकरी करता रहा, किन्तु शीघ्र ही उसे छोड़ कर वह शाही सेना में भर्ती हो गया, और सेना के उसी दल के साथ वह मालवा में जा पहुँचा। यहाँ उसकी वीरता तथा दुस्साहसी कार्यों के कारण प्रान्तीय अधिकारियों का ध्यान उस की ओर आकृष्ट हुआ। सन् १७१२ ई० में वह रामपुरा के रतनसिंह का पक्ष लेकर अमानत ख़ाँ के विरुद्ध लड़ा। इन दिनों शासकों की उपेक्षा के कारण प्रान्तीय शासन में शिथिलता आ गई थी, शान्ति नहीं रह गई थी, लूट-खसोट बढ़ गई थी। इसी समय बरसिया का परगना किसी अमीर की जागीर में था; दोस्त मुहम्मद ने उससे कह-कहा कर किसी तरह उस परगने का पट्टा लिखवा लिया।[1] तब इस परगने की आमदनी कोई पन्द्रह हज़ार रुपयों की थी। अब तो दोस्त मुहम्मद ख़ाँ को बहुत सहायता मिल गई, और वह धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ा कर आस-पास के इलाक़े को भी अपने अधिकार में लाने लगा। जिस समय मुहम्मद अमीन ख़ाँ मालवा का सूबेदार बन कर आया, उस समय तक दोस्त मुहम्मद ख़ाँ बहुत

---

[1] ख़फ़ी०, २, पृ० ६९४। मालकम (१, पृ० ३४९-५०) ने यह स्पष्ट लिखा है कि दोस्त मुहम्मद ख़ाँ को बरसिया के शासन-प्रबन्ध की देख-भाल करने का कार्य मिला। नवाब शाहजहाँ बेगम कृत "ताज-उल-इक़बाल तारीख़ भोपाल" भी मालकम के कथन का समर्थन करती है (ताज० पृ० २); किन्तु यह बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती है कि किस वर्ष दोस्त मुहम्मद को यह कार्य सौंपा गया। ख़फ़ी ख़ाँ ने उसका उल्लेख करते समय उस का बरसिया से किसी भी प्रकार के सम्बन्ध का उल्लेख नहीं किया जिससे यही ख़याल होता है कि सन् १७१२ के बाद ही उस की यह नियुक्ति की गई होगी।

शक्तिशाली हो गया था, और नए सूबेदार को उससे बहुत कुछ सहायता मिलने की आशा थी ।[1] किन्तु प्रारम्भ से ही दोस्त मुहम्मद ख़ाँ ने सैयदों से मित्रता कर ली थी, और उनके पतन तक वह उनका ही पक्ष लेता रहा । अपनी शक्ति तथा अपना राज्य बढ़ाने के लिए दोस्त मुहम्मद ने भरसक प्रयत्न किया, और भले-बुरे, सब प्रकार के उपायों का आश्रय लिया । सन् १७१६ ई० में वह "भाकरा का ज़मींदार" कहलाता था ।[2]

इस युग के अन्तिम वर्षों में रतलाम-राज्य में गृहयुद्ध से बहुत ख़ून-ख़राबी हुई । छत्रसाल राठौर के पीछे उसके तीन वंशज, एक पौत्र तथा दो पुत्र, रतलाम के अधिकारी हुए । छत्रसाल का ज्येष्ठ पुत्र हठीसिंह पन्हाला के क़िले में मारा गया था, उसीके पुत्र, बैरीसाल को रतलाम में एक तिहाई भाग मिला । बाक़ी दो तिहाई बैरीसाल के काका केसरीसिंह और प्रतापसिंह में बाँट दिया गया था । छत्रसाल ने ही यह तय किया कि तीनों विभाग बराबर-बराबर होंगे और तीनों का सम्मान आदि भी समान ही होगा । बँटवारा

---

[1] दस्तूर-उल्-इन्शा, पृ० ५३ (ईर्विन १, पृ० ३६१—फ़ुटनोट से उद्धृत उल्लेख)। रुस्तम अली की "तारीख़-इ-हिन्दी" की एक-मात्र प्राप्य प्रतिलिपि (ब्रिटिश म्युज़ियम, ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट नं० १६२८) के पृ० ५५७ की दूसरी पंक्ति में कुछ शब्द छूट गए हैं जिससे वहाँ अर्थ-बिगड़ता है, किन्तु यह बात अवश्य जान पड़ती है कि सन् १७१७–८ (हिजरी सन् ११३०) तक दोस्त मुहम्मद ख़ाँ ने एक छोटी-मोटी जमींदारी की स्थापना कर ली थी। यही जमींदारी आगे चल कर भोपाल-राज्य में परिणत हो गई।

[2] ईर्विन, २, पृ० २८; बुरहान-उल्-फ़ुतूहात, पृ० १६८ अ; मालकम, १, पृ० ३५१-३५२; ताज०, पृ० २-५

"भाकरा" नामक स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं लगा; सम्भव है कि बरसिया को ही ग़लती से "भाकरा" लिख दिया हो।

बहुत ही जटिल, और उलझनों से पूर्ण था। बैरीसाल की एक बहिन का विवाह आमेर के राजा जयसिंह के साथ हुआ था, अतएव छत्रसाल की मृत्यु के कुछ ही वर्षों के बाद बैरीसाल मालवा छोड़कर अपनी बहिन के पास आमेर चला गया। अब तो बैरीसाल के दोनों काका, बैरीसाल के विभाग के लिए झगड़ने लगे। दोनों में केसरी सिंह बड़ा था, वही अपने भतीजे के विभाग को दबा बैठा; किन्तु छोटा भाई, प्रतापसिंह, बैरीसाल के विभाग में अपना हिस्सा क्योंकर छोड़ता; उसने केसरी सिंह को मार डाला, और स्वयं तीनों विभागों को अपने अधिकार में कर बैठा (१७१७ ई०)। केसरीसिंह का बड़ा लड़का, मानसिंह इस समय देहली में शाही दरबार में था। छोटा पुत्र, जयसिंह रतलाम में ही था; एवं जब प्रतापसिंह ने रतलाम पर अधिकार कर लिया, तब तो जयसिंह वहाँ से भागा, अपनी मदद के लिए माण्डू से शाही सेना लाया, लालगढ़, (उज्जैन के पास स्थित) नरवर आदि ज़मींदारों को भी, जो उसके सम्बन्धी ही थे, एकत्रित किया, और इन सब को लेकर उसने रतलाम पर चढ़ाई की। जयसिंह ने अपने बड़े भाई की सूचना के लिए दिल्ली भी सारा वृत्तान्त लिख भेजा। प्रतापसिंह ने रतलाम छोड़कर सागोद नामक छोटी सी गढ़ी में जाकर शरण ली, और जयसिंह तथा उसके सहायकों ने उस गढ़ी का घेरा डाला। एक दिन सुबह होने के पहले ही प्रतापसिंह ने गढ़ी में से निकल भागने का प्रयत्न किया, किन्तु ज्यों ही उसके शत्रुओं को इस बात का पता लगा उन्होंने आ घेरा, छोटी सी लड़ाई हुई, जिसमें प्रतापसिंह घायल हुआ और बाद में मारा गया। अब विजयी सेना के साथ

रतलाम में गृह-युद्ध; सैलाना की स्थापना, १७१८ ई०

जयसिंह ने रतलाम में प्रवेश किया। मानसिंह भी दिल्ली से लौट आया और साथ में सहायतार्थ आमेर से सेना भी लेता आया, किन्तु इस सेना की अब आवश्यकता न रही। मानसिंह का स्वागत करने को जयसिंह बढ़ा और दोनों भाई रतलाम को लौट आये। जयसिंह को प्रतापसिंह का विभाग मिला और इस प्रकार सन् १७१८-६ ई० में सैलाना राज्य की नींव पड़ी।[1]

प्रान्त एवं प्रान्तवासियों की दशा

इस युग में प्रान्त की दशा में कुछ भी सुधार नहीं हुआ। केटेलार के जरनल में सन् १७१२-१७१३ में इस प्रान्त की दशा का पूरा-पूरा विवरण मिलता है[2], जिसको पढ़ कर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस युग की प्रवृत्ति ही ऐसी थी कि किसी भी प्रकार का सुधार होना असम्भव था।

---

[1] सैलाना और रतलाम राज्यों के गजेटियरों में इस घटना का विशद् विवरण नहीं मिलता है। सैलाना स्टेट की "सावेनियर हिस्ट्री" में सैलाना राज्य के दृष्टि-कोण से ही इस घटना का उल्लेख किया गया है। इन के अतिरिक्त कोई दूसरे आधार-ग्रन्थ या पुराने काग़ज़ आदि देखने को नहीं मिलते हैं। उपर्युक्त दोनों राज्यों में इस बात पर मतभेद है कि जयसिंह को प्रतापसिंह का हिस्सा किस हैसियत से मिला। प्रारम्भ में जो हिस्से छत्रसाल ने किये और उन में से जो हिस्सा प्रतापसिंह को मिला था, प्रतापसिंह का दत्तक पुत्र बन कर जयसिंह उस विभाग का शासक बना, या दिल्ली से लौटने पर मानसिंह ने जो संयुक्त राज्य पाया उसी में से एक हिस्सा निकाल कर मानसिंह ने जयसिंह को नए सिरे से दिया, इस प्रश्न पर कोई बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती है। इन दोनों भाइयों के इस बँटवारे के फल-स्वरूप अब तक दोनों राज्यों में अनेकानेक झगड़े चलते रहे हैं।

[2] ज० पं० हि० सो०, खण्ड, १, भाग ४, पृ० ७७-९२

अराजकता के अनेकानेक नए कारण उपस्थित हो रहे थे; कई विद्रोहों के उठ खड़े होने के चिन्ह भी देख पड़ रहे थे। किसानों की दरिद्रता निरन्तर बढ़ती जा रही थी और इसी दरिद्रता के मारे वे विद्रोह कर बैठते थे। यह विद्रोही किसान आगरा और सिरोंज के बीच में सड़कों पर जो यात्री निकलते थे, उन्हें बहुत सताते थे और उनसे रुपया वसूल करते थे। रास्ते निर्विघ्न न रहे, लूट-मार बहुत होती थी। विभिन्न राज्यों या ज़मींदारों में युद्ध होना एक साधारण बात हो गई थी, और इस प्रकार के निजी युद्धों से यह प्रदेश बहुत ही निर्जन होने लगा था। झाबुआ के समान ही जिस किसी राज्य का शासक निर्बल होता था, आस-पास के पड़ोसी राजा उसके राज्य को हड़प जाने या उस राज्य के बहुत कुछ हिस्से को दबा लेने पर उतारू रहते थे।[1] झाबुआ का राजकुमार बहुत ही उद्दण्ड था और वह अपने पिता की आज्ञा न मानता था। कई बार राह में पड़ने वाले इन राज्यों के शासक यात्रियों से उनके सामान पर कर वसूल कर लेते थे[2]। किन्तु जहाँ कहीं दृढ़ शासक होता था, वहाँ की परिस्थिति दूसरी ही होती थी। राजा भीमसिंह के शासनकाल में कोटा की हालत बहुत सुधर गई; उसने भील तथा अन्य विद्रोहियों को दृढ़ता-पूर्वक दबा दिया और इस कार्य में राजगढ़ तथा नरसिंहगढ़ के उमट राजाओं ने भी उसका साथ दिया। उनकी सहायता के बदले में कोटा के राजा को इन राजाओं के व्यय आदि का भार उठाना पड़ा।[3] जिन प्रदेशों में न तो

[1] झाबुआ गजे० पृ० ३

[2] ज० पं० हि० सो०, खण्ड १०, भाग १, पृ० ९०

[3] टाड, ३, पृ० १५२४-२५

बड़े-बड़े शहर ही थे या जो प्रधान रास्तों से दूर थे, वहाँ तो निर्बल शासन के फल-स्वरूप बहुत कुछ अशान्ति बनी रही और दोस्त मुहम्मद जैसे व्यक्तियों को अवसर मिल गया कि लूट-मार कर तथा अपनी चतुरता और वीरता से अपना अलग राज्य स्थापित कर सकें।[१] ऐसे मामलों में शाही दरबार में होने वाले षड्यन्त्रों, निरन्तर आने वाले राजनैतिक परिवर्तनों तथा प्रान्तीय शासन की ओर की जाने वाली उपेक्षा का बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। परन्तु इतना सब होते हुए भी इस युग में साम्राज्य का शासन तथा उसकी सत्ता बनी रही; अब भी प्रजा के हृदय में सम्राट् के प्रति कुछ आदर शेष था;[२] किन्तु आगामी युग में इसका भी अन्त हो जाने वाला था। आन्तरिक विद्रोह, बाह्य आक्रमण तथा साम्राज्य की उपेक्षा के फलस्वरूप अराजकता बढ़ती गई और अन्त में साम्राज्य का प्रान्तीय शासन-संगठन छिन्न-भिन्न हो गया।

---

[१] रुस्तम०, पृ० ५५५; मालकम, २, ३५०-३५३; ताज०, पृ० २–६; खाण्डे०, पृ० २२२–२६६, २९१-५

[२] प्रतापगढ़–देवलिया राज्य के गजेटियर में एक विचित्र अधिकार का उल्लेख किया गया है (मेवाड़ एजन्सी गजे०, पृ० १९८)। राज्य की स्थानीय दन्त-कथाओं या ख्यातों के आधार पर उस में यह लिखा है कि प्रतापगढ़ के रावत पृथ्वी सिंह (१७०८-१७ ई०) से सम्राट् शाह आलम बहादुर शाह दिल्ली में मिला और सम्राट् ने पृथ्वीसिंह को अपना सिक्का चलाने का अधिकार दिया। इस की पुष्टि के लिए दूसरा कोई विश्वसनीय ऐतिहासिक आधार नहीं मिलता है। ऊपरी दृष्टि से भी यह कहा जा सकता है कि साम्राज्य के अधीन किसी भी राज्य को ऐसा अधिकार मिलना एक असम्भव बात थी। एवं केवल स्थानीय ख्यातों के आधार पर ही गजेटियर के उस कथन को स्वीकार कर लेना किसी भी इतिहासकार के लिए एक कठिन बात हो जाती है।

चौथा अध्याय

मुग़ल-मरहठा द्वन्द — प्रारम्भ (१७१९-१७३०)

१. मालवा में स्थापना के लिए मरहठों के प्रयत्न

सन् १७१९ ई० से मालवा के इतिहास में जो युग प्रारम्भ होता है वह पूर्णतया विभिन्न एवं राजनैतिक दृष्टि से बहुत ही जटिल है। दो विरोधी सत्ताएँ, मुग़ल और मरहठे, अब भिड़ जाती हैं। कुछ प्रारम्भिक आक्रमण तथा चढ़ाइयों के बाद सन् १७३० ई० तक मरहठों की सत्ता एक प्रकार से मालवा में अपना आधिपत्य स्थापित कर लेती है और प्रायः सारा दक्षिणी मालवा उनके अधिकार में चला जाता है। जब मरहठों का सामना करने के लिए मुहम्मद बंगश को मालवा की सूबेदारी पर नियुक्त किया, तब तो यह द्वन्द अधिकाधिक प्रचण्ड हो उठा; इस प्रकार सन् १७३० ई० में इस द्वन्द का दूसरा और अन्तिम युग प्रारम्भ होता है। सन् १७४१ ई० में मालवा सर्वदा के लिए मुगलों के अधिकार से चला गया; मरहठों का उसपर पूर्ण आधिपत्य हो गया, और उसके साथ ही इस द्वन्द का भी अन्त हो गया।

इस द्वन्द में मरहठों और मुग़लों के अतिरिक्त अनेकानेक अन्य कारण भी उपस्थित हो गए थे जिनसे इस द्वन्द में कई उलझनें पैदा हो गईं। जब यह युग प्रारम्भ होता है उस समय निज़ाम मालवा का सूबेदार नियुक्त किया जाता है; यही निज़ाम आगे चलकर चिरकाल के लिए

दक्षिण का अर्ध-स्वतन्त्र सूबेदार बन बैठता है, और वहाँ अपने घराने की स्थापना करने में उसे पूर्ण सफलता मिलती है। निज़ाम के लिए भारत के उन दक्षिणी सूबों में अपना आधिपत्य बनाए रखना ही एक मात्र महत्त्वपूर्ण बात थी, इसके सामने समस्त मुग़ल साम्राज्य के प्रधानमन्त्रित्व का भी निज़ाम की दृष्टि में कुछ महत्त्व न था। तथापि मालवा प्रान्त की राजनीति में उसे सर्वदा दिलचस्पी बनी रही। वह जानता था कि उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के मध्य में स्थित, उन दोनों को सम्बद्ध करने वाले इस प्रान्त का राजनैतिक एवं युद्ध-विद्या की दृष्टि से महत्त्व बहुत है। इसके अतिरिक्त वह चाहता था कि चतुर राजनीति द्वारा मरहठों का ध्यान मालवा प्रान्त की ओर आकृष्ट किया जावे कि वे उसकी बग़ल में काँटा बन कर न रह सकें; तब उनकी सारी शक्ति तथा उनका सारा ख़याल उधर ही लग जावेगा। मालवा प्रान्त एक समृद्ध सूबा रहा था, एवं इस युग के प्रारम्भिक वर्षों में आर्थिक कारणों से भी अनेकानेक अमीर उस सूबे की सूबेदारी पाने को लालायित रहते थे।

उधर जब जब दक्षिण में मरहठों का शाही अधिकारियों से कुछ भी झगड़ा हुआ, तब तब उन्होंने मालवा पर आक्रमण करने की अपनी पुरानी नीति ग्रहण की। दक्षिण में भी एक नया प्रश्न उठा; निज़ाम ने अपना आधिपत्य स्थापित कर दक्षिण में एक अर्ध-स्वतन्त्र राज्य की नींव डाली; और उधर उसके पिता की मृत्यु पर बाजीराव को पेशवा का पद मिला; अब बाजीराव और निज़ाम दोनों में जो प्रतिद्वन्दिता प्रारम्भ हुई वह आगामी बीस वर्षों तक निरन्तर चलती ही रही। पेशवा ने मुग़ल-साम्राज्य के विरुद्ध आक्रमणशील नीति को ग्रहण किया और अपने क्षेत्र

में मालवा को भी सम्मिलित कर लिया; निज़ाम से यदा-कदा हो जाने वाले झगड़ों और तत्फल-स्वरूप दक्षिण में होने वाले युद्धों से ही कभी-कभी पेशवा की इस नीति में कुछ शिथिलता आ जाती थी, वर्ना ये आक्रमण अबाध गति से होते गए।

मालवा की प्रान्तीय राजनीति में आमेर के सवाई जयसिंह का व्यक्तित्व भी एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण वस्तु थी। वह एक बहुत ही महत्त्वाकांक्षी नरेश था; साम्राज्य के पतन से लाभ उठा कर, यमुना से नर्मदा तक के सारे देश को अपने राज्य के अन्तर्गत सम्मिलित करना ही उसका एक मात्र उद्देश था। वह मरहठों का मित्र था, और देहली में सम्राट्, उसके मन्त्री, सलाहकार एवं अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों की गुप्त मन्त्रणाओं का भी पूरा पूरा विवरण वह मरहठों को बता देता था। अनेकानेक महत्त्वपूर्ण बातों में वह मरहठों को सलाह भी देता था। उसका ख़याल था कि यदि मरहठे मालवा के सूबेदारों को चैन लेने न दें तो उनके साथ अपनी इस मित्रता से लाभ उठा कर वह अपना उद्देश्य पूरा कर सकेगा। वह सोचता था कि यदि मालवा में उपद्रव बढ़ जावें, कठिनाइयों का अन्त न हो सके तब वह सम्राट् से कह सुनकर मालवा प्रान्त को अपने अधिकार में कर सकेगा, और बाद में या तो अपने घनिष्ट सम्बन्ध के आधार पर मरहठों को मालवा में उपद्रव न करने देगा, या यदि आवश्यक प्रतीत हुआ तो मुँह माँगा द्रव्य देकर उनको सन्तुष्ट कर देगा कि मालवा में घुस कर वे गड़बड़ न मचावें। अपने पड़ोसी राज्यों पर भी अपना प्रभाव तथा आधिपत्य बढ़ा कर अपनी सत्ता बढ़ाने में वह प्रयत्नशील हो रहा था। राजपूत राज्यों में जयसिंह ही एक मात्र प्रभावशाली, बलवान एवं

सुसंस्कृत नरेश था; मालवा के स्थानीय राजा और ज़मींदार भी उसके मतानुसार चलते थे; और जयसिंह प्रायः वही राय देता था जिससे उसके निजी मतलब की सिद्धि हो तथा उसकी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति में भी किसी न किसी प्रकार सहायता मिल सके।

उपर्युक्त राजपूत ज़मींदारों के अतिरिक्त अन्य दूसरे भी कई व्यक्तियों को मालवा में ज़मींदारियाँ या जागीरें दी हुई थीं, किन्तु प्रायः अपनी ज़मींदारी या जागीर से लगान वसूल कर रुपया पाने के सिवाय उनका उसके साथ कोई भी विशेष सम्बन्ध नहीं रहता था; उन्हें अवसर ही न मिलता था, और वे स्वयं भी वहाँ जाने को उत्सुक न रहते थे। इन जागीरदारों आदि के जो कोई भी कार्यकर्ता प्रान्त में रहते थे, उन्हीं के भरोसे पर सारा काम चलता था। जब कभी भी प्रान्तीय सूबेदार या अन्य कोई अधिकारी इन कार्यकर्ताओं से कुछ भी छेड़छाड़ करता, या यहाँ उन कार्यकर्ताओं के साथ किसी भी प्रकार की सख़्ती होती तो वे कार्यकर्ता सीधे अपने स्वामी को लिख भेजते, और यदि उस ज़मींदार का शाही दरबार में कुछ भी प्रभाव होता तो वह यही प्रयत्न करता कि उसकी जागीर में हाथ डालने वाले सूबेदार को किसी भी प्रकार पदच्युत करवा दे। पुनः इन ज़मींदारों या जागीरदारों के वे कार्यकर्ता सर्वदा वही नीति अंगीकार करते थे जिससे कोई झगड़ा न हो तथा अन्त में आर्थिक दृष्टि से कुछ न कुछ लाभ अवश्य हो। एवं वे मरहठों से मित्रता कर अपने अधिकार की ज़मींदारी को बरबादी से बचाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करते थे। इस प्रकार अनेकानेक विद्रोहियों तथा आक्रमणकारियों को छुप रहने के लिए या आश्रय के लिए इन ज़मींदारियों में स्थान मिल जाता था।

अन्तिम विचारणीय एवं महत्त्वपूर्ण बात साम्राज्य की आन्तरिक दशा थी; अन्तिम होते हुए भी यह किसी भी प्रकार कम महत्त्व की न थी। जब-जब सम्राट् ने किसी ऐसे व्यक्ति को मालवा का सूबेदार बना कर भेजा, जिसका यहाँ की प्रान्तीय राजनीति के साथ किसी भी प्रकार का निजी लाभ आदि का सम्बन्ध था, तब-तब उस सूबेदार ने साम्राज्य के हिताहित या लाभालाभ का कुछ भी विचार न कर अपना ही मतलब साधा। अगर कभी गिरधर बहादुर के समान ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति हुई, जो प्रान्तीय राजनीति से पूर्णतया उदासीन था, तब उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था; प्रान्त में कोई भी व्यक्ति न तो उसकी सहायता ही करने को तैयार होता था, और न कोई उसके साथ सहयोग ही करता था; और सम्राट् से किंचित् मात्र भी सहायता की आशा रखना व्यर्थ ही था। कई बार सैनिकों तथा द्रव्य भेजकर सूबेदार की सहायता करने के वादे किए जाते थे किन्तु ये वादे कभी भी पूरे नहीं होते थे। एवं यह स्वाभाविक ही था कि साम्राज्य के हिताहित की किसी को भी परवाह न थी।

२. निज़ाम की पहली सूबेदारी

(फ़रवरी २०, सन् १७१९ ई०—अगस्त २९, १७२२ ई०)

रफ़ी-उद्-दाराजात को गद्दी पर बैठाने के बाद ही सारे शासन को पुनः संगठित करने की बात सैयदों को सूझी। मालवा और क़ाबुल की ओर अब भी उनका ध्यान आकर्षित हो रहा था। पिछले साल मुहम्मद अमीन ख़ाँ के मालवा से लौटने तथा पदच्युत किए जाने के बाद अब तक

मालवा की सूबेदारी पर किसी की भी नियुक्ति नहीं हुई थी। निज़ाम तब भी दिल्ली में ही था। जनवरी २८, सन् १७१९ ई० को पटना की सूबेदारी निज़ाम को दी गई थी, किन्तु यह सूबेदारी उसे स्वीकार न थी।[1] सैयदों को निज़ाम की ओर से सर्वदा अनिष्ट की आशंका बनी रहती थी, एवं हुसैन अली ने प्रस्ताव किया कि निज़ाम को मार डाला जावे। किन्तु क़ुतुब्-उल्-मुल्क का ख़याल था कि यदि उसे अपने मित्रों से अलग कर दिया जावेगा तो उसकी शक्ति अवश्य ही घट जावेगी और उससे अनिष्ट की आशंका न रहेगी, अतएव उसने निज़ाम को मालवा की सूबेदारी देने का प्रस्ताव किया।

निज़ाम को मालवा का चिरस्थायी सूबेदार बनाना

पहिले तो निज़ाम यह सूबेदारी भी स्वीकार करने को राज़ी न हुआ, किन्तु जब सैयदों ने शपथ-सौगन्दों के साथ यह वादा किया कि इस सूबेदारी से उसे कभी भी अलग न किया जावेगा तब जाकर कहीं निज़ाम ने उस पद को स्वीकार किया। नए सम्राट् के राज्यारूढ़ होने के तीन दिन बाद (फ़रवरी २०, सन् १७१९ ई०) निज़ाम को इस सूबेदारी की ख़िलअत मिली और मालवा चले जाने की आज्ञा भी उसे दे दी गई।[2]

---

[1] इर्विन, १, पृ० ३७१, ४०४-५; ख़फ़ी०, २, पृ० ७९२; कामवर, पृ० १८८; मिर्ज़ा मुहम्मद, पृ० ४४६

[2] इर्विन, १, पृ० ४०५; कामवर, पृ० १८८; शिव०, पृ० २७ अ; अहवाल०, पृ० १५२ अ; ख़फ़ी०, २, पृ० ८१७-९, ८४७-८४८। ख़फ़ीख़ाँ के ग्रन्थ का अनुवाद करते करते ईलियट ने लिखा है (७, पृ० ४८०) कि—"पटना की सूबेदारी निज़ाम-उल्-मुल्क को दी गई," किन्तु यह अनुवाद ग़लत है; ठीक-ठीक अनुवाद यों होगा कि "पटना की सूबेदारी के स्थान पर मालवा का सूबा, निज़ाम-उल्-मूल्क को दिया गया"। (ख़फ़ी०, २, पृ० ८१७)

निज़ाम मार्च ५ को दिल्ली से रवाना हुआ; अपना सारा माल-मत्ता तथा अपने कुटुम्ब को भी वह अपने साथ लेता गया; बहुत आग्रह करने पर भी उसने अपनी ओर से अपने पुत्र को शाही दरबार में नहीं छोड़ा। जितने भी मुग़ल इस समय दिल्ली में बेकार थे वे सब निज़ाम के साथ हो गये। इस समय निज़ाम के बारे में अनेकानेक प्रकार की अफ़-वाहें दिल्ली में प्रचलित थीं। कई कहते थे कि आमेर के राजा जयसिंह और इलाहाबाद के छबीलेराम नागर के साथ मिल कर निज़ाम सैयदों का विरोध करेगा। नेकूसियर को सिंहासन पर बैठाने वालों में प्रधान व्यक्ति, मित्रसेन, आगरा में निज़ाम से मिला, किन्तु उसे कोई निश्चित उत्तर दिये बिना ही निज़ाम मालवा की ओर चल पड़ा। कुछ दिनों बाद जब पुनः छबीलेराम और मित्रसेन दोनों ने निज़ाम से सहायता चाही तब भी निज़ाम ने उन्हें कुछ भी आशाजनक उत्तर नहीं दिया। किन्तु बहुत काल बाद जब हुसैन अली के हाथ में निज़ाम के कुछ पत्र पड़ गए, तब जाकर कहीं सैयदों को इस बात का विश्वास हुआ कि नेकूसियर को तख़्त पर आरूढ़ करने के प्रयत्न में निज़ाम का कोई भी हाथ नहीं था।[1]

---

[1] इर्विन, १, पृ० ४०८, ४१०-४१४; २, पृ० २, १७। टाड ने (१, पृ० ४७५) बिहारी दास के नाम लिखा हुआ जयसिंह का एक पत्र भादों, शुक्ला चतुर्थी, सं० १७-७६ वि० (अगस्त ८, १७१९ ई०) का उद्धृत किया है; उसमें जयसिंह ने लिखा है कि उसके साथ सहयोग करने को निज़ाम उज्जैन से रवाना होकर बड़ी तेज़ीसे चला आ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह जयसिंह की बनाई हुई बात ही थी। ख़फ़ीख़ाँ स्पष्ट शब्दों में लिखता है कि--"निज़ाम ने तो नेकूसियर के विद्रोह में बाधा डालने का भी प्रयत्न किया था"।

ख़फ़ी०, २, पृ० ८२७-८, ८३२

रोगी एवं अशक्त सम्राट् रफ़ी-उद्-दाराजात के बाद उसीके समान निर्बल तथा अयोग्य, उसीका बड़ा भाई, रफ़ी-उद्-दौला दिल्ली के तख़्त पर बैठा। दोनों का शासनकाल सितम्बर ८, सन् १७१६ ई० तक समाप्त हो गया; कोई दस दिन बाद सितम्बर १८, सन् १७१६ ई० को शाहज़ादा अख़्तर, सम्राट् मुहम्मद शाह के नाम से गद्दी पर आरूढ़ हुआ और सन् १७४८ ई० तक शासन करता रहा। मुहम्मद शाह के शासन-काल के प्रारम्भ में भी सैयदों का ही आधिपत्य बना रहा। इस समय तो उसके पूर्व के दोनों सम्राटों के समान मुहम्मद शाह भी सैयदों के हाथ की कठपुतली ही था।

मालवा में निज़ाम, १७१९-२० ई०

निज़ाम जब उज्जैन पहुँचा तब मई महीना (सन् १७१६ ई०) आधा बीत चुका था; जिस दिन वह वहाँ पहुँचा उसी रात को उज्जैन में बहुत वृष्टि हुई। निज़ाम ने बरसात का मौसिम उज्जैन में ही बिताया। उसे स्पष्ट जान पड़ रहा था कि उसकी नियुक्ति के दिन से ही सैयदों के साथ उसका झगड़ा प्रारम्भ हो गया था। जब हुसैन अली दिल्ली जा रहा था उस समय उससे न मिलने के कारण वह माण्डू के क़िलेदार, मरहमत ख़ाँ से अप्रसन्न हो गया था; अमीर ख़ाँ का यह लड़का इस समय भी माण्डू का फ़ौजदार था।

मरहमत ख़ाँ का मामला

सम्राट् रफ़ी-उद्-दाराजात के राज्यारूढ़ होने के समय जब अनेकानेक नई नियुक्तियाँ हुईं उस समय सैयदों ने मरहमत ख़ाँ को माण्डू की फ़ौजदारी से च्युत करके उसके स्थान पर ख़्वाजा क़ुली ख़ाँ को नियुक्त किया। एवं जब यह नया फ़ौजदार, ख़्वाजा, माण्डू गया तो मरहमत ख़ाँ

ने उसे क़िला सौंपने से इन्कार कर दिया और ख्वाजा का सामना करने को उतारू हो गया। किन्तु बाद में निज़ाम के एक विश्वस्त सेनापति, ग्यास ख़ाँ के कहने सुनने पर मरहमत ख़ाँ ने क़िला सौंप दिया। निज़ाम ने मरहमत ख़ाँ को अपने पास रख लिया, और मरहमत ख़ाँ को क्षमा प्रदान करने के लिए निज़ाम ने वज़ीर से प्रार्थना की, किन्तु यह प्रार्थना मंज़ूर न हुई।[1]

अमझरा का मामला

माण्डू पर अधिकार पाते ही ख्वाजा क़ुली ख़ाँ ने अमझरा के ज़मींदार, जयरूपसिंह को माण्डू बुलाया, और जयरूप के छोटे भाई, जगरूपसिंह, की प्रेरणा से ख्वाजा ने जयरूप को धोखा देकर क़िले में ही क़ैद कर दिया। जगरूप अब अमझरा पर आधिपत्य जमा बैठा। जयरूप का नाबालिग़ लड़का, लालसिंह अपनी जान लेकर अमझरा से भागा और सीधा निज़ाम के पास जा पहुँचा। निज़ाम ने जगरूप को दण्ड देने के लिए ग्यास ख़ाँ के सेनापतित्व में एक सेना अमझरा भेजी और कुछ काल बाद स्वयं भी अमझरा गया। जगरूप को निकल भागने का अवसर न मिला, वह पकड़ कर क़ैद कर लिया गया।[2]

बून्दी के पदच्युत राजा बुधसिंह की प्रेरणा से छत्रसाल बुन्देला पुनः उद्योगशील हुआ। छत्रसाल के पुत्र, जयचन्द बुन्देला ने[3] दक्षिणी मालवा

---

[1] इर्विन, १, पृ० ४०५; २, पृ० १७-८, १९; अहवाल; ख़फ़ी०, २, पृ० ८००, ८१८-९

[2] ख़फ़ी०, २, पृ० ८४९-५०

[3] इर्विन ने "जय चन्द" लिखा है; ख़फ़ी ख़ाँ ने "ग्यान चन्द" लिखा है। छत्रसाल बुन्देला के पुत्रों के नामों में केवल "राय चन्द" ही एक ऐसा नाम है,

में सिरोंज एवं भिल्सा के पास रामगढ़ नामक क़िले को हस्तगत कर लिया। शाही फ़रमान आने पर निज़ाम ने उस क़िले को बुन्देलों के पास से पुनः जीत लेने का काम मरहमत ख़ाँ को सौंपा और एक बहुत बड़ी सेना उसके साथ भेज दी। भिल्सा और सिरोंज पहुँचने पर मरहमत ख़ाँ ने बहुत से अफ़ग़ानों और रुहेलों को भी एकत्रित कर लिया तथा उनकी सहायता से उस क़िले को हस्तगत कर लिया। जब मरहमत ख़ाँ की इस सफलता की ख़बर सैयदों के पास पहुँची तब तो वे और भी अधिक चिढ़ गए।[1]

बुन्देला को पीछे हटाना, नवम्बर-दिसम्बर, १७१९ ई०

इसी समय मालवा की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर अशान्ति के बादल उमड़ रहे थे। कोटा-बून्दी द्वन्द्व अब भी समाप्त नहीं हुआ था। जिस समय सैयद फ़र्रुख़सियर को गद्दी से उतारने वाले थे उस समय भी बुधसिंह फ़र्रुख़सियर का ही समर्थक बना रहा, और विरोधी सेना से लड़ता हुआ ही वह दिल्ली से रवाना हो पाया। जयसिंह आमेर पहुँच गया था और बुधसिंह भी उसके साथ जा मिला। कोटा के भीमसिंह ने सैयदों का ही साथ दिया था, एवं उन्होंने उसकी सहायता तथा आज्ञाकारिता के फल-स्वरूप उसे बून्दी का भी राज्य देने का वादा किया था। उधर बुधसिंह बैठा इलाहाबाद के विद्रोही सूबेदार, गिरधर बहादुर के साथ गुप्त मन्त्रणा एवं षड्यन्त्र कर रहा था; और वह बुन्देलों को भी उत्तेजित कर रहा था कि

जिसमें उपर्युक्त नामों से कुछ भी समता पाई जाती है। इर्विन, २, पृ० १८; ख़फ़ी०, २, पृ० ८५०; नागरी प्रचारणी पत्रिका, खण्ड १७, पृ० १३५

[1] इर्विन, २, पृ० ८, १०, १८; ख़फ़ी०, २, पृ० ८५०

वे सैयदों तथा साम्राज्य का विरोध करें। नवम्बर ७, १७१६ ई० के दिन सैयदों ने भीमसिंह को दिल्ली से कोटा के लिए रवाना किया। रवाना होने से पहिले भीमसिंह की सिफ़ारिश पर दोस्त मुहम्मद ख़ाँ रुहेला को भी (जिसने बाद में भोपाल राज्य की नींव डाली) सैयदों ने बहुत बड़ा मन्सब दिया। दोस्त मुहम्मद की निज़ाम से बनती न थी, एवं यह आशा की जाती थी कि निज़ाम का विरोध करने में वह भी सैयदों की मदद करेगा। दोस्त मुहम्मद को भीमसिंह की अधीनता में नियुक्त किया; सैयद दिलावर अली ख़ाँ और नरवर के गजसिंह को आज्ञा हुई कि वे भी भीमसिंह के साथ जाएँ।[1] कोटा जाते हुए जब भीमसिंह मथुरा और गोकुल पहुँचा तब वह वल्लभाचारी मत का अनुयायी हो गया और वहीं एक पक्ष तक उसने एकान्त-वास भी किया। अफ़वाहें उड़ने लगीं कि भीमसिंह की मृत्यु हो गई। बुधसिंह इस समय भी आमेर ही था; बूंदी में राज्य का कार्य-भार सालिमसिंह हाड़ा के हाथ में था। भीमसिंह की मृत्यु की ख़बर सुनकर सालिमसिंह ने इस कठिन परिस्थिति से लाभ उठाने का निश्चय किया; वह कोटा के राज्य में लूट-मार करने लगा। अब तो भीमसिंह एकान्त-वास छोड़ कर कोटा की ओर रवाना हुआ; कोटा पहुँचने पर सालिमसिंह और भीमसिंह की सेना में घोर युद्ध हुआ, जिसमें सालिमसिंह की हार हुई। कुछ काल के बाद, मार्च २, सन् १७२० ई० को भीमसिंह ने हमला कर बूंदी को अपने अधिकार में कर लिया।[2]

बून्दी-कोटा द्वन्द; १७१९-१७२० ई०

---

[1] इर्विन, २, पृ० ५-६; ख़ाफ़ी०, २, पृ० ८४४, ८५१

[2] कोटा और बून्दी की सेनाओं के युद्ध की सूचना फ़रवरी २, सन् १७२० ई०

सैयदों ने भीमसिंह और दिलावर अली ख़ाँ को आज्ञा दी थी कि वे मालवा की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर तैयार रहें। उन्होंने वादा किया था कि यदि भीमसिंह मालवा में निज़ाम का सफलता पूर्वक सामना कर सका तो वे उसे "महाराजा" का ख़िताब, दरबार में जोधपुर के राजा अजीतसिंह के बाद बैठक, सात-हजारी मन्सब, तथा माही मरातिब प्रदान करेंगे। अपने अन्य सब विरोधियों को सफलता पूर्वक दबा कर अब सैयदों ने निज़ाम के साथ निपटने की सोची। उसपर हमला करने तथा उसको दबाने के लिए पूरे-पूरे प्रबन्ध हो चुके थे। इधर निज़ाम भी अनेकानेक छोटी-मोटी बातों से अधिकाधिक चिढ़ गया था। सैयदों ने यह भी सुना था कि निज़ाम ने सेना तथा युद्ध-सामग्री इतनी एकत्रित कर ली थी, जो प्रान्तीय आवश्यकताओं पर विचार करने से बहुत ही अधिक थी।

निज़ाम और सैयद; फ़रवरी-अप्रेल, सन् १७२० ई०

हुसैन अली ने निज़ाम के दिल्ली में रहने वाले वकील के द्वारा निज़ाम से उन सब बातों की कैफ़ियत पूछी, जिनके बारे में सैयदों को निज़ाम के विरुद्ध बहुत कुछ शिकायत थी। जिन तीन बातों पर उसने बहुत ज़ोर दिया, वे थीं:—निज़ाम का मरहमत ख़ाँ के प्रति पक्षपात,

---

को दिल्ली पहुँची। ख़फ़ी ख़ाँ लिखता है कि सालिमसिंह क़ैद हो गया; इसके विपरीत कामवर का कथन है कि सालिमसिंह युद्ध में मारा गया; परन्तु कामवर का यह कथन ग़लत है। ख़फ़ी०, २, पृ० ८५१, ८७७; वंश०, ४, पृ० ३०७४; इर्विन, २, पृ० ६। बून्दी पर धावा करते समय दिलावर अली भी भीमसिंह के साथ था ऐसा वंशभास्कर में कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है; खाण्डेराय रासो में भी उसका नाम नहीं दिया है। खाण्डे०, पृ० ३९७-९

नालम (सारंगपुर में स्थित तालम ?) परगने के ज़मींदार को पदच्युत करना तथा ज़मीन सम्बन्धी अनेकानेक झगड़े। अपने वकील की चिट्ठी का उत्तर निज़ाम ने सीधे हुसैन अली को ही लिखा, जिसमें वकील की चिट्ठी के पहुँचने की सूचना दी और यह शिकायत की कि मालवा प्रान्त के जो ख़बर-नवीस ख़बरें दिल्ली भेजा करते थे वे उससे शत्रुता रखते थे। निज़ाम ने यह भी लिखा कि सम्भव है दूसरे व्यक्ति मालवा की ठीक-ठीक परिस्थिति न समझ सकें, किन्तु हुसैन अली कुछ ही काल पहिले मालवा में होकर निकला था, एवं वह पूरी परिस्थिति से अपरिचित न था। मालवा को मरहठों के आक्रमणों से बचाने के लिए यह अत्यावश्यक था कि एक बहुत बड़ी पूर्णतया सुसज्जित सेना तैयार रखी जावे। निज़ाम ने यह भी व्यक्त कर दिया कि वह स्वयं किसी भी प्रकार से सैयदों को हानि पहुँचाना नहीं चाहता था; अपने इस कथन की पुष्टि में उसने नेकूसियर के विद्रोह के प्रति अपनी उदासीनता का भी उल्लेख किया।[१] किन्तु इस पत्र को पाकर हुसैन अली की क्रोधाग्नि अधिक भड़क उठी, उसने अत्यन्त कठोर शब्दों का प्रयोग किया, बहुत कुछ कहा सुना भी। दीर्घकालीन वाद-विवादों तथा सलाह-मशविरों के बाद अन्त में मालवा से दिल्ली चले आने की आज्ञा का शाही फ़रमान लेकर सैयदों ने दो गुर्ज़-बरदारों को निज़ाम के पास भेजा। आलम अली ख़ाँ उस समय दक्षिण में था, उसको चेतावनी दी गई और दिलावर अली ख़ाँ को आज्ञा हुई कि वह दक्षिण से सैयदों के स्त्री-बच्चों को लाने के बहाने से चम्बल पार

[१] ख़फ़ी०, २, पृ० ८५१; तारीख़-ई-मुज़फ़्फ़री, पृ० १७४; इर्विन, २, पृ० १७-८; शिव०, पृ० ३६ ब-३७ अ

कर मालवा में प्रवेश करे। सैयदों ने सोचा कि यदि निज़ाम विरोध न कर उनकी आज्ञा मान ले तब तो कोई प्रश्न ही न रह जावेगा; किन्तु यदि वह विरोध करने को ही उतारू हुआ तब भी उसके साथ अवसरानुकूल युद्ध करने या सन्धि की शर्तें करने की सम्भावना बनी रहेगी।[1]

उधर मुहम्मद अमीन खाँ के ज़रिये, निज़ाम के पास सम्राट् मुहम्मद शाह और उसकी माँ के पत्र पर पत्र आ रहे थे। सैयदों के आधिपत्य के फलस्वरूप होने वाली उनकी दुर्दशा और दयनीय विवशता का पूरा-पूरा विवरण इन पत्रों में लिखा गया था। सम्राट् और उनकी माँ ने यह भी लिखा कि उन्हें इस बात को पूरी आशा है कि उनका पक्ष लेकर निज़ाम उन्हें सैयदों के आधिपत्य से छुड़ावेगा। मुहम्मद अमीन खाँ ने भी निजी तौर से निज़ाम को सूचना दी कि सैयद केवल एक ऐसे उपयुक्त अवसर की बाट देख रहे थे जब वे उसका पूर्ण नाश कर सकें। निज़ाम पहिले ही सैयदों के इरादों के बारे में सशंकित था; दिलावर अली खाँ, भीमसिंह आदि ससैन्य मालवा की सीमा पर स्थित थे, उनकी उपस्थिति से ही निज़ाम की सब शंकाओं की पुष्टि हो गई। जब अप्रेल महीने में निज़ाम मन्दसौर में डेरा डाले हुए था, वहीं उसने सुना कि उसे वापिस बुलाने के लिए दिल्ली से गुर्ज़बरदार भेजे जा चुके थे। निज़ाम ने युद्ध की बहुत कुछ तैयारियाँ कर ली थीं, और ज्योंही उसने सुना कि दिलावर अली की सेना मालवा की ओर बढ़ रही है, उसने जल्द-जल्द अपनी सेना को पूर्णरूप से सुसज्जित कर लिया। पहिले

---

[1] अहवाल; इर्विन, २, पृ० १९-२०; खफ़ी०, २, पृ० ८५१, ८६०

तो उसने निश्चय किया कि वह उज्जैन लौट जावे और वहाँ शाही फ़रमान की बाट देखे।[1]

उस फ़रमान द्वारा निज़ाम को सूचना दी गई थी कि दक्षिण के शासन को सुसंगठित करने तथा उस प्रदेश को मरहठों के आक्रमणों से सुरक्षित बनाने के लिए यह अत्यावश्यक प्रतीत हुआ कि मालवा की शासन-डोर अपने हाथ में लेकर हुसेन अली मालवा में निवास करें; मालवा की सूबेदारी निज़ाम के अधिकार से ले ली गई थी, एवं निज़ाम को दिल्ली वापिस लौट आने का आदेश दिया गया था। उससे यह भी पूछा गया था कि मालवा की सूबेदारी के बदले में उसे आगरा, इलाहाबाद, मुलतान और बुरहानपुर, इन चारों में से किसी भी एक प्रान्त की सूबेदारी दी जा सकती थी। किन्तु मालवा की सूबेदारी छीन कर सैयदों ने अपने शपथ-वादों को भंग कर दिया था। निज़ाम को इस समय द्रव्य की भी बहुत आवश्यकता थी। मालवा के उत्तर-पश्चिमी भाग को भीमसिंह और उसके साथियों ने उजाड़ दिया था। निज़ाम ने मालवा प्रान्त छोड़ने से इन्कार कर दिया। रबी फ़सल बहुत ही जल्द एकत्रित की जाने वाली थी और उसी समय बहुत कुछ लगान वसूल किया जा सकता था। अप्रेल १३, को वह मन्दसौर से रवाना हुआ, और राह में उसने निश्चय किया कि न तो वह उज्जैन ही लौटेगा और न फ़रमान की राह ही देखेगा। सिरोंज जाने की बात करता हुआ, वह मुकुन्द-दर्रा तक गया, वहाँ से एकबारगी लौटा और उज्जैन के पास स्थित कायथ गाँव तक पहुँचा, जहाँ से वह

[1] ख़फ़ी०, २, पृ० ८५०-२; कामवर, पृ० २२१; इबरत०, पृ० ३०७; इर्विन, २, पृ० १९-२०

सीधा नर्मदा नदी की ओर चल पड़ा। अप्रेल १८ को उसने अकबरपुर के घाटे पर नर्मदा पार की और इसकी खबर मई ६ को दिल्ली पहुँची।[1]

निज़ाम का मालवा छोड़ना; दक्षिण में द्वन्द, सन् १७२० ई०

भीमसिंह हाड़ा, नरवर का गजसिंह, दोस्त मुहम्मद एवं दूसरे सेनापति मालवा की सीमा पर ही तैयार थे, उसी समय उन्हें आज्ञा हुई कि तत्काल वे सीधे निज़ाम का विरोध करने को रवाना हो जावें। जून १९, १७२० ई० को खण्डवा के पास युद्ध हुआ जिसमें निज़ाम ने शाही सेना को बुरी तरह से हराया। भीमसिंह, गजसिंह और दिलावर अली खेत रहे। दोस्त मुहम्मद, उसके अन्य मित्र तथा बाक़ी बचे हुए सैनिक भाग खड़े हुए, निज़ाम के मरहठे साथियों ने उनका पीछा किया और उन्हें लूटा भी, किन्तु दोस्त मुहम्मद सकुशल मालवा में अपने स्थान पर पहुँच गया।[2]

निज़ाम की इस विजय का विवरण सुन कर सैयद बहुत ही आश्चर्य-चकित हुए। अब हुसैन अली ने सम्राट् के नाम से एक फ़रमान निज़ाम को भिजवाया और उससे मालवा छोड़ने का कारण पूछा; उसी फ़रमान

---

[1] ख़फ़ी०, २, पृ० ८५१-२, ८५९-६०; इबरत०, पृ० ३०७-८; कामवर, पृ० २२१; इर्विन, २, पृ० १८, २२

[2] ख़फ़ी०, २, पृ० ८७६-८८२; इबरत०, पृ० ३१८। अहवाल में लिखा है कि "दोस्त मुहम्मद खाँ युद्ध में से भाग खड़ा हुआ" (अहवाल, पृ० १६२ अ, १५७ ब)। रुस्तम अली ने लिखा है कि—"जब सैयद मारा गया तब दोस्त मुहम्मद युद्ध में से निकल आया और अपने देश को लौट गया" (रुस्तम०, पृ० ४७६)। कामवर, पृ० २२१-३; इर्विन, २, पृ० २२-२३, २८-३४; वंश०, ४, पृ० ३०७७-७९; खाण्डे०, पृ० ५५७-५७०

द्वारा निज़ाम को दक्षिण के छहों सूबे भी दे दिए गए। हुसैन अली ने फ़रमान के साथ निज़ाम को एक निजी चिट्ठी भी भेजी। निज़ाम ने इनका उत्तर देने में पूरी कूटनीति से काम लिया; उसने लिखा कि मरहठों के उपद्रव के कारण ही उसे मालवा छोड़ना पड़ा; उसे शंका हो गई थी कि बुरहानपुर और मालवा पर भी कहीं वे आक्रमण न कर दें; इसके अतिरिक्त अमीर-उल्-उमरा के कुटुम्ब को अनेक तकलीफ़ों और उपद्रवों से बचाने का भी प्रश्न उसके सम्मुख था। मालवा और देहली में इतना अधिक दूरी है कि उसी कारण मालवा छोड़ने से पहिले शाही आज्ञा प्राप्त करना शक्य न था।[1]

सैयदों का पतन; सितम्बर-आक्टोबर, १७२० ई०

किन्तु निज़ाम के साथ होने वाले द्वन्द का अभी तक अन्त नहीं हुआ था। जुलाई ३०, सन् १७२० को दक्षिण में एक और युद्ध हुआ जिसमें आलम अली ख़ाँ मारा गया। अब तो कुछ काल के लिए दक्षिण में निज़ाम का आधिपत्य पूर्णरूप से स्थापित हो गया। सैयद तो अब अत्यधिक भयभीत हो गए। दोनों भाइयों में बहुत सलाह हुई, मतभेद भी बहुत था, किन्तु अन्त में हुसैन अली निज़ाम के इस विद्रोह को दबाने के लिए सेना लेकर दक्षिण की ओर चला। अपने साथ वह सम्राट् को भी लेता गया; मालवा तथा कुछ दूसरे प्रान्तों के जो राजकीय विभाग दिल्ली में थे वे भी सम्राट् के साथ दक्षिण को रवाना हुए। राह में ही सितम्बर २८, १७२० को हुसैन अली मारा गया, और

---

[1] शिव०, पृ० ३६ब-३७अ, ३८ब-४३अ; इबरत०, पृ० ३२७; इर्विन, २, पृ० ४५-७, ३५-३७

उसकी मृत्यु के साथ ही सैयदों का भाग्य-सितारा भी अस्त हो गया। मुहम्मद अमीन ख़ाँ शाही सेना के साथ था; सम्राट् ने उसे अपना वज़ीर नियुक्त किया, और शाही सेना पुनः दिल्ली को लौट पड़ी। कुतुब-उल्-मुल्क के साथ एक युद्ध हुआ, किन्तु अन्त में उसके आत्मसमर्पण करने पर उसको क़ैद कर दिया। किन्तु मुहम्मद अमीन ख़ाँ के भाग्य में चार मास से अधिक काल के लिए वज़ीर बने रहना लिखा न था। उसकी मृत्यु के समय निज़ाम दक्षिण में ही था, तथापि फ़रवरी ४, सन् १७२१ ई० को निज़ाम ही इस पद पर नियुक्त किया गया।[1]

निज़ाम की अनुपस्थिति में मालवा; अप्रेल २८, १७२० ई० से अगस्त ३०, १७२२ ई० तक

निज़ाम मालवा छोड़ कर अप्रेल २८, सन् १७२० को दक्षिण चला गया था, किन्तु तब भी वह प्रान्त उसी के अधिकार में रहा। जब मुहम्मद अमीन ख़ाँ वज़ीर बना तब निज़ाम ने प्रस्ताव किया कि वज़ीर के भाई, ज़ाहिर-उद्-दौला को मालवा का सूबेदार बना दिया जावे। ज़ाहिर-उद्-दौला ने निज़ाम की बहुत सेवा की थी। किन्तु वज़ीर को यह प्रस्ताव रुचिकर न हुआ,[2] और जब तक गिरधर बहादुर को यहाँ की सूबेदारी न दी गई (अगस्त ३०, सन् १७२२ ई०), मालवा निज़ाम के ही अधिकार में रहा। जब गिरधर बहादुर को मालवा का सूबेदार बनाया, उस समय निज़ाम दिल्ली में ही उपस्थित वज़ीर के पद पर स्थित शासन कर रहा था।

---

[1] इर्विन, २, पृ० ४७-५०, ५१-५४, ५८-६०, ६७-८, ७२-७४, ८५-९३, ९५, १०३-१०६

[2] मा० उ०, २, पृ० ३३२

जिस समय आपसी झगड़ों और आन्तरिक विद्रोहों से साम्राज्य-शासन में गड़बड़ी फैल रही थी, और तत्परिणाम-स्वरूप शासन-संगठन दिनों-दिन निर्बल होता जा रहा था, उसी समय मरहठों की शक्ति निश्चित रूप से अधिकाधिक दृढ़ और सुसंगठित होती जा रही थी। मरहठों के नए नेता, पेशवा बाजीराव के (१७२०—४० ई०) विचारानुसार मरहठों के लिए यह अत्यावश्यक था कि उत्तरी भारत में वे आक्रमण-शील नीति का प्रयोग करें; उसकी इस विचारधारा का अनेक व्यक्तियों ने विरोध किया, किन्तु मरहठों के राजा शाहू का बाजीराव पर पूरा-पूरा विश्वास था; शाहू ने भी पेशवा की ही नीति का समर्थन किया। सन् १७१७ ई० में भी शाहू ने कुछ मरहठे सेनापतियों को मालवा प्रान्त के कुछ परगनों का मोकासा आदि प्रदान कर दिया था;[1] इन पिछले वर्षों में अनेक मरहठे सेनापति भी मालवा पर आक्रमण कर वहाँ अपने थाने स्थापित कर रहे थे, किन्तु तत्कालीन पेशवा स्वयं उत्तरी भारत पर आक्रमण करने का विचार नहीं कर सकता था। प्रारम्भिक वर्षों में बाजीराव भी दक्षिण में ही मरहठों के राज्य को सुसंगठित करने एवं अपनी सत्ता बढ़ाने के प्रयत्न में लगा रहा। पुनः इसी समय निज़ाम ने दक्षिण में आकर डेरा डाला और अपनी सत्ता स्थापित करने का भी निज़ाम ने प्रयत्न किया; इस नवीन राजनैतिक सत्ता की स्थापना से दक्षिणी भारत की राजनीति पर पड़ने वाले प्रभाव का भी बाजीराव को पूरा अध्ययन करना पड़ा। दक्षिण में मुबारिज़ ख़ाँ को अपना नायब सूबेदार नियुक्त कर सन् १७२१ ई० में

नया पेशवा, प्रथम बाजीराव—उसकी नवीन नीति

---

[1] पे० द०, ३०, पत्र सं० १७ अ, १७ ब

निज़ाम दिल्ली के लिए रवाना हुआ। दक्षिण से निज़ाम की अनुपस्थिति, दक्षिण में मरहठों की माँगों का पूर्ण विरोध करने की मुबारिज़ ख़ाँ की नीति,[1] एवं पेशवा के पद का अधिक शक्तिशाली तथा सुदृढ़ हो जाने का परिणाम यह हुआ कि सन् १७२२ ई० की बरसात के बाद बाजीराव ने मुग़ल साम्राज्य पर ससैन्य चढ़ाई की, और वह विभिन्न प्रान्तों पर आक्रमण करने लगा; किन्तु तब तक मालवा की सूबेदारी का भार निज़ाम के कन्धों पर से हट चुका था।

३. गिरधर बहादुर की पहली सूबेदारी
(अगस्त ३०, १७२२ ई०–मई १५, १७२३ ई०)

अगस्त ३०, सन् १७२२ ई० को सम्राट् मुहम्मद शाह ने मालवा की सूबेदारी गिरधर बहादुर को दे दी। गिरधर बहादुर नागर ब्राह्मण था; इलाहाबाद के राजा छबीलेराम का भतीजा था। पहिले वह अवध का सूबेदार भी रह चुका था, किन्तु जब सम्राट् ने सादत ख़ाँ को अवध की सूबेदारी देने का निश्चय किया, तब गिरधर बहादुर को अवध से हटा कर मालवा भेज दिया।[2]

यह एक दैविक योगायोग की बात थी कि जिस समय गिरधर बहादुर मालवा का सूबेदार नियुक्त हुआ उसी समय मरहठे भी आक्रमणशील नीति का पूर्णरूपेण प्रयोग करने लगे। सन् १७२२ ई० की बरसात

---

[1] मध्य०, १, पृ० १६३

[2] कामवर, पृ० २५४; सिवानीह्-इ-ख़िज़्र; इर्विन, २, पृ० १२३; श्रीवास्तव, पृ० ३०। पिछले दोनों ग्रन्थों में तारीख़ें नवीन पद्धति के अनुसार दी गई हैं।

समाप्त होते ही बाजीराव ने मालवा पर आक्रमण करने का निश्चय किया। आक्टोबर ८, १७२२ ई० के दिन दशहरे का उत्सव समाप्त होते ही वह सतारा के लिए रवाना हो गया और जनवरी १८, १७२३ ई० को बुरहानपुर जा पहुँचा। दिसम्बर ३, १७२२ ई० को मरहठों की सेना का पड़ाव जलगाँव में था; वहीं पेशवा ने गुजरात और मालवा से एकत्रित किये जाने वाले मोकासा में से आधा हिस्सा उदाजी पवार को देने की आज्ञा दी।[1] बुरहानपुर से पेशवा मकड़ाई पहुँचा और वहाँ एक सप्ताह के लगभग ठहर कर फ़रवरी १ को हंडिया के पास ही मालवा में जा घुसा। अब वह सीधा धार की ओर रवाना हुआ और फ़रवरी १० को धार से ६ मील उत्तर में गरड़ावद नामक स्थान पर जा पहुँचा। उसने माही नदी पार कर बदकशा (झाबुआ राज्य में स्थित बोलासा[2]) में डेरा डाला। इस समय निज़ाम गुजरात की ओर जा रहा था; पेशवा ने यहाँ ठहर कर उससे मिलने का निश्चय किया, एवं बदकशा में ही ठहर कर वह निजाम की बाट देखने लगा।[3]

मालवा पर बाजीराव की चढ़ाई; फ़रवरी, १७२३ ई०

[1] वाड़, २, पृ० २२३; धारच्या०, पृ० २०-२२

[2] झाबुआ राज्य में रायपुरिया से कोई ७ मील दक्षिण-पूर्व में स्थित "बोलासा" नामक गाँव ही "बदकशा" हो सकता है। माही नदी और रायपुरिया से समान दूरी पर दोनों के मध्य में यह गाँव स्थित है। इस नाम-भेद के दो ही कारण हो सकते हैं, या तो पेशवा के कार्यकर्ताओं ने ग़लत नाम दर्ज कर दिया हो, या जब मोड़ी में लिखे हुए उन पुराने काग़ज़ों की देवनागरी में प्रतिलिपियाँ बनाई गई उस समय मोड़ी में लिखे हुए नाम को पढ़ने में ग़लती हो गई हो।

[3] वाड़, २, पृ० २२२-२२४; पे० द०, ३०, पृ० २६६

वज़ीर के पद पर आरूढ़ होते ही निज़ाम को अच्छी तरह से ज्ञात हो गया कि मुग़ल साम्राज्य का ठीक तौर पर शासन-कार्य चलाना एक बहुत ही कठिन बात थी। गुजरात का सूबेदार, हैदर कुली खाँ, सम्राट् का बहुत ही कृपापात्र था; उसके कारण शासनकार्य में अनेक बाधाएँ उपस्थित होती थीं, अतएव निज़ाम ने उसे दिल्ली से बाहर भेजने का निश्चय किया। हैदर कुली गुजरात भेज दिया गया, किन्तु ज्यों ही वह वहाँ पहुँचा, उसने उस सूबे में स्थित अनेकानेक अमीरों की जागीरों में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। निज़ाम ने सोचा कि वह स्वयं गुजरात जाकर हैदर कुली खाँ को वहाँ से भी निकाल बाहर कर दे। इस कार्यार्थ गुजरात जाने के लिए जब निज़ाम ने सम्राट् से आज्ञा माँगी तब बहुत ही कठिनाई से उसकी यह प्रार्थना स्वीकार हुई। गुजरात जाते समय निज़ाम मालवा में होकर गुज़रा। सारंगपुर (दिसम्बर ३०, सन् १७२२ ई०) होता हुआ वह फ़रवरी ३, सन् १७२३ ई० को धार पहुँचा, और तीन दिन बाद वह वहाँ से अहमदाबाद के लिए रवाना हुआ। राह में बदकशा (बोलासा) नामक स्थान पर फ़रवरी १३, सन् १७२३ ई० को पेशवा से निज़ाम की भेंट हुई।[१] यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भेंट थी, और भविष्य में होने वाली अनेकानेक भेंटों के लिए अब राह खुल गई।

निज़ाम का मालवा की ओर आना; पेशवा से उसकी भेंट, फ़रवरी १३, सन् १७२३ ई०

[१] इर्विन, २, पृ० १२७-९; ख़फ़ी०, २, पृ० ९४६; कामवर, २५६-६१; गुलाम०, पृ० ४५ अ; पे० द०, १३, पत्र सं० ३; ३०, पृ० २६६; मिरात०, २, (ग्र० सं०, ३४) पृ० ४५-७

निज़ाम अहमदाबाद की ओर बढ़ा और (झाबुआ राज्य में स्थित) रायपुरिया के अगले पड़ाव तक पेशवा भी निज़ाम के साथ गया; वहाँ दो दिन ठहर कर, फ़रवरी १६ को निज़ाम से बिदा होकर पेशवा पीछा बदकशा लौट आया। बाजीराव अब खानदेश को लौट पड़ा; अमझरा तथा धार के पास से होता हुआ, माण्डू के पास पायाघाट से उतर कर फ़रवरी २५, सन् १७२३ ई० को पेशवा ने अकबरपुर के घाटे पर नर्मदा को पार किया।[1]

झाबुआ का मामला; जनवरी-फ़रवरी, १७२३ ई०

इस समय पेशवा के अनेक सेनापति यत्र-तत्र फैले हुए, मरहठों का पिछले सालों का बाक़ी रहा कर, चौथ आदि वसूल कर रहे थे। मालवा की पश्चिमी सीमा पर तो उनका पूर्ण प्राधान्य था। इन सेनापतियों में उदाजी पवार, कंठाजी कदम और पीलाजी गायकवाड़ विशेष उल्लेखनीय थे। पेशवा ने कंठाजी को आज्ञा दी थी कि खानदेश लौटते समय धरमपुरी के स्थान पर आकर पेशवा के सम्मुख उपस्थित हो। जनवरी, सन् १७२३ ई० के प्रारम्भ में वह अली नामक स्थान पर था; यह स्थान अब अलीराजपुर राज्य के अन्तर्गत है। वहाँ से कंठाजी झाबुआ राज्य में जा पहुँचा, (झाबुआ शहर से १३ मील उत्तर में) शिवगढ़ नामक स्थान पर जाकर डेरा डाला और चौथ और सरदेशमुखी देने के लिए तक़ाज़ा किया। इस समय राजा कुशाल सिंह झाबुआ में राज्य करता था; वह बहुत ही निर्बल और अयोग्य शासक था, तथापि उसने मरहठों का विरोध करने का निश्चय किया! किन्तु इसी समय पेशवा दक्षिण के लिए

[1] पे० द०, ३०, पृ० २६६; वाड़, २, पृ० २२३

रवाना हो चुका था, एवं धरमपुरी के स्थान पर पेशवा से भेट करने के लिए, बिना कर वसूल किए ही कंठाजी को झाबुआ से लौट जाना पड़ा। कुछ ही काल बाद कुशाल सिंह मर गया और उसका पुत्र अनूपसिंह झाबुआ की गद्दी पर बैठा।[1]

गुजरात में किसी ने भी निज़ाम का विरोध नहीं किया, हैदर अली दिल्ली को भाग गया। निज़ाम ने उस प्रान्त की सूबेदारी अपने स्वयं या अपने पुत्र के लिए ले ली थी; एवं निज़ाम ने अपने काका हमीद ख़ाँ को, जो जंगली शाहज़ादा के नाम से भी प्रसिद्ध था, गुजरात का नायब-सूबेदार नियुक्त किया, और वह स्वयं मार्च १३, १७२३ ई० तक पुनः मालवा को लौट आया।[2]

निज़ाम का पुनः मालवा को लौटना; दोस्त मुहम्मद पर चढ़ाई

गुजरात के मामले को निपटा कर निज़ाम ने दोस्त मुहम्मद ख़ाँ को दबाने का निश्चय किया। दोस्त मुहम्मद ख़ाँ ने बहुत सा शाही इलाक़ा दबा लिया था; पुनः निज़ाम को इस बात का भी स्मरण था कि तीन वर्ष पहिले खण्डवा के युद्ध में सैयदों का पक्ष लेकर दोस्त मुहम्मद उसके

---

[1] पे० द०, १३, पत्र सं० १, ३। झाबुआ गजे० (पृ० ३-४) के अनुसार "यह आक्रमण सन् १७२२ ई० के अन्तिम महीनों में हुआ," और "चूँकि कंठाजी को एकबारगी उत्तरी भारत चले जाना पड़ा वे चौथ आदि वसूल नहीं कर सके"; किन्तु ये दोनों कथन ग़लत हैं। ये गजेटियर प्रायः ख्यातों, दन्त-कथाओं आदि के ही आधार पर लिखे गए थे, एवं उनमें त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही है।

[2] ख़फ़ी०, २, पृ० ९४६-७; कामवर, पृ० २५६-६१; मिरात०, २ (ग्र० सं० ३४), पृ० ४७-८; इर्विन, २, पृ० १२९-३०

विरुद्ध लड़ा था।[1] मालवा में जब निज़ाम ठहरा हुआ था, उस समय उससे मिलने के लिए दोस्त मुहम्मद आया था। निज़ाम ने उससे कह दिया था कि शाही इलाक़े को दबा कर उसने अनुचित कार्यवाही की थी; एवं यह उचित होगा कि अपने अधिकार में लिए हुए सब शाही क़िलों को वह लौटा दे।[2] दोस्त मुहम्मद को समझाने के लिए निज़ाम ने बाद में अपने दारोग़ा यूसुफ़ मुहम्मद ख़ाँ को भी भेजा, किन्तु यह सब प्रयत्न विफल हुए, और दोस्त मुहम्मद इस्लामनगर पहुँच कर वहाँ निज़ाम का विरोध करने की तैयारी करने लगा।[3] युद्ध शुरू हो गया और अन्त में निज़ाम ने जाकर स्वयं

---

[1] रुस्तम०, पृ० ४९६-७; तारीख़-इ-फ़तियह; निज़ाम०, पृ० १३१-२।

खाण्डे० (पृ० ५०१-२) में इस आक्रमण का कारण निज़ाम की सेना के लिये मालवा में घास और धान्य की कमी होना ही बताया है।

ताज० (पृ० ५) में लिखा है कि मालवा के सूबेदार (गिरधर ?) बहादुर ने दोस्त मुहम्मद पर चढ़ाई की, जिसमें सूबेदार की ही हार हुई; किन्तु किसी भी दूसरे आधार से इस कथन की पुष्टि नहीं होती है।

[2] निज़ाम०, पृ० १५१-२

दोस्त मुहम्मद की यह भेंट गुजरात जाने से पहले हुई या बाद में इसका निर्णय नहीं किया जा सकता है। गुजरात जाते समय जब जनवरी, १७२३ ई० में निज़ाम उज्जैन के पास पहुँचा, उस समय दोस्त मुहम्मद की सेना नौलाई और बदनावर के पास थी। पे० द०, १३, पत्र सं० ३

[3] रुस्तम०, ४९७; निज़ाम०, पृ० १५१-२; खाण्डे०, पृ० ५११

इर्विन ने लिखा है कि दोस्त मुहम्मद ख़ाँ भोपालगढ़ में जा बैठा (२, पृ० १३०), किन्तु यह कथन त्रुटिपूर्ण है; भोपाल के क़िले की नींव इस चढ़ाई के बाद ही पड़ी। (रुस्तम०, पृ० ५५५)

इस्लामनगर के क़िले का घेरा लगाया।[1] शाही सेना ने क़िले को हस्तगत कर लिया, तब तो दोस्त मुहम्मद आत्मसमर्पण करने के लिए तैयार हो गया। निज़ाम को प्रसन्न करने के लिए उसने अपने पुत्र यार मुहम्मद ख़ाँ को भेजा; यार मुहम्मद ने निज़ाम के सम्मुख जाकर आत्मसमर्पण किया और क्षमा के लिए प्रार्थना की। निज़ाम सन्तुष्ट हो गया, उसने सन्धि कर ली और दोस्त मुहम्मद को २-हज़ारी, दो हज़ार सवारों का मन्सब दिया और यार मुहम्मद ख़ाँ को साथ लेकर निज़ाम दिल्ली की ओर चल दिया।[2]

फ़रवरी २५ को नर्मदा पार कर पेशवा खानदेश में बारेगाँव होता हुआ मकड़ाई पहुँचा। वहाँ से शीघ्र ही हण्डिया के परगने में जाकर

[1] निजाम०, पृ०१५२-२; रुस्तम०, पृ० ४९६-७। इर्विन केवल यही लिखता है कि सेना भेजी गई थी (२, पृ० १३०)।

खाँण्डे० (पृ० ३५१, ५०२-८) के अनुसार निजाम ने सहायतार्थ खाण्डेराय को बुलाया था। खाण्डेराय के ही प्रस्ताव पर यह आक्रमण हुआ, एवं शाही सेना की सफलता का कारण भी खाण्डेराय को ही बताया है। यह कथन अत्युक्तिपूर्ण एवं अविश्वसनीय प्रतीत होता है।

निजाम० (पृ० १५२) के अनुसार दो माह तक घेरा लगा, किन्तु यह कथन ठीक नहीं है। मार्च १३ को निजाम मालवा पहुँचा और मई १४ को इस विजय का विवरण दिल्ली में सम्राट् की सेवा में निवेदन किया गया।

[2] कामवर, पृ० २६३-५; वारिद, पृ० १२; इर्विन, २, पृ० १३०-१; निजाम०, पृ० १५१-२; खाण्डे०, पृ० ५०७-१२; ३५१

रुस्तम अली अपने संरक्षक की पराजय का उल्लेख नहीं करता है और इस ऐतिहासिक सत्य को यों कह कर टाल देता है कि "बहुत प्रयत्नों के बाद सन्धि हो गई"। रुस्तम०, पृ० ४९६-७

होशंगाबाद के पास नर्मदा पार कर मार्च १८ को उसने पुनः मालवा में प्रवेश किया। १५—१६ दिन तक वह उन्हीं परगनों में घूमता रहा और अप्रेल ५, १७२३ ई० को मालवा छोड़ कर दक्षिण को लौट पड़ा। जिस समय पेशवा होशंगाबाद परगने में ठहरा हुआ था, उस वक्त मरहठों की कुछ सेना दोस्त मुहम्मद के विरुद्ध भेजी गई; इस सेना ने रुहेलों को हराया और लूट में एक हाथी भी पकड़ लिया, जो पेशवा की भेंट किया गया।[1]

मरहठों की सेना का भोपाल की ओर जाना; मार्च १८—अप्रेल ५, सन् १७२३ ई०

निज़ाम दिल्ली के लिए चल पड़ा था। जब वह सिरोंज पहुँचा तब मई १५, सन् १७२३ ई० को गिरधर बहादुर मालवा की सूबेदारी से हटा दिया गया; निज़ाम ने मालवा प्रान्त को अपने अधिकार में ले लिया, और रैयत ख़ाँ के पुत्र अज़ीमुल्ला को, जो निज़ाम का दूसरा चचेरा भाई भी होता था, अपना नायब सूबेदार नियुक्त किया। गिरधर बहादुर की पहली सूबेदारी का यों अन्त हुआ। अपना भारी-भारी सामान तथा तोपें, गोला-बारूद आदि को सिरोंज में ही छोड़ कर निज़ाम दिल्ली को लौट गया।[2]

निज़ाम का मालवा को अपने अधिकार में लाना; अज़ीमुल्ला को अपना नायब सूबेदार नियुक्त करना; मई १५, १७२३ ई०

---

[1] पेशवा के दफ़्तर में इस बात का उल्लेख मिलता है कि अप्रेल १६, १७२३ ई० को एक हाथी पेशवा की भेंट किया गया; यह हाथी दोस्त मुहम्मद ख़ाँ से जीत कर प्राप्त किया गया था। पे० द०, ३०, पृ० २६७; वाड़, २, पृ० २२४। यह सम्भव है कि जब निजाम ने दोस्त मुहम्मद पर चढ़ाई की, मरहठों की सेना ने भी निजाम के साथ सहयोग किया हो, किन्तु इस बात का उल्लेख मुस्लिम इतिहास-ग्रन्थों में नहीं मिलता है।

[2] कामवर, पृ० २६५; रुस्तम०, पृ० ४९७; वारिद, पृ० १२; इर्विन, २, पृ० १३१

४. अज़ीमुल्ला की नायब सूबेदारी
(मई ५, १७२३ ई०—जून २, १७२५ ई०)

अज़ीमुल्ला को मालवा का नायब सूबेदार नियुक्त कर निज़ाम लौट गया, किन्तु रुहेला दोस्त मुहम्मद ख़ाँ पर नज़र रखने के लिए भी वह प्रबन्ध कर गया। इस्लामनगर का क़िला जीत लिया गया था, निज़ाम ने राव चन्द के पुत्र चन्द्रबंस को वहाँ का फ़ौजदार नियुक्त किया।

दिल्ली पहुँचने पर निज़ाम को ज्ञात हुआ कि साम्राज्य के शासन-संगठन में कुछ भी सुधार करना उसके लिए असम्भव हो गया था। निज़ाम के विरुद्ध सम्राट् के कान भरे जा चुके थे, और अब सम्राट् का निज़ाम पर विश्वास भी नहीं रह गया था। शाही दरबार में जो-जो व्यक्ति निज़ाम के प्रतिद्वन्दी थे उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि दक्षिण के जो छः सूबे निज़ाम के अधिकार में थे, उसके पास से वापिस लिए जाकर उन सब सूबों को सम्राट् के सद्यःजात शिशु-शाहज़ादे को प्रदान किया जाना ही अधिक ठीक होगा। निज़ाम दक्षिण के सूबों को अपनी ही जायदाद समझता था, एवं इस प्रस्ताव को सुनकर वह स्तम्भित तथा सशंकित हो गया। उसने वज़ीर के पद से इस्तीफ़ा दे दिया और शाही दरबार में उपस्थित होना भी उसने बन्द कर दिया। किसी भी तरह निज़ाम और सम्राट् के बीच समझौता करवाया गया, किन्तु एक मास से कुछ ही अधिक काल बीता था कि निज़ाम अवध में अपनी जागीर के स्थान पर जाने के लिए सम्राट् से छुट्टी लेकर, दिसम्बर ७, १७२३ ई० को रवाना हो गया। १७२४ ई० के फ़रवरी मास में निज़ाम गंगा किनारे सोरों नामक स्थान पर ठहरा हुआ था; वहीं से उसने सम्राट् की सेवा में सूचना भेजी कि

मरहठों ने मालवा और गुजरात के प्रान्तों पर आक्रमण किया था; और यह भी निवेदन किया कि ये दोनों प्रान्त उसके तथा उसके पुत्र के अधिकार में थे, अतएव स्वयं उन प्रान्तों में जाकर मरहठों को निकाल बाहर करने का उसका इरादा था। जल्द-जल्द बढ़ता हुआ, आगरा और नरवर होता हुआ, निज़ाम उज्जैन पहुँचा।[१] मरहठे तो इसके पहिले ही नर्मदा पार कर दक्षिण को लौट चुके थे;[२] एवं वह दोस्त मुहम्मद ख़ाँ के इलाक़े की ओर गया और सिरोंज के पास ही सिहोर नामक स्थान पर उसने डेरा डाला।[३]

उधर पेशवा ने पुनः मालवा पर आक्रमण करने का निश्चय किया (नवम्बर-दिसम्बर, १७२३ ई०)। अपने सेनापतियों को रवाना कर वह स्वयं बाद में दक्षिण से चला। जनवरी २४, १७२४ ई० को सतारा से रवाना होकर मार्च के प्रारम्भ में खानदेश पहुँचा; दो मास तक वह नेमाड़ प्रदेश में ही घूमता रहा। मई ८ को अकबरपुर के घाटे पर नर्मदा पार कर वह सीधा बड़वाह के राजा सबलसिंह के पास गया।[४]

[१] तारीख़-इ-फ़तियह में लिखा है कि फ़रमान द्वारा मालवा जाने की शाही आज्ञा प्राप्त करने पर ही निज़ाम सोरों से रवाना हुआ। निज़ाम०, पृ० १५४

[२] सम्भव है पेशवा की आज्ञा से ही मरहठे नर्मदा नदी के दक्षिण तीर को लौट गए। मार्च २८, १७२४ ई० को कंठाजी कदम ने लिखा था कि पेशवा की आज्ञा प्राप्त होते ही वह तत्काल कुकसी को छोड़ कर नर्मदा के दक्षिणी तीर पर चला आया और वहाँ अगले हुक्म की राह देखने लगा। पे० द० १३, पत्र सं० २

[३] कामवर, पृ० २६८; ख़फ़ी०, २, पृ० ९४७, ९५०; मा० उ०, ३, पृ० ७३९; बुरहान०, पृ० १६९ अ; इर्विन, २, प० १३४-७

[४] पे० द०, ३०, पृ० २६८-९; वाड़, २, पृ० २२४-५

दक्षिण के सूबों के लिए अब पूर्ण उत्साह के साथ द्वन्द आरम्भ हुआ। देहली जाते समय निज़ाम दक्षिण में मुबारिज़ ख़ाँ को अपना नायब सूबेदार नियुक्त कर गया था; सम्राट् ने अब मुबारिज़ ख़ाँ को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। दक्षिण के अन्य प्रधान सेनापतियों के साथ ही साथ राजा शाहू को भी सम्राट् ने लिख भेजा कि मुबारिज़ ख़ाँ की सहायता करें (फ़रवरी, १७२४ ई०)।[1] शायद सम्राट् की इस आज्ञा के उत्तर में ही शाहू ने अपनी कुछ शर्तें पेश कीं, जिनकी स्वीकृति पर ही वह मुबारिज़ ख़ाँ की सहायता करने को तैयार होता; इस मसविदे में एक शर्त यह भी कि सम्राट् शाही फ़रमान द्वारा मरहठों को मालवा तथा गुजरात की चौथ और सरदेशमुखी प्रदान कर दे।[2] दक्षिण की सूबेदारी स्वीकार कर मुबारिज़ ख़ाँ अपने प्रतिद्वन्दी का सामना करने की तैयारी करने लगा। जब निज़ाम सिहोर में ठहरा हुआ था उसी समय औरंगाबाद से इनायत ख़ाँ की रिपोर्ट द्वारा उसे मुबारिज़ ख़ाँ की इन तैयारियों का पता लग गया। दिल्ली के वकील द्वारा मुबारिज़ ख़ाँ को भेजा हुआ एक पत्र जब निज़ाम के हाथ पड़ गया तब तो उपर्युक्त रिपोर्ट की पुष्टि होगई।[3] अब निज़ाम ने सब बहाने छोड़ दिये। इस समय पेशवा नेमाड़ में था; निज़ाम ने उससे भेंट कर इस आगामी द्वन्द के लिए उसकी

दक्षिण के सूबों के लिए अन्तिम द्वन्द; मरहठों के साथ मेल

---

[1] कामवर, पृ० २६७; वारिद, पृ० १३-१४; ख़ुशहाल, पृ० १०४४ अ; इर्विन, २, पृ० १३७-८

[2] पे० द०, १०, पत्र संख्या १

[3] मा० उ०, ३, पृ० १७८; ख़फ़ी०, २, पृ० ९४९-५१; इर्विन, २, पृ० १४०-१

सहायता प्राप्त करने का निश्चय किया। बड़वाह से महेश्वर तथा (माण्डू के पास स्थित) जहाँगीराबाद होता हुआ वह नालछा पहुँचा, निज़ाम भी नालछा गया और मई १८, १७२४ ई० को नालछा में ही पुनः दोनों की भेंट हुई। जिन शर्तों पर राजा शाहू सम्राट् का पक्ष लेने को तैयार था, उनका मसविदा सम्राट् की सेवा में भेजा जा चुका था, किन्तु सम्राट् ने अब तक अपनी स्वीकृति नहीं दी थी; पुनः बाजीराव भी इस अवसर से लाभ उठाने से चूकने वाला न था, एवं अपनी अनेकानेक माँगों को निज़ाम से स्वीकृत करा कर ही बाजीराव उसकी सहायता करने के लिए उद्यत हुआ।[१]

इस भेंट के बाद शीघ्र ही निज़ाम दक्षिण की ओर चल पड़ा, और रमज़ान माह के अन्तिम दिनों में (जून, १७२४ ई०) वह बुरहानपुर पहुँचा। निज़ाम को आशंका हुई कि कहीं दोस्त मुहम्मद पुनः उसका विरोध करने को तैयार न हो जावे एवं वह उसके लड़के यार मुहम्मद को भी अपने साथ दक्षिण लेता गया।[२] मई २२ को नर्मदा पार कर पेशवा भी दक्षिण को लौट गया।[३]

ज्यों ही निज़ाम दक्षिण के लिए रवाना हुआ, अज़ीमुल्ला भी (जून १७२४ ई० में) मालवा प्रान्त को अपने सहायक कर्मचारियों के अधिकार में देकर दिल्ली लौट गया।[४] कुछ महीनों के लिए तो सब का ध्यान

---

[१] पे० द०, ३०, पृ० २६९, २७१; वाड़, २, पृ० २२४-५

[२] मालकम, रिपोर्ट, पृ० १५६; रुस्तम०, पृ० ५५७; निज़ाम०, पृ० १५२

[३] पे० द०, ३०, पृ० २६९; वाड़, २, पृ० २२४

[४] इर्विन, २, पृ० १७०; मिरात०, २ (ग्रं० सं० ३४), पृ० ५५, ५६, ५७; कामवर

दक्षिण में निज़ाम-मुबारिज़ ख़ाँ द्वन्द की ओर आकर्षित होगया। आक्टोबर १, १७२४ ई० को युद्ध हुआ जिसमें मुबारिज़ ख़ाँ मारा गया और उसके पक्ष की हार हुई। सम्राट् ने देखा कि निज़ाम का नष्ट होना तो दूर रहा, वह अधिक शक्तिशाली हो गया। मालवा का प्रान्त उसके अधिकार में से ले लिया; अज़ीमुल्ला को नायब सूबेदार के पद से हटा दिया; जून २, सन् १७२५ ई० को राजा गिरधर बहादुर पुनः मालवा का सूबेदार नियुक्त हुआ।[1] अपनी प्रतिष्ठा का ढकोसला बनाए रखने के लिए, आठ दिन बाद सम्राट् ने निज़ाम को क्षमा प्रदान कर दी, उसे कृपापात्र बना लिया, किन्तु मालवा का सूबा पुनः उसे नहीं दिया गया।[2]

मालवा की सूबेदारी पर गिरधर बहादुर की नियुक्ति; जून २, १७२५ ई०

५. राजा गिरधर बहादुर की दूसरी सूबेदारी—उसकी हार एवं मृत्यु (जून २, १७२५ ई०—नवम्बर २६, १७२८ ई०)

मालवा का सूबेदार नियुक्त होने पर जब गिरधर बहादुर इस प्रान्त में आया, तब वह इलाहाबाद के छबीलेराम के पुत्र अपने चचेरे भाई,

---

[1] अ० म० द०, पत्र सं० ४० में लिखा है कि "मालवा प्रान्त की सूबेदारी मोहकम सिंह (चूड़ामन जाट के पुत्र ?) को दी गई है, अगर उसने स्वीकार न की तो राजा गिरधर बहादुर को शाही दरबार में बुलाया जावेगा, ऐसी खबर दिल्ली से आई है।" पत्र अगस्त ८, १७२५ ई० को अभझरा से लिखा गया था। गिरधर बहादुर की नियुक्ति से पहले की इस बातचीत का उल्लेख अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता है।

[2] इर्विन, २, पृ० १५२-३, २४२; कामवर, पृ० १९९; ख़फ़ी०, २, पृ० ९६२, ९७३; अजायब०, पत्र सं० १४४, पृ० ६ ब, ६४ ब

दया बहादुर को भी अपने साथ लेता आया और दोनों भाई प्रान्त के शासन को सुसंगठित एवं सुदृढ़ बनाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करने लगे।

निज़ाम के दक्षिण चले जाने के बाद एक वर्ष तक मालवा के प्रान्तीय एवं आन्तरिक मामलों की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया था। पुनः

उदाजी पवार को मालवा में चौथ आदि का अधिकार मिलना

निज़ाम एवं पेशवा के बीच मई १८, १७२४ ई० को सन्धि भी हुई थी। इन्हीं दोनों कारणों से मरहठों को मालवा में घुस पड़ने का अच्छा अवसर मिल गया। इस समय उदाजी पवार का सौभाग्य सितारा चमकने लगा था। मालवा प्रान्त में पेशवा की ओर से वसूल किये जाने वाले मोकासा कर में से पेशवा ने आधा विभाग दिसम्बर ३, १७२२ ई० के दिन उदाजी पवार को प्रदान कर दिया था। एक साल के बाद (दिसम्बर, १७२३ ई० में) पेशवा ने यह भी आज्ञा दे दी कि जिन जिन परगने का कर उदाजी को दिया गया था, वे परगने उदाजी के अधिकार में करवा दिए जावें; किन्तु सन् १७२३-४ ई० में पेशवा बहुत ही कम काल के लिए मालवा में ठहरा जिससे इस आज्ञा को वह कार्यरूप में परिणत न कर सका था, एवं जुलाई १७२४ ई० में पेशवा ने आगामी वर्ष (१७२४-१७२५ ई०) के लिए एक नया आज्ञा-पत्र दिया जिसके द्वारा धार तथा झाबुआ परगनों का मोकासा भी उदाजी को मिला।[1]

सन् १७२५ के अप्रेल एवं बाद के महीनों में अम्बाजी पन्त त्र्यम्बक पुरन्दरे बड़े उत्साह के साथ मालवा के पश्चिमी भाग में घूम घूम

---

[1] धारच्या पवार०, पृ० १०-१२; मालकम, १७३-४ फु० नो०; पे० द०, ३०, पृ० २७३

कर चौथ आदि वसूल कर रहा था। झालौद (पंच महल) से होता हुआ वह झाबुआ राज्य में जा पहुँचा, और थाँदला से ८ मील उत्तर-पश्चिम में परनालिया स्थान पर जाकर अप्रेल २१, १७२५ ई० को उसने डेरा डाला, और कोई एक सप्ताह भर वहाँ ठहरा रहा। मरहठों के इस आक्रमण से लाभ उठाने की आशा से सैलाना का जयसिंह भी अम्बाजी के साथ जा मिला। झाबुआ के राजा कुशालसिंह की मृत्यु होने पर सन् १७२५ ई० में उसका पुत्र अनूपसिंह झाबुआ की गद्दी पर बैठा था। पिछले कई सालों की चौथ आदि का कुल मिला कर कोई १,४०,००० रुपया मरहठों को देना बाक़ी निकलता था; अम्बाजी पन्त ने यह सब रुपया देने की ताक़ीद की। पहिले तो अनूपसिंह ने रुपया देने से बिलकुल इन्कार कर दिया, किन्तु बाद में शिवगढ़ के महन्त मुकन्दजी के बीच में पड़ने पर अनूपसिंह इस बात के लिए राज़ी हो गया कि अगर मरहठों को स्वीकार हो तो एक लाख रुपया देकर बक़ाया की सारी रकम की रसीद लिखा ली जावे।[1]

झाबुआ का मामला; अप्रेल, १७२५ ई०

---

[1] झाबुआ गज़े० (पृ० ४) में लिखा है कि होलकर के एक सूबा बिठोजी राव बोलिया ने थाँदला परगने में घुसकर बोर्डी नामक स्थान पर सन् १७२५ ई० में डेरा डाला; किन्तु यह कथन त्रुटिपूर्ण है। झाबुआ की चौथ आदि जुलाई १७२४ ई० में उदाजी पवार को प्रदान की गई और सन् १७२६ ई० तक उसी के नाम पर वसूल भी होती रही। इस समय होलकर का महत्त्व बिलकुल ही बढ़ा न था। प्रधान घटनाएँ तो ठीक जान पड़ती हैं, नाम की जो गलतियाँ हो गई हैं उनको दुरुस्त कर दिया गया है। पे० द०, ३०, पृ० २७२। झाबुआ के गज़ेटियर में जो विवरण है उसका आधार "बुले की बखर" है, किन्तु यह बखर विशेषतया दन्तकथाओं एवं परम्परागत विवरणों के ही आधार पर लिखी जान पड़ती है।

अमभरा और शाहजहाँपुर के परगनों से भी अम्बाजी ने चौथ आदि कर वसूल किये।[1]

गिरधर बहादुर की नियुक्ति के बाद के महीनों में पेशवा को दक्षिण के मामलों से अवसर न मिला कि मालवा की ओर ध्यान दे सके।

सन् १७२५ के कर आदि का बँटवारा

मुबारिज़ ख़ाँ पर विजय प्राप्त कर निज़ाम का आधिपत्य अधिक सुदृढ़ हो गया, और निज़ाम ने पुनः मरहठों में फूट डाल कर उन्हें आपस में लड़ाने की वही पुरानी चाल चली, जिससे पेशवा की राह में बहुत सी कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुईं। किन्तु इससे भी मालवा पर होने वाले मरहठों के आक्रमण बन्द नहीं हुए। मरहठों की सत्ता मालवा में धीरे-धीरे स्थापित होती जा रही थी, उनका आधार अधिकाधिक दृढ़ होता जा रहा था। प्रान्त के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ उन्होंने अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया था; कम्पेल के मण्डलोई, नन्दलाल ने मरहठों के साथ लेन-देन का धन्धा प्रारम्भ कर दिया था, और मरहठों को कर आदि देने का वादा भी वह कर चुका था। सन् १७२५ ई० में मालवा प्रान्त में मोकासा आदि कर वसूल करने के अधिकार पेशवा ने पुनः अपने सेनापतियों को प्रदान किये। अमभरा परगने का कर चिमाजी के एक सहकारी गोगाजी देवकाटे को दिया गया; झाबुआ तथा धार के परगनों का अधिकार उदाजी पवार के ही हाथ में रहने दिया; इन्दौर तथा मालवा प्रान्त के अन्य परगने पेशवा के ही अधिकार में थे, उनका प्रबन्ध कृष्णाजी हरि, त्र्यम्बक गंगाधर, केशो

---

[1] जिन व्यक्तियों को इन परगनों के कर प्रदान किये गए थे, उन्हें अम्बाजी पन्त के इस दौरे आदि के व्यय का भार उठाना पड़ा था। पे० द०, ३३, पृ० २७९।

महादेव एवं जानाजी भोंसले को सौंपा गया। चौथ, मोकासा आदि करों का बँटवारा किस किस प्रकार होना चाहिए, आदि बातों का भी सविस्तार निश्चय किया जाने लगा। विभिन्न सेनापतियों आदि जिन जिन व्यक्तियों को कुछ भी दिया गया था वह कर आदि वसूल करने और उस सब का पूरा-पूरा हिसाब रखने, तथा शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य करने में सहायता देने के लिए पेशवा ने केशो महादेव तथा कशो विश्वनाथ को नियुक्त किया। इन दोनों कर्मचारियों का वेतन भी पेशवा ने निश्चित कर दिया था।[1]

पहिले तो पेशवा ने इरादा किया कि वह स्वयं मालवा पर चढ़ाई करे, और उस प्रान्त को जीत कर वहाँ अपने थाने स्थापित करे।[2] किन्तु

मालवा में मरहठों की सेनाएँ, १७२५-२६ ई०

जब कार्यवश वह स्वयं न जा सका तब सन् १७२५ के आक्टोबर महीने में दशहरा का उत्सव हो जाने के बाद, अपने कई सेनापतियों को उसने भेजा कि मालवा में जाकर चौथ आदि वसूल करें, और कर आदि सम्बन्धी जो-जो आज्ञाएँ गत जुलाई महीने में दी गई थीं उनको भी परिपूर्ण करने का प्रयत्न करें। मरहठों के एक दल ने अम्बाजी पन्त पुरन्दरे के सेनापतित्व में मालवा में प्रवेश किया और फ़रवरी, १७२६ ई० में मन्दसौर तक जा पहुँचा। दूसरा दल सन्तोजी भोंसले के नायकत्व में भेजा गया। तीसरे दल का नेतृत्व पेशवा का एक सरदार केशो महादेव कर रहा था; जो मरहठे सेनापति बरार में उपस्थित थे, पेशवा ने उन्हें भी

[1] पे० द०, ३०, पृ० २७२, २७३, २७५

[2] पे० द०, १२, पत्र-संख्या ७

आज्ञा दी कि वे केशो महादेव के साथ मालवा जावें और उसकी सहायता करें; यह सम्मिलित तीसरा दल अकबरपुर के घाटे पर नर्मदा पार कर मालवा में जा घुसा।[1]

मालवा में आते ही दया बहादुर पूर्ण उत्साह के साथ सारे प्रान्त के विद्रोहियों तथा बाह्य आक्रमणकारियों को दबाने में लग गया। एवं जब मरहठों के ये दल मालवा में आ घुसे तब तो उसने इनके चौथ आदि कर वसूल करने में पूरी-पूरी बाधा दी। केशो महादेव ने इस बात की सूचना राजा शाहू को दी, जिसपर शाहू ने मार्च ४, १७२६ ई० के लगभग गिरधर बहादुर को एक पत्र लिखा और इस बात का आग्रह किया कि वह इस प्रकार की बाधा न दे, किन्तु गिरधर बहादुर ने इस पत्र की ओर बिलकुल ध्यान न दिया।

दया बहादुर का मरहठों को मालवा से निकाल बाहर करना; मार्च, १७२६ ई०

दया बहादुर ने इस तेजी के साथ मरहठे आक्रमणकारियों का पीछा किया कि उन दलों के सेना-नायक आत्मसमर्पण कर दया बहादुर के साथ समझौते की बातचीत करने लगे। मरहठे सेनापतियों के आपसी झगड़ों से भी दया बहादुर को बहुत सहायता मिली। केशो महादेव एवं उसके साथी सेनापतियों को तो दया बहादुर ने कोई डेढ़ महीने तक नज़रबन्द रखा, उनपर कड़ी निगाह रखी जाती थी। मार्च ७, १७२६ ई० के बाद इन मरहठे सेनानायकों को मालूम हुआ कि अम्बाजी पन्त भी मालवा में पास ही थे, तब साहस कर वे बड़ी कठिनाई के साथ वहाँ से भाग सके। किन्तु शीघ्र ही उन सेना-

[1] पे० द०, १३, पत्र संख्या ५

नायकों के आपसी झगड़े फिर शुरू हो गए और कुछ ही काल के बाद मरहठों की वह सेना छोटे-छोटे परस्पर-विरोधी दलों में विभक्त हो गई। कुछ मरहठे बून्दी और कोटा तक जा पहुँचे और सिरोंज और आलमगीरपुर के आस-पास के प्रान्त को लूटने लगे; एक दूसरा दल पुनः उज्जैन की ओर लौट गया और उज्जैन के आस-पास ही उसने लूट-खसोट शुरू की। किन्तु इस समय मुग़ल सेना इतनी सावधान तथा उत्साहपूर्ण हो गई थी कि इस बार की ये सारी चढ़ाइयाँ विफल हुई और शाही सेना ने मरहठे सेनानायकों को मालवा में से निकाल बाहर किया। यद्यपि मरहठों के दल के दल मालवा में बड़ी बड़ी दूर तक घूमे, किन्तु इतना सब प्रयत्न करने पर भी कहीं से भी वे एक रुपया तक वसूल न कर पाये।[1] अम्बाजी पन्त भी मालवा से गुजरात की ओर चले गए, और वहाँ सन् १७२६ ई० के मई-जून महीनों में उन्होंने कुछ चौथ आदि कर वसूल किए। मार्च १७२६ ई० में अम्बाजी पन्त ने सरबुलन्द ख़ाँ के साथ शान्ति-पूर्वक एक समझौता कर लिया था, जिसके द्वारा सरबुलन्द ख़ाँ ने मरहठों को गुजरात एवं माही नदी के तीर पर स्थित मालवा के परगनों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने की आज्ञा दे दी थी। इस समझौते के कारण ही अम्बाजी पन्त कुछ रुपया वसूल कर सके थे।[2]

[1] पे० द०, १३, पत्र सं० ६-९; अजायब०, पत्र सं० १८०, पृ० ६६ ब-६७ अ

[2] मिरात० (२, पृ० ९२-३) के आधार पर इर्विन ने (२, पृ० १९२-३) कण्ठाजी कदम के साथ आक्टोबर, १७२६ में एक समझौता होने का उल्लेख किया है, किन्तु यह समझौता कोई नया समझौता न था; अम्बाजी पन्त पुरन्दरे के साथ जो समझौता पहिले किया गया था, उसीका अनुमोदन आक्टोबर, १७२६ ई० में पुनः

किन्तु इस बार की विफलता से भी मरहठे सेनानायक किसी भी प्रकार हतोत्साह नहीं हुए, और सन् १७२६ की बरसात समाप्त होते ही वे पुनः मालवा पर चढ़ाई करने को रवाना हुए। मालवा और गुजरात की

मालवा में उदाजी पवार को कुछ हिस्सा मिलना, सन १७२६ ई०

चौथ आदि में उदाजी पवार को जो हिस्सा मिलता था, उसके बारे में राजा शाहू ने उदाजी से समझौता कर लिया; उदाजी के हिस्से की वसूली आदि का हिसाब रखने के लिए पेशवा ने सखो महादेव को नियुक्त किया और रामचन्द्र मल्हार को सखो महादेव का मुहर्रिर बना कर भेजा। उदाजी को आज्ञा दी गई कि वे माण्डू से दक्षिण के मैदानों की चौथ आदि एकत्रित कर लें, और उन्हें इस बात की भी ताकीद कर दी गई कि पिछले फ़रवरी मास में अम्बाजी पन्त को जो रुपया देने का नन्दलाल मण्डलोई ने वादा किया था वह भी पूरा २ वसूल कर लें। सरबुलन्द ख़ाँ; गिरधर बहादुर, एवं माण्डू, सारंगपुर, उज्जैन तथा मन्दसौर के फ़ौजदारों को भी चिट्ठियाँ लिखी गईं कि वे उदाजी पवार की सहायता करें।[1] किन्तु इस समय मरहठे शासकों तथा सेनापतियों का

किया गया था। वाड़ ने राजा शाहू के अप्रेल २२, १७२६ ई० (१ रमजान, ११३८ हि० सन्) के एक हुक्म की प्रतिलिपि दी है जिसमें अम्बाजी पन्त के साथ होने वाले पहिले के समझौते का भी उल्लेख मिलता है; उस समझौते के आधार पर एकत्रित होने वाली चौथ और सरदेशमुखी के बँटवारे का खुलासा उस हुक्म में किया गया था। इस हुक्म में मालवा की चौथ आदि का भी उल्लेख मिलता है किन्तु इस उल्लेख से केवल माही नदी के पास के झाबुआ, अमझरा आदि परगनों का ही निर्देश हो सकता है, सारे मालवा प्रान्त का नहीं। वाड़, १, पत्र संख्या १०६; बड़ोदा०, १, पत्र सं० ३

[1] धारच्या पवार०, पृ० १३-१९; पे० द० ३०, पृ० २७८

ध्यान गुजरात और दक्षिण के मामलों की ओर ही आकर्षित हो रहा था।

आक्टोबर १७२६ से लेकर जून १७२७ ई० तक मरहठों का भाग्य-सूर्य मालवा में ग्रसित ही रहा; इन महीनों में उनको मालवा में किसी भी प्रकार की कोई भी सफलता प्राप्त न हुई। इस काल में चौथ बिलकुल ही वसूल नहीं हो पाई; मालवा में नियुक्त मरहठों का कर्मचारी सखो महादेव एक कौड़ी भी पेशवा के ख़जाने में जमा न कर सका, अतएव जो कुछ उसे देना पड़ता था उससे छूट चाहने के लिए उसे पेशवा की सेवा में निवेदन करना पड़ा।[1] प्रान्त भर में मुग़ल शासन को सुदृढ़ और सुसंगठित बनाने के लिए गिरधर बहादुर ने भरसक प्रयत्न किया। रामपुरे का परगना मेवाड़ के अधीन हो गया था, किन्तु उसपर भी पुनः मुग़ल आधिपत्य स्थापित कर उसने शाही कर आदि वसूल करना चाहा। किन्तु द्रव्य के अभाव से उसे बहुत असुविधा हुई और उसके प्रयत्नों में अनेक बाधाएँ उठ खड़ी हुईं। सैनिकों की तनख़्वाहें बहुत बक़ाया रह जाती थीं; सैनिक उसके लिए शोर गुल मचाते थे, और कई बार विद्रोही हो कर वे अपने अफ़सरों का विरोध भी कर बैठते थे। ज़मींदार भी प्रजा पर बहुत अत्याचार करते थे और जब कभी उनके अत्याचारों में कमी करने के लिए उन पर ज़ोर डाला जाता था वे सूबेदार के विरोधी बन बैठते थे।[2]

मालवा में गिरधर बहादुर का शासन - प्रबन्ध

निज़ाम के काका, हमीद ख़ाँ को, जो 'जंगली शाहज़ादे' के नाम

---

[1] पे० द०, ३०, पृ० २८१-२

[2] अजायब०, पत्र सं० १७५, १७६, १८०, १८१, २०४; पृ० ६५अ-ब, ६४ब-६५अ, ६७ अ-ब, ८१ब-८२अ

से भी पुकारा जाता था, गुजरात छोड़ कर दक्षिण में चला जाना पड़ा था। सन् १७२७ ई० की ग्रीष्म ऋतु में उसने मरहठों से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया; उसका इरादा था कि इस सहायता से लाभ उठा कर पहिले मालवा को जीते और फिर गुजरात पर अपना आधिपत्य स्थापित करे, किन्तु मरहठों ने उसके इस प्रस्ताव की ओर ध्यान नहीं दिया।[1] इसी वर्ष दशहरे के अवसर पर (सितम्बर १३, १७२७ ई०) पूना में विस्तृत सैनिक तैयारियाँ की गईं। फ़रवरी, १७२८ ई० में पालखेड़ के युद्धक्षेत्र में निज़ाम को बुरी तरह से हराकर पेशवा ने निज़ाम से अपनी मनचाही शर्तें स्वीकार करवा ली थीं। कुछ वर्षों के लिए अब पेशवा को निज़ाम की ओर से किसी भी प्रकार के ख़तरे की आशंका न रही और वह निश्चिंत हो कर मालवा-विजय का उपाय सोचने लगा।

सन् १७२८ ई० के प्रारम्भ में ही मरहठों के दल पुनः मालवा की ओर चले। बकानेर के परगने तथा माण्डू से दक्षिण के समतल प्रदेश को उन्होंने अपने अधिकार में कर वहाँ का पूरा प्रबन्ध किया। किन्तु मरहठों का दल इससे आगे न बढ़ सका, क्योंकि उनको राह में ही रोकने के लिए दया बहादुर ससैन्य झाबुआ जा पहुँचा था; सन्ताजी भोंसले भी दया बहादुर से जा मिला था, जिससे दया बहादुर की शक्ति भी बढ़ गई थी। किन्तु माण्डू के मुसलमान कार्यकर्ता ने मरहठों से मेल कर लिया, अपने परगने की चौथ देने के लिए भी उसने अपने सहायकों को आज्ञा दे दी, जिससे उस प्रदेश की चौथ मरहठे वसूल कर सकें।[2]

---

[1] इर्विन, २, पृ० १८९; पे० द०, १०, पत्र सं० ३७

[2] पे० द०, १३, पत्र सं० ११

किन्तु धीरे-धीरे पालखेड़ के युद्धक्षेत्र में मरहठों द्वारा प्राप्त विजय का प्रभाव अधिकाधिक स्पष्ट रूपेण दृष्टिगोचर होने लगा। मई २६, १७२८ ई० को पेशवा ने मालवा तथा उसकी सीमा पर स्थित विभिन्न राज्यों, ज़मीदारियों एवं जागीरों के मालिकों तथा प्रान्त के अनेक परगनों के कर्मचारियों को पत्र लिखे कि वे मरहठों की चौथ तथा अन्य कर पेशवा द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति को चुका दें। इस कर में से बहुत बड़ा विभाग उदाजी पवार को मिला; इसी समय से मल्हार होलकर का भी मालवा में महत्त्व बढ़ने लगा और इसी बँटवारे में कई परगने आधे उदाजी पवार को मिले और बाकी आधा हिस्सा मल्हार होलकर के हिस्से में आया।[1] उदाजी पवार का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत होता जा रहा था, उसका महत्त्व भी बढ़ रहा था, तथा यह सम्भव था कि वह पेशवा के आधीन न रह कर स्वयं स्वतन्त्र होने की सोचने लगे; इन सब प्रवृत्तियों को दबाने एवं उदाजी पवार के महत्त्व को कम करने के उद्देश्य से ही पेशवा ने इस समय मल्हार होलकर को भी मालवा में नियुक्त किया। पेशवा नहीं चाहता था कि अकेला उदाजी पवार ही मालवा का एक-मात्र शासक बन बैठे; तब भी वह पेशवा के ही आधीन रहता, किन्तु फिर भी पेशवा को यही अधिक उचित्त तथा निरापद प्रतीत हुआ कि मालवा में उदाजी का एक और सहयोगी नियुक्त किया जावे।

उदाजी पवार तथा मल्हार होलकर को मालवा में हिस्सा मिलना; मई, १७२८ ई०

मालवा पर निरन्तर होने वाले मरहठों के इन आक्रमणों से मुग़ल

[1] धारच्या पवार०, पृ० २७-३८; मालकम, १, पृ० १४६-७

सम्राट् के शाही दरबार में बहुत खलबली मच गई। जयसिंह को बुला भेजा और मरहठों का सामना करने के लिए मालवा और गुजरात के प्रान्तों में बड़ी-बड़ी सेनाएँ भेजने का प्रबन्ध किया जाने लगा। किन्तु जयसिंह को यही उचित प्रतीत हुआ कि वह आमेर ही ठहरा रहे; वह दिल्ली नहीं गया, और अगस्त, १७२८ ई० में उत्तरी भारत में रहने वाले पेशवा के वकील, दादो भीमसेन को बुला कर जयसिंह ने पेशवा से यह आग्रह करने को कहा कि शीघ्रातिशीघ्र मरहठों की बहुत बड़ी सेनाएँ मालवा में भेजे, क्योंकि कुछ बल का प्रयोग किये बिना ही सम्राट् से मरहठों की माँगें स्वीकार करवा लेना सम्भव न था।[1]

मालवा के लिए सम्राट् की चिन्ता

इतना इशारा पेशवा के लिए पर्याप्त था। आक्टोबर, १७२८ ई० के आरम्भ में ही पेशवा ने सन्तोजी भोंसले को समझा-बुझा कर सेनाओं के सेनापतित्व के बारे में समझौता कर लिया। कुछ ही काल बाद मरहठों की सेनाएँ दक्षिण से रवाना हुईं। पेशवा ने अपने छोटे भाई, चिमाजी बल्लाल को इस सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया; उदाजी पवार तथा मल्हार होलकर भी उसके साथ चले। यह सेना नवम्बर २४, १७२८ ई० को नर्मदा के दक्षिण तीर पर पहुँच गई। दूसरे दिन नदी पार कर सेना ने धरमपुरी में पड़ाव डाला। वहाँ से नवम्बर २६ को बड़े वेग के साथ सेना उत्तर की ओर चल पड़ी; माण्डू के पास घाट चढ़ कर,

मरहठों की सेनाएँ लेकर चिमाजी का मालवा पर चढ़ाई करना; नवम्बर, १७२८ ई०

[1] पे० द०, १३, पत्र सं० १०

नवम्बर २७ को नालछा में मुक़ाम किया।[1]

शाही सेना मालवा के सूबेदार गिरधर बहादुर एवं उसके चचेरे भाई दया बहादुर की अधीनता में बढ़ी।[2] इस समय दया बहादुर ही मालवा की प्रान्तीय शाही सेना का सेनापति, एवं यहाँ के सूबेदार का प्रधान सहायक तथा मुख्य कार्यकर्ता था।

अमझरा का युद्ध; गिरधर बहादुर की पराजय और मृत्यु; नवम्बर, २९, १७२८ ई०

मरहठों की सेनाओं की चढ़ाई का विवरण सुन कर गिरधर बहादुर ने उनका सामना करने की सोची और निश्चय किया कि जब वे घाट पर चढ़ें तब ही उनपर आक्रमण किया जावे। गिरधर बहादुर का ख़याल हुआ कि, यह सोच कर कि माण्डू के क़िले के पास के पायाघाट की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया होगा, मरहठे माण्डू के पास न चढ़ कर अमझरा के पास के घाट से मालवा पर चढ़ाई करेंगे, एवं वह अपनी सेना के साथ अमझरा जा पहुँचा और पूरी मोर्चाबन्दी कर वहाँ सुदृढ़ स्थान पर डट गया।[3] किन्तु जब मरहठे उस राह आते न दिखाई दिये,

---

[1] पे० द०, ३०, पत्र सं० ५५, ३२६, पृ० २८३-४; २२, पत्र-सं० ८

[2] वंशभास्कर (४, पृ० ३१२५-६) में लिखा है कि सम्राट् ने कोटा के दुर्जनसाल हाड़ा को भी ससैन्य दया बहादुर की सहायतार्थ भेजा था; किन्तु दुर्जनसाल अधिक काल तक मालवा में न ठहरा, मरहठों से लड़ने के लिए अपनी सेना को वहीं छोड़कर वह स्वयं कोटा को लौट गया।

[3] यह सम्भव है कि नन्दलाल मण्डलोई ने शाही-सेना की चाल तथा उनकी मोर्चा-बन्दी का पूरा-पूरा पता आक्रमणकारियों को दे दिया हो। किन्तु यदि नन्दलाल स्वयं मरहठों का सामना करने का इरादा भी करता तो भी ऐसा करना उसके लिए बिलकुल ही सम्भव न था, क्योंकि उसके सैनिक घुड़सवार आदि सब मिल कर दो हज़ार से ज्यादा न थे। मालकम, १, पृ० ८२-४ फुट नोट

तब उसे आशंका हुई कि शायद वे माण्डू के पास की घाटी से चढ़ कर मालवा में घुसने का प्रयत्न कर रहे होंगे, और नवम्बर २६,१७२८ ई० को वह धार की ओर रवाना हुआ। वह अमझरा से कुछ ही दूर गया होगा कि मरहठे घुड़सवार सामने से उसकी तरफ़ आते हुए उसे मिले। दक्षिण के उन चपल फुर्तीले घुड़सवारों ने गिरधर बहादुर को इतना अवसर न दिया कि वह अपनी सेना को सुसंगठित कर, मरहठों का सामना करने के लिए ठीक तौर पर उसकी व्यूह-रचना कर सके। तत्काल घनघोर युद्ध मच गया, जिसमें गिरधर बहादुर तथा दया बहादुर दोनों खेत रहे।[1] शाही सेना की पूर्ण पराजय हुई; मुग़ल सैनिकों को सब कुछ छोड़ कर भागना पड़ा, और विजयी मरहठों ने मुग़लों के केम्प को ख़ूब लूटा। तोपें, निशान, नगाड़े और दूसरी वस्तुओं के साथ ही साथ अठारह हाथी भी मरहठों को लूट में हाथ लगे।[2]

मरहठों की इस विजय का वृत्तान्त बहुत ही शीघ्र सारे उत्तरी भारत में फैल गया; पेशवा उस समय बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई करने के लिए जा रहा था; चिमाजी ने नवम्बर ३० को अपनी विजय का पूर्ण विवरण हरकारों द्वारा पेशवा की सेवा में भेजा, किन्तु चिमाजी का यह ख़त पहुँचने के पहिले ही पेशवा ने चिमाजी की विजय की ख़बर सुन ली। बधाई के ढेरों पत्र चिमाजी के पास पहुँचे; इस विजय का वृत्तान्त सुन कर राजा शाहू को

---

[1] पे० द०, १३, पत्र सं० २३, २५, २७, १७; अजायब०, पत्र सं० १८२, २०१, पृ० ३ अ, ६९अ, ७९ ब। अमझरा के युद्ध की तारीख़ एवं उस युद्ध सम्बन्धी विस्तृत विवरण के लिए इस अध्याय के अन्त में परिशिष्ट 'क' और 'ख' देखो।

[2] पे० द०, ३०, पत्र सं० ५९; १३, पत्र सं० २५-२६

भी बहुत सन्तोष हुआ।[1] इस विजय का परिणाम यह हुआ कि मालवा में मुग़लों के विरोध का अन्त होगया; मरहठों को रोकने वाला कोई न रहा; मालवा एक प्रकार से पूर्णरूपेण अरक्षित हो गया। मुग़ल सेना की इस हार का नैतिक प्रभाव अत्यधिक भयंकर और अनर्थकारी हुआ; मालवा के स्थानीय राजाओं, ज़मींदारों, जागीरदारों आदि ने मुग़ल सत्ता की निर्बलता का सच्चा एवं नग्न स्वरूप देख लिया।

६. भवानीराम की सूबेदारी
(नवम्बर २६, १७२८ ई०—नवम्बर १७२६ ई०)

अमझरा के युद्ध में (नवम्बर २६, १७२८ ई०) गिरधर बहादुर और दया बहादुर दोनों के मारे जाने के बाद, गिरधर बहादुर के पुत्र, भवानीराम ने मालवा के शासन-प्रबन्ध का कार्य अपने हाथ में ले लिया। सम्राट् ने भवानीराम को एक पत्र लिख भेजा, जिसमें उसके पिता की मृत्यु पर शोक प्रगट कर भवानीराम के साथ समवेदना प्रदर्शित की, और अन्त में इस बात का आग्रह किया कि उज्जैन में ही रह कर भवानीराम आक्रमणकारियों से मालवा को बचावे। भवानीराम को 'राजा' तथा "चिमना बहादुर" के ख़िताब दिए गए और उसके पिता की सारी जागीर

---

[1] पे० द०, १३, पत्र सं० १५। चिमाजी की विजय की उड़ती हुई ख़बर दिसम्बर ९, १७२८ ई० को ही पेशवा के पास पहुँच गई थी। चिमाजी का पत्र लेकर हरकारे दिसम्बर २०, १७२८ ई० के लगभग पेशवा के पास पहुँच पाये। पे० द०, ३०, पृ० २८७। शाहू को सूचना एवं उसका सन्तुष्ट होना, १३, पत्र-संख्या १७; बाजीराव १३, पत्र सं० २३। विभिन्न मरहठे सेनापतियों, व्यापारी-साहूकारों, कार्यकर्ता एवं कर्मचारियों आदि के बधाई-पत्रों के लिए देखो पे० द०, १३, पत्र सं० १६. २५, २६, २७, २८, ३१, ३२, ३५, ३८, ४३

भी उसे प्राप्त हो गई। सम्राट् ने भवानीराम के पास दो लाख रुपया भी भेजा। सम्राट् ने सैयद नज़मुद्दीन अली ख़ाँ, दुर्जनसिंह हाड़ा, मुहम्मद उमर ख़ाँ, एवं सवाई जयसिंह के द्वारा उदयपुर के महाराणा को भी लिखवा भेजा कि वे सब ससैन्य मालवा में जाकर भवानीराम की सहायता करें।[1]

मालवा में मरहठों की सेना; उज्जैन का घेरा

अमझरा के युद्ध के बाद चिमाजी बल्लाल ने अमझरा में ही डेरा डाला और तीन दिन तक सेना ने वहीं विश्राम लिया। दोनों नागर भाइयों की पराजय और मृत्यु से प्रान्त में उठने वाली प्रतिक्रिया एवं तत्परिणाम-स्वरूप पैदा होने वाली नवीन राजनैतिक परिस्थिति पर भी चिमाजी की नज़र थी। दिसम्बर ३, को चिमाजी पुनः उत्तर की ओर चल पड़े और उसी दिन (अमझरा से १० मील उत्तर-पूर्व में स्थित) आहू में जाकर मुकाम किया, और तीन दिन बाद देपालपुर जा पहुँचे। दिसम्बर १२, १७२८ ई० को वे उज्जैन के पास पहुँचे और चार दिन तक वहीं ठहरे रहे। किन्तु उदाजी पवार के सेनापतित्व में मरहठों की सेना का अग्रभाग सीधा उज्जैन जा पहुँचा और दिसम्बर ६, १७२८ ई० को उज्जैन का घेरा डाला। दिसम्बर १६ को चिमाजी भी उज्जैन जा पहुँचे। गिरधर बहादुर ने उज्जैन के चारों तरफ़ परकोटा बनवा दिया था। जब भवानीराम ने मरहठों के उज्जैन की ओर बढ़ने की सुनी तब

[1] अजायब०, पत्र सं० १८२, १८४, १८९; पृ० ६९अ, ६९ब,-७०अ, ७१ अ-ब; पे० द०, १३, पत्र संख्या ५१। भवानीराम की नियुक्ति का समाचार जनवरी, १७२९ ई० के दूसरे सप्ताह में ही मालवा में ज्ञात हुआ। पे० द०, १३, पत्र सं० ३० जनवरी मास के अन्तिम दिनों या फरवरी में ही लिखा गया होगा।

उसने जल्दी-जल्दी नए सैनिक भर्ती किए, धान्य आदि का प्रबन्ध किया और उज्जैन की रक्षा के लिए वह स्वयं उद्यत हो गया। एक (चान्द्र) मास और पाँच दिन तक घेरा लगे रहने के बाद जनवरी १३, १७२६ को भवानीराम ने दुर्ग से निकल कर मरहठों पर आक्रमण किया; हाथों-हाथ युद्ध हुआ, जिसमें दोनों दलों की बहुत क्षति हुई, किन्तु मरहठों को पीछे हटना पड़ा; वे कालियादह चले गए, जहाँ दो दिन तक उनका मुकाम रहा। भवानीराम की इस सफलता का वृत्तान्त सुन कर सम्राट् प्रसन्न हुआ; और भवानीराम एवं उसके दूसरे भाइयों के लिए, जिन सबने मिल कर उज्जैन की रक्षा की थी, उपहार-स्वरूप अनेकानेक वस्तुएँ भेज कर उनके प्रति सम्राट् ने अपना संतोष तथा अपनी गुण-ग्राहकता प्रगट की।[1]

उज्जैन एवं पड़ोस के परगनों से चौथ आदि करों की बल-पूर्वक वसूली

दिसम्बर १२, १७२८ ई० को बाजीराव का एक पत्र चिमाजी को मिला, जिसमें पेशवा ने आदेश दिया कि प्रान्त के शासन का पूरा प्रबन्ध करने के बाद चिमाजी रुपया एकत्रित करने के लिए अन्यत्र चले जावें। पेशवा ने यह भी लिखा था कि उज्जैन के शहर से बहुत कुछ द्रव्य वसूल किया जावे और गिरधर बहादुर की सारी जागीर को अपने अधिकार में लेकर वहाँ का लगान आदि भी एकत्रित कर लेना होगा। जब उज्जैन का घेरा डाले चिमाजी वहीं ठहरे हुए थे, उन्होंने आस-पास के नौलाई,

[1] अजायब० में यह बात निश्चित तौर से लिखी है कि यह घेरा १ चान्द्र मास और ५ दिन तक पड़ा रहा। जनवरी १३, १७२९ को घेरा उठा एवं दिसम्बर ९, १७२८ ई० को ही यह घेरा प्रारम्भ हुआ होगा। अजायब०, पत्र सं० १८८, पृ० ७०ब-७१अ

धार, रतलाम, बदनावर आदि परगनों से चौथ एवं अन्य कर वसूल करने के लिए अपनी सेना के एक दल को भेजा। उज्जैन के कोतवाल ने भी ५०००) रु० दे दिए। किन्तु दक्षिणी मालवा में चौथ आदि कुछ भी वसूल न हो सका। हिसाब आदि सम्बन्धी कुछ बातों को तय करने एवं विभिन्न गाँवों से चौथ आदि एकत्रित करने के लिए कहने को चिमाजी ने नन्दलाल मण्डलोई को भी बुला भेजा। जनवरी २, १७२६ ई० को नन्दलाल मरहठों के केम्प में उपस्थित हुआ, और बाद में उसे बहुत सा द्रव्य देना पड़ा।[१] किन्तु उपर्युक्त रक़मों के अतिरिक्त अधिक द्रव्य वसूल न हो सका।

कालियादह से जनवरी १५, १७२६ ई० को रवाना होकर मरहठों का दल कायथ तथा शाहजहाँपुर होता हुआ सारंगपुर की ओर चला।

मरहठों का राजपूताना की ओर बढ़ना

सारंगपुर का फ़ौजदार मरहठों के इस दल का सामना न कर सका; मरहठों ने सारंगपुर को बहुत लूटा और शहर को उजाड़ दिया (जनवरी १८, १७२६ ई०)। सारंगपुर से मरहठे सिरोंज और अहीरवाड़ा की ओर बढ़े। सम्राट् ने नज़मुद्दीन ख़ाँ सैयद को भवानीराम की सहायतार्थ भेजा था, वह इस समय सिरोंज में ही था। यह सुन कर कि मरहठे सिरोंज की ओर बढ़ रहे थे सम्राट् ने भवानीराम को आज्ञा दी कि यदि आवश्यक हो तो वह भी जाकर सैयद की सहायता करे।

[१] पे० द०, ३०, पृ० २८४; २२, पत्र सं० ८-९; मालकम, १, पृ० ७२ फु० नो०; अजायब०, पत्र सं० १८३, १८८, १९०, १९८, २०३, २०४, १८७, पृ० ३ अ, ६९ब, ७१अ, ७१ ब, ७३ ब, ७७ ब, ८० ब, ८१ ब, ७० ब

भवानीराम को यह भी आदेश हुआ कि चन्देरी के राजा दुर्जनसिंह से मैत्री कर मरहठों को दबाने में उससे भी सहायता प्राप्त करे। किन्तु जब मरहठों ने सुना कि सिरोंज में नज़मुद्दीन अली ससैन्य उनका सामना करने को तैयार बैठा है, वे कोटा और बून्दी की ओर पलट गए। फ़रवरी ५ को वे कोटा और बून्दी के राज्यों में जा पहुँचे और बारह दिन तक वहीं आस-पास के प्रदेश में घूमते रहे; राजगढ़ के उमट राजा से चौथ भी वसूल की। फ़रवरी २०, १७२९ ई० को उन्होंने भानपुरा में पड़ाव डाला। वे बहुत थोड़ी-थोड़ी दूर बढ़ते थे; फरवरी २३ को वे रामपुरा से निकले और एक सप्ताह बाद (मेवाड़ राज्य में) जावद में मुकाम किया। इसी समय मालवा के दक्षिणी भाग में अपना अधिकार बनाए रखने के लिए पीलाजी जाधव को ससैन्य धार और अमझरा की ओर भेजा।[1]

दक्षिणी मालवा में मुग़ल-शासन पूर्णरूपेण विशृंखलित हो गया था। राजा शाहू ने यह प्रान्त पेशवा बाजीराव तथा उसके भाई चिमाजी

---

[1] पे० द०, ३०, पृ० २८४-२८५; २२, पत्र सं० ९; १३, पत्र सं० ३०। राजवाड़े, ६, पत्र सं० ६०४। अजायब०, पत्र सं० १९०, १९१, २०१, १९६; पृ० ७२ अ, ७२ब-७३ब, ७९अ-ब, ७५ ब

बाजीराव का ख़याल था कि सम्राट् मालवा की सूबेदारी पर किसी दूसरे व्यक्ति को नियुक्त कर उसे ही मरहठों को निकाल बाहर करने के लिए ससैन्य मालवा में भेजेगा। पेशवा ने चिमाजी को लिखा था कि ऐसे समय यदि आवश्यकता होगी तो वह स्वयं आकर चिमाजी की सहायता करेगा, किन्तु ऐसी कोई आवश्यकता न पड़ी। पे० द०, १३, पत्र सं० ३०

नजमुद्दीन अली ख़ाँ के साथ न तो मरहठों का युद्ध हुआ और न उसने भवानीराम की मदद की, फिर भी उसने सम्राट् को झूठमूठ लिख भेजा कि उसने सिरोंज की ओर से मरहठों को मार भगाया। अजायब०, पत्र सं० १९५, २०४; पृ० ७५ अ-ब, ८२ अ

को दे दिया। अन्य मरहठा सेनापति तथा कर्मचारी इस प्रदेश को लूट कर धन एकत्रित करने के लिए उत्सुक थे। सन् १७२६ ई० का आधा फ़रवरी मास बीत चुका था, जब सियाजी गूजर ने नर्मदा पार कर माण्डू से दक्षिण में स्थित समतल प्रदेश को तथा महेश्वर, धरमपुरी के परगनों को लूटा और कुल मिला कर कोई १०,०००) रु० एकत्रित किया। अप्रेल मास में सवाई कट सिंह कदमराव ने दक्षिणी मालवा पर चढ़ाई की और डूँगरपुर, बाँसवाड़ा और झाबुआ के राज्यों तक से चौथ वसूल की; राह में पड़ने वाले माण्डू परगने को उजाड़ कर दिया। इन सब अनधिकारी आक्रमण-कारियों से राजा शाहू बहुत ही अप्रसन्न हुआ, उसने उनकी बहुत भर्त्सना भी की।[1]

दक्षिण-पश्चिमी मालवा में मुग़ल-शासन-संगठन का विशृंखलित होना

ज्योंही मरहठे उज्जैन से रवाना हुए, उज्जैन के बचाव के लिए भवानीराम अधिक प्रयत्नशील हुआ, किन्तु उसने इस बात का अनुभव किया कि उसके पास इतना द्रव्य न था कि वह अपना यह इरादा पूर्ण कर सके। मरहठों का सामना करने के लिए जो नए-नए सैनिक गिरधर बहादुर ने भर्ती किए थे, उनका वेतन भी अभी तक देना बाक़ी था। सम्राट् ने दो लाख रुपये भेजे थे, किन्तु वह बहुत ही कम था, उससे इतना सब करना असम्भव था; और कहीं से भी अधिक

भवानीराम की आर्थिक कठिनाइयाँ

[1] पे० द०, १३, पत्र सं० ४२; वाड़, १, पत्र सं० २१४; अजायब०, पत्र सं० १८५, पृ० ७० अ-ब

द्रव्य पाने की सम्भावना नहीं रह गई थी। पुनः यद्यपि सम्राट् ने भवानीराम से वादा किया था कि गिरधर बहादुर की सारी जागीर उसे दे दी जावेगी, किन्तु अभी तक इस सम्बन्ध में कोई भी शाही हुक्म निकला न था, जिससे उस जागीर में से वह कुछ भी लगान आदि वसूल न कर सका था।[1]

सम्राट् ने अधिक सेना भेजने का भी वादा किया था, किन्तु उस सेना के आने के भी अब तक कोई लक्षण नहीं देख पड़ते थे। सम्राट् ने सैयद नज़मुद्दीन अली ख़ाँ को भेजा था कि वह जाकर भवानीराम की सहायता करे किन्तु उसके आने से भवानीराम की कठिनाइयाँ ही अधिक बढ़ीं। जब मरहठे राजपूताना की ओर चले गए तब नज़मुद्दीन अली ख़ाँ ने भवानीराम को लिख भेजा कि सम्राट् ने नज़मुद्दीन को ही मालवा का सूबेदार नियुक्त किया था। नज़मुद्दीन ने भवानीराम को यह भी हुक्म दिया (?) कि जब तक वह स्वयं उज्जैन न पहुँच जावे तब तक जो कुछ भी लगान भवानीराम ने वसूल कर लिया हो उसे अमानत ही रखे, तथा इसके अतिरिक्त अन्य दूसरे कर आदि वसूल कर उसका रुपया नज़मुद्दीन अली के पास शीघ्र ही भेजने का प्रबन्ध भी करे। इधर सम्राट् को ज्ञात हुआ कि नज़मुद्दीन भवानीराम के कार्य में हाथ डाल रहा था, तब सम्राट् ने बारंबार नज़मुद्दीन को लिखा कि वह इस प्रकार हस्तक्षेप न करे और स्वयं धामुनी की अपनी फ़ौजदारी पर ही सीधा लौट जावे,

भवानीराम और सैयद नज़मुद्दीन अली ख़ाँ

[1] अजायब०, पत्र सं० १८५, १९०, १९१, २०३; पृ० ७० अ, ७२अ, ७३ अ-ब, ८०ब

किन्तु नज़मुद्दीन ने शाही आज्ञा की अवहेलना की, स्वयं कालियादह जाकर अनेक तरह के उपद्रव करने लगा (अप्रेल, १७२६ ई०)। यह देख कर कि समझाने-बुझाने से काम न चलेगा, भवानीराम ने नज़मुद्दीन को धमकाया। एक दिन तो दोनों दलों के सिपाही सुबह से शाम तक आमने-सामने युद्ध के लिए तैयार खड़े रहे। दुर्जनसिंह हाड़ा और उमर ख़ाँ, नज़मुद्दीन के साथ थे; उन्होंने पहिले तो नज़मुद्दीन को समझाने का प्रयत्न किया, और जब उनकी कुछ न चली तो वे उसे छोड़ कर चल दिए। अब तो नज़मुद्दीन हक्का-बक्का रह गया, और अन्त में लौट पड़ा; राह में जो भी प्रदेश आया उन्हें ख़ूब लूटा, ढोर और धान्य जो कुछ साथ ले जा सका उसे ले गया, बाक़ी को बरबाद कर दिया; गाँव के गाँव उसने जला दिए। कुछ दिनों के बाद नज़मुद्दीन अली को सम्राट् की ओर से हुक्म हुआ कि उसने मालवा में जो कुछ भी नुक़सान किया था उसका हर्जाना दे, तथा लगान आदि जो कुछ भी द्रव्य उसने वहाँ एकत्रित किया था, वह सब भवानी-राम को लौटा दे। इधर भवानीराम को भी आदेश हुआ कि वह यह सब लेकर सैयद के लिए अपना राज़ीनामा पेश कर दे। इस प्रकार शाही कर्मचारियों के आपसी झगड़ों में ही बहुत सा समय बरबाद हो गया और इस प्रान्त में शाही सत्ता को सुदृढ़ करने या दक्षिणी मालवा में शाही शासन को पुनः स्थापित करने का कोई भी प्रयत्न नहीं किया जा सका।[1]

भवानीराम को मालवा की सूबेदारी से पदच्युत किए जाने की जो

---

[1] अजायब०, पत्र सं० १९२, १९३, १९५, २०२, २०४, २०५, १९६; पृ० ६ अ-ब, ७३ ब-७४ अ, ७४ अ, ७४ ब-७५ अ, ८० अ, ८१ ब-८२ ब, ८२ ब-८३अ, ७५ ब

अफ़वाहें नज़मुद्दीन ने उड़ाई थीं, उनसे भवानीराम के अधिकार को बहुत धक्का पहुँचा, मालवा में उसकी आज्ञा मानने को कोई भी राज़ी न होता था। भवानीराम के कर्मचारियों को ज़मींदार लगान देते न थे। यद्यपि सम्राट् ने कई बार नज़मुद्दीन अली को लिख भेजा कि मालवा की सूबेदारी तथा गिरधर बहादुर की सारी जागीर भवानीराम को ही दी गई थी, भवानीराम की नियुक्ति का शाही फ़रमान तथा जागीर की सनदें मई १६, १७२६ ई० को ही भवानीराम के पास पहुँचीं।

उज्जैन में भवानीराम की कठिनाइयाँ

किन्तु नज़मुद्दीन अली के साथ भवानीराम का जो झगड़ा हुआ था, शाही दरबार में उसकी भी प्रतिक्रिया अब प्रारम्भ हो गई थी। मई १७ को दिल्ली से भेजा हुआ एक दूसरा पत्र भवानीराम को मिला, जिसमें उसे सूचना दी गई थी कि मन्दसौर और टोड़ा (?) परगनों में स्थित उसकी जागीरें ज़ब्त करली गईं। इन जागीरों के ज़ब्त होते ही भवानीराम के लिए यह असम्भव हो गया कि सैनिकों को उनका बक़ाया वेतन दे सके। सैनिक यह बक़ाया वेतन पहिले से माँग रहे थे और अब यह ख़याल कर कि भवानीराम उनको कुछ भी दे न सकेगा, उन्होंने विद्रोह कर दिया। आस-पास के ज़मींदार तथा उज्जैन शहर के बदमाश लोग इन सैनिकों से जा मिले। इस समय भवानीराम कालियादह में था, विद्रोहियों का यह दल वहाँ जा पहुँचा और भवानीराम को घेर कर उसपर आक्रमण किया। किन्तु तब भी कुछ सैनिक भवानीराम का साथ दे रहे थे, उन्हें लेकर भवानीराम ने विद्रोहियों का सामना किया और उन्हें मार भगाया।[1]

[1] अजायब०, पत्र सं० १८५, १९१, २०३; पृ० ७० अ, ७३, ८० ब, ६ ब-८ अ

यद्यपि मरहठों की सेना का प्रधान दल राजपूताना में चला गया था, किन्तु फिर भी अन्य मरहठे सेनापति तथा मरहठों के कुछ छोटे-मोटे दल दक्षिणी मालवा पर आक्रमण कर वहाँ उपद्रव मचा रहे थे। सम्राट् ने इरादा किया कि मरहठों के इन दलों और सेनापतियों को निकाल बाहर करने के लिए जोधपुर के अभयसिंह को मालवा प्रान्त में भेजे, किन्तु यह विचार कार्यरूप में परिणत न हो सका, और १७२९ ई० की वर्षा ऋतु में मरहठे सेनापतियों ने दक्षिणी मालवा में ही डेरा डाला। मरहठों के इन कार्यकर्ताओं ने चौथ आदि वसूल करना प्रारम्भ कर दिया; नन्दलाल मण्डलोई को भी पकड़ कर क़ैद कर लिया और जब तक उससे पूरा द्रव्य वसूल न हो चुका उसे नज़रबन्द रक्खा। उदाजी पवार ने मण्डलोई को बारंबार पत्र लिख कर इस बात का आग्रह किया कि प्रान्त में से चौथ आदि वसूल करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिये।[1] चौथ आदि के बँटवारे में पिछले साल जो-जो हिस्सा उदाजी पवार और मल्हार होलकर को मिला था, वही आगामी वर्ष के लिए भी सितम्बर १६, १७२९ को पुनः उन्हीं के नाम कर दिया गया।[2]

वर्षा ऋतु में भवानीराम की सत्ता अधिकाधिक निर्बल होती गई; उसे मालवा की सूबेदारी के पद से हटा दिया तथा उसके पिता की रही-सही जागीर भी ज़ब्त कर ली गई। किन्तु तत्काल ही किसी दूसरे व्यक्ति को मालवा का सूबेदार नियुक्त करना सम्भव न था। प्रान्त की राजनैतिक

[1] अजायब०, पत्र सं० १९३, २०३; पृ० ७४ ब, ८० ब। अ० म० द० पत्र सं० ६६, ६७, ७०। सरदेसाई ने अपने मध्य०, १, पृ० ३२४-५ पर अ० म० द० पत्र सं० ६७ उद्धृत किया है।

[2] पे० द०, ३०, पृ० २९३-४

परिस्थिति दिन पर दिन बिगड़ती ही जा रही थी। वर्षा ऋतु के बाद मरहठे पुनः मालवा पर आक्रमण करेंगे यह एक निश्चित बात थी।

भवानीराम का पदच्युत होना एवं पुनर्नियुक्ति

नजमुद्दीन अली खाँ और चन्देरी का राजा दुर्जनसिंह प्रजा पर अत्याचार कर रहे थे। आमेर का सवाई जयसिंह अब तक अपनी राजधानी से रवाना नहीं हुआ था, और वर्षा ऋतु समाप्त होने से पहिले ही वह मालवा के लिए रवाना हो जावेगा यह सम्भव प्रतीत न हुआ। एवं जयसिंह की सिफ़ारिश पर भवानीराम को पुनः मालवा का सूबेदार नियुक्त किया, उसकी जागीर पुनः उसे लौटा दी गई और उसे हुक्म हुआ कि जब जयसिंह मालवा जावे तब उसके साथ वह पूर्ण सहयोग करे। जयसिंह को भी हुक्म हुआ कि वह भी शीघ्र ही मालवा चला जावे और जयसिंह के घुड़सवारों के खर्च के लिए मन्दसौर और टोड़ा (?) के परगने जयसिंह को दे दिए गए। जयसिंह का सेनापति, ज़ोरावरसिंह इस समय रामपुरा में तैनात था, उसने भवानीराम की सहायता के लिए केवल ८०० सवार उज्जैन भेजे।

मरहठों के आक्रमण का ख़तरा दिन पर दिन अधिकाधिक भयास्पद होता जा रहा था। वर्षा ऋतु समाप्त होने वाली थी। कण्ठाजी कदम ने खरगोन का घेरा डाल कर वहाँ से चौथ का रु० ५०,०००) वसूल कर लिया। तदनन्तर बड़वाह के पास नर्मदा पार कर मरहठों का दल मालवा में आ घुसा। मल्हार होलकर और उदाजी पवार चिकल्दा में ठहरे हुए, पेशवा तथा अन्य मरहठे सेनापतियों के आने की राह

मालवा में मरहठे; सितम्बर-नवम्बर, १७२९ ई०

देख रहे थे; किन्तु पेशवा नहीं आया। एवं कुछ ही दिनों बाद उन्होंने धरमपुरी के परगने को बहुत लूटा और उसे पूरी तौर से उजाड़ कर दिया, तब वे सब माण्डू की ओर बढ़े। इसी समय भवानीराम के पास दिल्ली से एक हुक्म आया था कि वह धार के क़िले में रसद, गोला-बारूद आदि का पूरा-पूरा प्रबन्ध करे जिससे यदि मरहठे मालवा पर आक्रमण भी करें और इस क़िले का घेरा भी डालें तो मालवे में जयसिंह के पहुँचने तक यह क़िला उनके आक्रमण को रोक सके।

यद्यपि भवानीराम को पुनः मालवा की सूबेदारी पर नियुक्त कर दिया था किन्तु भवानीराम स्वयं खिन्न ही रहा। उसका कर्ज़ा दिलवाने के लिए तथा सैनिकों का बक़ाया वेतन चुकाने के लिए उसे एक पैसा भी नहीं मिला। पूरी जागीर भी उसे नहीं लौटाई गई थी। न तो उसके पास अब कोई द्रव्य ही रह गया था, और न उसे कोई उधार ही देता था। जो सवार ज़ोरावरसिंह ने भेजे थे उनकी संख्या इतनी कम थी कि उनसे कुछ भी सहायता मिलना सम्भव न था। पुनः भवानीराम के विचारानुसार मरहठों को मालवा से निकाल बाहर करने के लिए जयसिंह को नियुक्त करना उपयुक्त न था। उसने सम्राट् की सेवा में निवेदन किया कि—"ज्योंही जयसिंह मालवा में आवेगा अनेक राजद्रोही राजा प्रान्त भर में घूमते फिरेंगे। राजाधिराज (जयसिंह) स्वयं इस प्रान्त में बारह महीनों नहीं ठहर सकेंगे।" एवं भवानीराम ने प्रार्थना की कि जितना द्रव्य जयसिंह को दिया जावेगा, उसका आधा भी यदि उसे मिल जावे तो वह मरहठों को मालवा में से निकाल

भवानीराम स्थान में जयसिंह की नियुक्ति; नवम्बर, १७२९ ई०

बाहर करेगा। उसने यह भी लिखा कि दक्षिण के इन आक्रमणकारियों को मार भगाने के लिए उसकी सहायतार्थ कोटा के महाराव दुर्जनसाल तथा चन्देरी के राजा दुर्जनसिंह को भी मालवा चले आने के लिए हुक्म हो जावे।

भवानीराम की इन सब प्रार्थनाओं के उत्तर में उसे पहिले तो यह सूचना मिली कि उसकी सहायतार्थ दतिया के राव राजा रामचन्द्र और राजा उदावतसिंह को मालवा जाने का हुक्म दे दिया गया है; पुनः चूँकि राजा जयसिंह मालवा के लिए रवाना हो चुका था, भवानीराम को आज्ञा हुई कि जयसिंह के मालवा पहुँचने तक मरहठों का वीरतापूर्वक सामना करे। अन्त में भवानीराम को अमीर-उल्-उमरा का एक पत्र मिला जिसमें यह स्पष्ट लिखा था कि जो दो परगने ज़ब्त किए गए थे वे पुनः उसको नहीं दिए जा सकेंगे। भवानीराम को यह भी लिख दिया गया कि "मरहठे हिन्दुस्तान पर आक्रमण कर पटना और इलाहाबाद के सूबों पर भी अधिकार करना चाहते हैं एवं यह उचित समझा गया है कि 'सर्व श्रेष्ठ राजा' (राजा जयसिंह) को मालवा का सूबेदार बनाया जावे"। भवानीराम को आदेश मिला कि वह जयसिंह की आज्ञानुसार कार्य करे और जब तक जयसिंह मालवा में ठहरे वह उसके साथ रहे।[1] भवानीराम बहुत ही थोड़े काल तक मालवा का सूबेदार रहा, किन्तु उसकी यह सूबेदारी बहुत ही घटना-पूर्ण रही।

---

[1] अजायब०, नं० १९६, १९९, २००, १९७; पृ० ७५ब-७६ब, ७७ ब-७८ अ, ७८ अ-७९ अ, ७६ ब-७७ब। पे० द०, २२, पत्र सं० ३१

यह स्पष्ट है कि भवानीराम जयसिंह का नायब सूबेदार बन कर मालवा में रहने को राजी न था, एवं ज्यों ही उसने यह सुना कि सूबेदारी के पद से उसे अधिकार-च्युत कर दिया है, वह मालवा छोड़ कर चल दिया।

७. जयसिंह की दूसरी सूबेदारी
(नवम्बर, १७२९ ई०–सितम्बर १९, १७३० ई०)

नवम्बर, १७२९ के अन्तिम दिनों में आमेर का सवाई जयसिंह दूसरी बार मालवा का सूबेदार नियुक्त हुआ।[१] कई बरसों से जयसिंह इस बात का प्रयत्न कर रहा था कि मरहठों की सहायता कर, उनका

जयसिंह और मरहठे

पक्ष ले कर, किसी प्रकार मालवा प्रान्त को अपने अधिकार में कर ले और इस प्रकार अपने राज्य, अधिकार तथा प्रभाव को नर्मदा तक फैला दे। अब सम्राट् की आज्ञानुसार जयसिंह मालवा की ओर रवाना हुआ कि मरहठों को उस प्रान्त में से निकाल बाहर करे और उनके साथ शान्ति-पूर्वक समझौते के लिए राजा शाहू से बातचीत शुरू करे। मरहठों के साथ जिसका किसी भी प्रकार का लगाव न हो ऐसी सेना सुसज्जित करने के

---

[१] सर यदुनाथ सरकार के मतानुसार इस बार जयसिंह मालवा का सूबेदार नियुक्त नहीं किया गया था, किन्तु "केवल मरहठों को निकाल बाहर करने के लिए उसे ससैन्य भेजा था"। सरकार, १, पृ० २४६ फुट नोट

किन्तु भवानीराम को अमीर-उल्-उमरा ने अपने पत्र में लिखा था—"सर्वश्रेष्ठ राजा (जयसिंह) को नियुक्त किया है, तुम्हें चाहिए कि तुम उसकी आज्ञा का पालन करो और जब तक वह मालवा में रहे, उसके साथ रहो"। अजायब०, पत्र सं०, १९७, पृ० ७७ अ

पे० द०, १०, पत्र सं० ६६ से भी इस प्रश्न पर कुछ प्रकाश पड़ता है। आक्टोबर १७३० में जयसिंह के वकील, दीपसिंह को निज़ाम ने कहा था—"मालवा तुम्हारे अधिकार में से ले लिया गया है। बंगश अब (मालवा का सूबेदार) बन गया है।" इस कथन से यह स्पष्ट है कि उस समय मालवा जयसिंह के ही अधिकार में था।

लिए राजा जयसिंह को सम्राट् ने १३ लाख रुपये दिये।[1]

जयसिंह अपनी राजधानी से आक्टोबर २३, १७२६ को रवाना हुआ। वह उज्जैन पहुँच भी नहीं पाया था कि मरहठे मालवा में घुस आए। आक्टोबर १७, १७२६ ई० को राजा शाहू ने मालवा प्रान्त की चौथ आदि बाजीराव पेशवा को प्रदान कर दी थी; पेशवा ने उस चौथ में से कुछ परगने उदाजी पवार को दे दिये, और बाक़ी परगने उदाजी पवार तथा मल्हार होलकर में बराबर बाँट दिये। मरहठों के दल के साथ उदाजी और मल्हार दोनों थे; सन् १७२६ में नवम्बर मास के अन्तिम सप्ताह के लगभग उन्होंने माण्डू के क़िले को हस्तगत कर लिया और देशोजी वाघ को वहाँ का क़िलेदार नियुक्त किया।[2]

मरहठों का माण्डू का क़िला हस्तगत करना; नवम्बर, १७२९ ई०

जब जयसिंह (काली सिन्ध नदी के तट पर स्थित) बाड़ोद नामक स्थान पर पहुँचा, मालवा के प्रायः सब राजा लोग आकर जयसिंह के साथ हो गए। उज्जैन पहुँचने पर जब जयसिंह ने सुना कि मरहठों ने माण्डू के क़िले को हस्तगत कर लिया, तब तो वह जल्दी से माण्डू की ओर बढ़ा। जयसिंह की सेना तथा मरहठों के दल में एक छोटी सी लड़ाई भी हुई, किन्तु अन्त में समझौता

मरहठों का जयसिंह को माण्डू का क़िला लौटाना

---

[1] वंश०, ४, पृ० ३१३३-४; पे० द०, १०, पत्र सं० ६६

[2] पारसनिस०, पृ० १२७। पे० द०, २२, पृ० ३१; ३०, पृ० २९७, २९३। राजवाड़े, ६, पत्र सं० ६००

हो गया, और मरहठों ने माण्डू का क़िला शाही अधिकारियों को लौटा दिया। जनवरी १८, १७३० ई० को मरहठों का दल नौलाई जा पहुँचा, और वहीं से वह दल दक्षिण को लौट गया।[1]

परन्तु जयसिंह को तो इस समय बून्दी के मामले की ही फ़िक्र पड़ी थी; बहुत दिनों के बाद अब ऐसा अवसर आया था कि जयसिंह उसे अपने राज्य में मिला कर वहाँ के राजा को अपने अधीन एक सामन्त बना सके।

जयसिंह का जयपुर को वापिस लौटना

ज्यों ही माण्डू का क़िला उसको लौटा दिया गया, त्यों ही वह उज्जैन को चला आया, और वहाँ से सीधा अपनी राजधानी को लौट पड़ा।[2] लौटते समय राह में जयसिंह ने दलेलसिंह को बून्दी का राव राजा बना कर उसे वहाँ की गद्दी पर बैठाया (मई १६, १७३० ई०)।

---

[1] वंशभास्कर में लिखा है (४, पृ० ३१८७-३१८९) कि मालवा में मरहठों के आने से बहुत पहिले ही जयसिंह माण्डू जा पहुँचा और क़िले में उसने डेरा डाला। मरहठों ने आकर माण्डू का घेरा डाला और जयसिंह ने मरहठों से मित्रता कर वह क़िला उन्हें दे दिया। किन्तु यह विवरण ग़लत प्रतीत होता है। मराठी के आधार-ग्रन्थों के अनुसार मरहठों ने नवम्बर के अन्तिम दिनों या दिसम्बर के प्रारम्भ में इस क़िले को हस्तगत किया था। जयसिंह आक्टोबर २३ को जयपुर से रवाना हुआ; एक मास में ही उसका माण्डू जा पहुँचना असम्भव सा जान पड़ता है।

अ० म० द०, पत्र संख्या ७८

माण्डू का क़िला जयसिंह को पुन: लौटा दिया जावे, इसका विधिवत हुक्म तो मार्च १८, सन् १७३० ई० को ही राजा शाहू ने दिया। वाड़, १, पत्र सं० १९८

[2] बंगश के नाम लिखे हुए निज़ाम के एक पत्र से यह ज्ञात होता है कि इस समय जयसिंह ने उदाजी पवार को चिकल्दा के क़िले में से भी निकाल बाहर किया था किन्तु उदाजी पवार ने कुछ ही समय बाद उसको पुन: हस्तगत कर लिया। ख़ज़िस्ता०, पृ० ३३६-७

मालवे का शासन जयसिंह ने अपने अधीन वहाँ के कर्मचारियों के ही हाथ में छोड़ दिया; मरहठों के साथ सन्धि करने के लिए बातचीत प्रारम्भ हो गई थी एवं जयसिंह को मालवा के सम्बन्ध में विशेष चिन्ता न रही थी।[1]

सम्राट् ने जयसिंह को विशेष रूप से आज्ञा दी थी कि किसी भी प्रकार मरहठों के साथ सन्धि कर ली जावे, और इस बात का पूरा प्रबन्ध किया जावे, कि मरहठे आक्रमणकारी नर्मदा को पार कर उत्तरी भारत में न जा घुसें। उधर पेशवा इस बात के लिए बहुत उत्सुक था कि मालवा

राजा शाहू के साथ सन्धि की बातचीत

पर मरहठों का जो कुछ भी आधिपत्य स्थापित हो चुका था वह बना रहे। बाजीराव के विचारानुसार यह सम्भव था कि मालवा पर मुग़ल-सम्राट तथा मरहठों दोनों का ही अधिकार बना रहे। वह यह भी चाहता था कि जहाँ तक हो वहाँ तक उस प्रान्त की प्रजा शान्तिपूर्वक रहे। इसी उद्देश्य से पेशवा ने जयसिंह को पत्र लिखे (आक्टोबर, १७२६), और कुछ मास बाद (जनवरी, १७३०) कुसाजी गणेश को उज्जैन भी भेजा। मार्च १८, १७३० ई० को राजा शाहू ने पत्र द्वारा चिमाजी बल्लाल, उदाजी पवार और मल्हार होलकर को सूचित किया कि "जयसिंह अब उज्जैन के सूबे में आ गया है। तुमको चाहिए कि दोनों राजघरानों में वंश-परम्परागत जो पुरानी मित्रता चली आरही है, उसका विचार कर जयसिंह के साथ आदरपूर्वक बर्ताव करो। यदि वह माण्डू के क़िले के लिए कहे, तो वह क़िला उसे दे दो।" माण्डू का क़िला जनवरी मास में

---

[1] वंश०, ४, पृ० ३१९२-३२३१

ही लौटा दिया गया था; अपने सेनापतियों की उस कार्यवाही का शाहू ने इस प्रकार अनुमोदन किया ।[1]

जयसिंह ने दीपसिंह को अपना वकील बना कर राजा शाहू के पास भेजा। दीपसिंह ने मालवा के लिए मरहठों को ११ लाख रुपया प्रति वर्ष देने का वादा कर लिया था। इस समझौता का अनुमोदन भी नहीं हो पाया था कि सितम्बर १६, १७३० ई० को सम्राट् ने जयसिंह के स्थान पर मुहम्मद बंगश को मालवा का सूबेदार नियुक्त कर दिया। जयसिंह जयपुर को लौट ही चुका था, अब मालवा के मामलों में उसको कुछ भी दिलचस्पी न रह गई। कुछ ही काल बाद पेशवा ने मल्हार होलकर को पुनः मालवा जाने के लिए आदेश दिया।[2]

बंगश की नियुक्ति के साथ ही मरहठों के साथ किसी भी प्रकार शान्तिपूर्वक हो सकने वाले समझौते की कोई भी सम्भावना न रह गई। मुग़ल-मरहठा द्वन्द पुनः प्रारम्भ हुआ, मुग़ल सेना की बुरी तरह से हार हुई और मालवा पर मुग़ल-सत्ता के बने रहने की कोई आशा न रह गई।

८. मालवा के अन्य प्रान्तीय मामले (१७१६-१७३०)

इस सारे युग में प्रायः लोगों का ध्यान मुग़ल-मरहठा द्वन्द की ओर ही आकर्षित रहा। किन्तु इस युग में उस द्वन्द के अतिरिक्त अन्य कई

[1] पे० द०, ३०, पृ० ३००-१; वाड़, १, पत्र सं० १९८; राजवाड़े, ६, पत्र सं० ५९९। अ० म० द०, पत्र सं० ७२, राजवाड़े द्वारा दिए गए पत्र की ही नक़ल है, किन्तु अ० म० द० के इस पत्र के अनुसार उस की तारीख़ आक्टोबर १, १७२९ होती है। अ० म० द०, पत्र सं० ७

[2] पे० द०, १०, पत्र सं० ६६; ३०, पृ० ३००

महत्त्वपूर्ण घटनाएँ भी घटीं जिनका आगे चल कर प्रान्त के राजनैतिक इतिहास पर बहुत प्रभाव पड़ा।

प्रथम तो जयसिंह ने इस बात का पूरा-पूरा प्रयत्न किया कि किसी न किसी प्रकार बून्दी पर उसका आधिपत्य स्थायी हो सके, और अन्त में उसने अपने मनोनीत व्यक्ति को बून्दी की गद्दी पर बैठा ही दिया। इस प्रकार बून्दी के राजा को अपने आधीन एक सामन्त बना कर जयसिंह ने अपनी एक बहुत बड़ी महत्त्वाकांक्षा को पूर्ण किया। बून्दी के मामले में जयसिंह इतना लगा हुआ था कि उसी कारण जब दूसरी बार (सन् १७२९-३० ई०) वह मालवा का सूबेदार नियुक्त किया गया तब वह प्रान्तीय शासन की ओर पूरा-पूरा ध्यान भी न दे सका। यह सम्भव था कि यदि इस समय वह क्रियाशील और सजग नीति अंगीकार करता तो प्रान्त का आगामी इतिहास कुछ दूसरा ही होता।

बून्दी का मामला

दूसरे, रामपुरा का मामला अब भी अव्यवस्थित ही बना हुआ था। गोपालसिंह चन्द्रावत का पौत्र, संग्रामसिंह, महाराणा का जागीरदार बना हुआ था, और रामपुरा परगने का एक हिस्सा उसी के अधिकार में था; किन्तु संग्रामसिंह बहुत ही उपद्रवी हो गया। गिरधर बहादुर ने रामपुरा पर पुनः शाही सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न किया था, किन्तु गिरधर बहादुर की मृत्यु के साथ ही उन सब प्रयत्नों का भी अन्त हो गया।[1] दिसम्बर, १७२८ ई० में उदयपुर की राजपुत्री से जयसिंह के एक लड़का हुआ।

रामपुरा का मामला

---

[1] अजायब०, पत्र सं० १७५, पृ० ६४ ब-६५ अ

इस पुत्र की उत्पत्ति से आमेर के राज्य में एक नया झगड़ा उठ खड़ा होने वाला था एवं जयसिंह बहुत ही चिन्तित हो उठा। सन् १७०८ ई० की उदयपुर वाली सन्धि के अनुसार जयसिंह की मृत्यु के बाद यह सद्यः-जात राजकुमार माधोसिंह ही जयपुर की गद्दी पर बैठने का हक़दार था; इसके विपरीत जयसिंह के दो बड़े लड़के, शिवसिंह और ईश्वरीसिंह, ज्येष्ठाधिकार के नियमानुसार आमेर की राजगद्दी पर बैठने का प्रयत्न करेंगे यह एक अवश्यम्भावी बात थी। इन आगामी विपत्तियों को टालने के इरादे से जयसिंह की प्रार्थना पर महाराणा ने रामपुरा का परगना उस शिशु राजकुमार माधोसिंह को दे दिया (मार्च २६, १७२६ ई०); और जयसिंह ने इस बात की ज़मानत दी कि अन्य १६ बड़े उमरावों के समान माधोसिंह भी महाराणा का आज्ञाकारी एवं स्वामिभक्त सामन्त बना रहेगा। किन्तु उस परगने का अधिकार तथा शासन-प्रबन्ध जयसिंह ने अपने हाथ में ले लिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि नाम-मात्र को ही वह परगना मेवाड़ के अधीन रह गया।[1]

[1] माधोसिंह के जन्म संवत् को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है। ओझा के मतानुसार १७२७ ई० ही ठीक साल है, किन्तु उन्होंने अपने मत की पुष्टि में किसी आधार का उल्लेख नहीं किया है। वीर विनोद में (२, पृ० ९७३) दिसम्बर १७, १७२८ ई० दिया गया है, और वंशभास्कर (२, पृ० ३१२१) के अनुसार दिसम्बर १९, १७२८ ई० को ही माधोसिंह का जन्म हुआ। तीनों तारीख़ों में वीर विनोद में दी हुई तारीख़ ही विश्वसनीय है।

वंशभास्कर (४, पृ० ३१०८-३११०) के अनुसार रामपुरा का परगना जयसिंह को दिया गया था; किन्तु वीरविनोद में लिखा है कि वह परगना माधोसिंह को मिला था। परगने की सनद एवं जयसिंह के हस्ताक्षर वाले ज़मानतनामे की नक़लें वीरविनोद में दी गई हैं एवं वंशभास्करकार का कथन विश्वसनीय नहीं है। वीर०, २, पृ० ९७३-७

इधर रामपुरा के संग्रामसिंह और कोटा के दुर्जनसाल में कुछ झगड़ा हो गया, जिससे दुर्जनसाल ने रामपुरा को लूटा। इसके कुछ ही दिनों बाद जयसिंह के कर्मचारियों ने रामपुरा पर अपना अधिकार कर लिया। संग्रामसिंह अब दिल्ली पहुँचा और सम्राट् से निवेदन किया कि उसे रामपुरा दिया जाकर उसी के नाम रामपुरा की सनद् भी कर दी जावे। किन्तु इस समय सम्राट् किसी भी प्रकार जयसिंह को रुष्ट करने का साहस नहीं कर सकता था, अतएव संग्रामसिंह का मनोरथ सफल नहीं हुआ। मालवा को लौटते समय राह में किसी ने संग्रामसिंह को मार डाला। संग्रामसिंह के वंशजों के अधिकार में रामपुरा के पास के कुछ गाँव ही रह गए।[१]

भोपाल राज्य का प्रारम्भ; दोस्त मुहम्मद ख़ाँ की मृत्यु तथा यार मुहम्मद ख़ाँ का गद्दी पर बैठना

इसके विपरीत दक्षिण-पूर्वी मालवा में अनेक आपत्तियों का सामना करते हुए भी भोपाल का अफ़गान राज्य अधिकाधिक सुदृढ़ और सुसंगठित होता जा रहा था। इस युग के प्रारम्भिक वर्षों में दोस्त मुहम्मद ख़ाँ भाखरा (बरसिया ?) का ज़मींदार मात्र था; अनेक उपायों से उसने बहुत सा प्रदेश अपने अधिकार में कर स्वयं शक्तिशाली बन बैठा था। वह सैयदों का पक्ष करता था और उन्हीं की सहायता भी करता रहा, एवं जब निज़ाम के विरुद्ध उसकी सहायता चाही तब कोटा के भीमसिंह की सिफ़ारिश पर दोस्त मुहम्मद को मन्सब, नगारा-निशान,

---

[१] वीर०, २, पृ० ९९०। वंशभास्कर में लिखा है कि संग्रामसिंह को रामपुरा की सनद मिल गई थी, किन्तु यह एक अनहोनी बात जान पड़ती है। वंशभास्करकार के अनुसार जयसिंह ने ही षड्यंत्र कर संग्रामसिंह को मरवा डाला था। वंश०, ४, पृ० ३११६-२०

नौबत एवं ख़िताब भी मिला। खगडवा के युद्ध में सैयदों की पराजय हुई और दोस्त मुहम्मद को भागना पड़ा। किन्तु राज्य की सीमावृद्धि का कार्य फिर प्रारम्भ कर दिया, कई शाही क़िले भी उसने अपने अधिकार में कर लिए।[1] इस समय इस्लामनगर ही उसकी राजधानी थी। सन् १७२३ में दोस्त मुहम्मद पर निज़ाम ने जो चढ़ाई की थी उसका उल्लेख यथा-स्थान हो चुका है। इस चढ़ाई का परिणाम यही हुआ कि कुछ काल के लिए इस्लामनगर दोस्त मुहम्मद के अधिकार से चला गया। निज़ाम ने रावचन्द के पुत्र, चन्द्रबंस को इस्लामनगर का फ़ौजदार नियुक्त किया, तब तो दोस्त मुहम्मद ने किसी दूसरे स्थान पर अपनी राजधानी स्थापित करने का तय किया। कुछ ही मास बाद (शुक्रवार, अगस्त ३०, १७२३ ई० को ?) दोस्त मुहम्मद ने भोपाल के क़िले की नींव डाली।[2] दोस्त मुहम्मद ने अपने जीवन के अन्तिम वर्ष शान्ति से बिताए; इस समय वह धीरे-धीरे अपने राज्य को सुसंगठित भी करता रहा। सन् १७२८ ई० के मार्च महीने में दोस्त मुहम्मद मर गया।[3] उस समय उसका बड़ा लड़का, यार मुहम्मद, दक्षिण में

---

[1] इर्विन, २, पृ० २८, ५-६; बुरहान०, पृ० १६८ अ; मालकम, १, पृ० ३५१-२; ताज०, पृ० २-५; रुस्तम०, पृ० ५५६, ४९६-७; निज़ाम०, पृ० १५१-२; खाण्डे०, पृ० ५०१-२

[2] इर्विन, २, पृ० १३०-१। रुस्तम०, पृ० ५५५। खाण्डे०, पृ० ५०७-१२। ताज० (पृ० ६) में भोपाल के क़िले की नींव शुक्रवार, ज़िल्हिजा ९, ११४० हि० के दिन रखी जाना लिखा है। ताज० में इस प्रारम्भिक काल के सन् देने में बहुत ही भद्दी-भद्दी ग़लतियाँ की गई हैं। हिजरी सन् ११३५ होना चाहिए, उस वर्ष भी वह तारीख़ शुक्रवार को ही पड़ी थी:—अंग्रेज़ी ता० ३० अगस्त, १७२३ ई० होती है।

[3] रुस्तम०, पृ० ५५६। ताज० में दिया हुआ सन् बिलकुल ही ग़लत है। (ताज० पृ० ६)

निज़ाम के साथ था; उसकी अनुपस्थिति से लाभ उठा कर कुछ कर्मचारियों ने दोस्त मुहम्मद के छोटे लड़के मुहम्मद ख़ाँ को, जिसकी उम्र ७-८ वर्ष की ही थी, गद्दी पर बैठाना चाहा। किन्तु शीघ्र ही यार मुहम्मद दक्षिण से लौट आया, सहायतार्थ निज़ाम के पास से कुछ सेना भी लेता आया था; आते ही वह गद्दी पर बैठा और आगामी पच्चीस वर्षों तक भोपाल का शासक बना रहा।[1]

दक्षिणी मालवा के दूसरे छोर पर तो विपत्ति और अराजकता के बादल उमड़ रहे थे। झाबुआ और अमझरा के राज्यों में निरन्तर उपद्रव हो रहे थे। अमझरा में जयरूप शासक था, किन्तु उसका छोटा भाई जगरूप स्वयं राज्य का अधिकारी बन बैठने को उत्सुक था। सन् १७१९ में जगरूप ने प्रयत्न किया था कि वह स्वयं शासक बन जावे किन्तु निज़ाम के आ जाने से उसका मनोरथ पूर्ण न हो सका, फिर भी उसने अपने इरादों को नहीं छोड़ा, जिसका फल यह हुआ कि अमझरा में गृहयुद्ध चलता ही रहा;[2] इसी आपसी कलह से लाभ उठा कर मर-

दक्षिण-पश्चिमी मालवा के मामले—अमझरा

---

[1] रुस्तम०, पृ० ५५७; निज़ाम०, पृ० १५२। मालकम ने यार मुहम्मद ख़ाँ को दोस्त मुहम्मद का जारज पुत्र लिखा है किन्तु तत्कालीन इतिहासकार उसके इस कथन की पुष्टि नहीं करते। (मालकम, १, पृ० ३५५-६)

ताज० (पृ० ७) में लिखा है कि दक्षिण से रवाना होते समय निज़ाम ने यार मुहम्मद को माही-मरातिब, मन्सब एवं ख़िताब भी प्रदान किए थे; किन्तु रुस्तम अली इस कथन की पुष्टि नहीं करता है एवं ताज का कथन अविश्वसनीय है।

[2] ख़फ़ी०, २, पृ० ८४९-५०। अ० म० द०, पत्र सं० ४० में लिखा है कि दोनों विरोधी सेनाओं में एक युद्ध हुआ, जिसमें जगरूप की ओर के १० आदमी काम आए तथा दूसरी ओर के १३ आदमी मारे गए। यह पत्र अगस्त ८, १७२५ ई० को लिखा गया था।

हठों ने इस राज्य को एक प्रकार से अपने आधीन बना लिया और उससे वे टाँका भी वसूल करने लगे।

झाबुआ

झाबुआ में राजा कुशालसिंह को सैलाना का जयसिंह बहुत ही हैरान कर रहा था। सन् १७२४ ई० के प्रारम्भ में मरहठों ने झाबुआ पर आक्रमण किया था, किन्तु शीघ्र ही दक्षिण को लौटते हुए पेशवा से मिलने के लिए कंठाजी कदम को झाबुआ से रवाना होना पड़ा। कुछ दिनों बाद राजा कुशालसिंह मर गया और उसका उपद्रवी पुत्र अनूपसिंह गद्दी पर बैठा। सन् १७२५ में अम्बाजी त्र्यम्बक झाबुआ राज्य में आया और परनालिया में उसने डेरा डाला। तत्कालीन परिस्थिति से लाभ उठाने के इरादे से सैलाना का जयसिंह भी अम्बाजी के साथ आ मिला। अनूपसिंह ने नक़द एक लाख रुपया दिया और अम्बाजी ने उसे सारे बक़ाया पेटे स्वीकार कर लिया। इस समझौते की बातचीत में शिवगढ़ के महन्त मुकुन्दगिर ने राज्य की बहुत सहायता की। परन्तु जयसिंह को कुछ भी लाभ नहीं हुआ एवं उसने सन् १७२७ ई० में किसी न किसी प्रकार से अनूपसिंह को मरवा डाला। जयसिंह ने झाबुआ राज्य का थान्दला परगना भी अपने अधिकार में ले लिया, किन्तु बोरी ठिकाने के ठाकुर रतनसिंह ने उसे पुनः जीत कर झाबुआ राज्य में मिला लिया। अनूपसिंह की मृत्यु के कोई छः मास बाद उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ; अब राज्य का कार्य अन्य सरदारों की सलाह से राजमाता ही सम्हालने लगी। शासन-संगठन में निर्बलता आ गई और मरहठों ने परिस्थिति से लाभ उठाया, उन्होंने सैलाना के जयसिंह के विरुद्ध झाबुआ राज्य की सहायता भी की और

धीरे-धीरे राज्य को अपने निरीक्षण में कर लिया, मरहठों का यह अधिकार आगामी ४०-५० वर्षों तक यों ही बना रहा।[1] गुजरात और बाँसवाड़ा का रास्ता झाबुआ राज्य में ही होकर गुज़रता था, एवं झाबुआ राज्य को अपने अधिकार में रखना मरहठों के लिए अत्यावश्यक था।

अमझरा और झाबुआ के राज्यों में कोई शक्तिशाली सत्ता न रही, तथा आवासगढ़ (बड़वानी) का मोहनसिंह पहिले से ही मरहठों की सहायता करता रहा था; अतएव मालवा प्रान्त का यह प्रदेश एक प्रकार से साम्राज्य के अधिकार में न रहा, और नवम्बर, १७२६ ई० में गिरधर बहादुर की हार और मृत्यु के बाद तो इन राज्यों पर मरहठों का आधिपत्य सा होगया, और इस प्रदेश में से मरहठों की सत्ता उठा देना एक असम्भव बात हो गई।

अन्य राज्य; मालवा - निवासियों की दशा

दूसरे राज्यों में कोई विशेष उल्लेखनीय घटनाएँ नहीं हुईं; उनका राजनैतिक जीवन अबाधगति से चलता ही गया। प्रान्त के निवासियों एवं यहाँ की ज़मीन की दशा दिन पर दिन बिगड़ती ही जा रही थी। सन् १७२० में इस प्रान्त की आमदनी लगभग ९० लाख की गिनी जाती थी, सन् १७२४-५ में घट कर वही आमदनी ४० लाख रह गई। सन् १७२४ में जब निज़ाम दक्षिण के लिए रवाना हुआ, उस समय प्रान्तीय ख़ज़ाना ख़ाली हो चुका था, और प्रान्त-

[1] झाबुआ गज़े० (पृ० ३-४) में जो विवरण दिया है वह बुले की बखर के आधार पर ही लिखा गया था। मराठी आधार-ग्रन्थों की सहायता से उस विवरण में आवश्यक सुधार कर दिये गये हैं।

निवासी भी दरिद्री हो गए थे। मरहठों के आक्रमणों एवं गिरधर बहादुर द्वारा सख़्ती के साथ लगान वसूल किए जाने का प्रभाव यह हुआ कि मालवा प्रान्त तथा यहाँ के निवासी पूर्णतया बरबाद हो गए।[1]

६. मालवा पर मरहठों के आक्रमणों का प्रधान कारण

भिन्न भिन्न लेखकों द्वारा विभिन्न कारणों का निर्धारित किया जाना

मालवा पर मरहठों ने क्यों आक्रमण किये? किस कारण से उन्हें वहाँ ऐसी आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई? इन दोनों प्रश्नों के उत्तर में विभिन्न लेखकों ने विभिन्न कारण दिये हैं। मराठी भाषा-भाषी प्रदेश के लेखक प्रायः यही लिखते हैं कि समस्त भारत में 'हिन्दू-पद-पाद-शाही' स्थापित करना ही पेशवा का एक-मात्र उद्देश्य था। सर जान मालकम के मतानुसार भी मरहठों को तो मुग़ल साम्राज्य औरंगज़ेब की हिन्दू-विरोधी नीति तथा उसी की धार्मिक कट्टरता का एकीभूत पुंज ही जान पड़ता था, एवं इन आक्रमणों द्वारा उन्होंने साम्राज्य के विरुद्ध धार्मिक युद्ध छेड़ा। मालवा में मरहठों को सरलतापूर्वक सफलता किस कारण से प्राप्त हुई, इस बात को मालकम ने इस प्रकार स्पष्ट किया; वह लिखता है कि:—

"इस प्रकार (साम्राज्य की) निर्बलता से प्रोत्साहित, एवं निजी क्षति से उत्तेजित होकर ही अब जयपुर, मारवाड़, मेवाड़ एवं मालवा के राजा, जैसा कि वे आज तक करते आए थे, (उसी के विरुद्ध) साम्राज्य

---

[1] चहार०, पृ० ८० अ; इण्डिया०, पृ० lx, १४१; पे० द०, १०, पत्र सं० ६६

का बचाव करने के बजाय गुप्तरूपेण या खुले तौर से मरहठे आक्रमण-कारियों के समर्थक हो गए। फ़ारसी भाषा के तथा हिन्दू लेखकों में से जिन जिन ने इस घटना का उल्लेख किया है वे सब यही लिखते हैं कि जब मरहठों ने प्रथम बार मालवा पर आक्रमण किया, तब उस प्रान्त में शायद ही किसी व्यक्ति ने उनका विरोध किया हो; वे सब लेखक मरहठों की उस समय की सफलता का प्रधान कारण तत्कालीन धार्मिक सहानुभूति को ही मानते हैं और उन लेखकों के इस कथन के समर्थन में बहुत से प्रमाण दिए जा सकते हैं।"[1]

किन्तु इन पिछले वर्षों में इन घटनाओं के समय के ही बहुत से मराठी पत्र तथा अन्य कागज़ात प्रकाशित हुए हैं, जिनसे इन घटनाओं पर बहुत सा नया प्रकाश पड़ा है; उन सब कागज़ों को देखने पर, एवं इतिहास का बहुत ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से भी इतिहासकार को कोई भी ऐसी बात नहीं मिलती है, जिससे इन उपर्युक्त मतों की कुछ भी पुष्टि हो सके।

सन् १६६८-१७०७ ई० के काल में अपना अस्तित्व बनाए रखने एवं अपनी सत्ता को स्थायी करने के लिए ही मरहठे औरंगज़ेब के विरुद्ध लड़ रहे थे; उस समय उन्होंने उसी उद्देश्य से मालवा पर आक्रमण किया कि इस प्रकार वे महाराष्ट्र से दूर दूसरी ओर ही सम्राट् औरंगज़ेब का ध्यान बँटा सकेंगे। किन्तु औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद जब महाराष्ट्र पर मुग़लों के आक्रमण का दबाव न रहा, तब भी, मालवा के समान धन-धान्यपूर्ण प्रान्त पर आक्रमण करने का विचार मरहठा राजनीतिज्ञों के मस्तिष्क में घूमता ही रहा। प्रथम पेशवा की प्रतिभा एवं उसके संगठन

[1] मालकम, १, पृ० ५३-४, ६७

के फल-स्वरूप जब मरहठों की सत्ता में नवीन स्फूर्ति का संचार हुआ, और जब महरठों को अपनी शक्ति का अनुभव हुआ तब तो वे अपने राज्य एवं सत्ता के विस्तार तथा विकास के लिए नवीन क्षेत्रों को ढूँढ़ने

सत्ता एवं राज्य के विकास की आकांक्षा

लगे। सन् १७१६ ई० में उन्होंने नर्मदा के दक्षिण तट तक चौथ आदि वसूल करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। आगे विस्तार के लिए मरहठे मालवा पर आक्रमण करेंगे यह एक अवश्यम्भावी बात थी। अतएव जब नवीन पेशवा बाजीराव ने मरहठा राज्य के शासन की बागडोर सम्हाली तब मालवा की ओर मरहठों के कार्य-क्षेत्र का विस्तार होना स्वाभाविक ही था। बाजीराव स्वयं बहुत ही महत्त्वाकांक्षी था, नवीन विजयों के अनेक इरादे वह कर रहा था, और उसने अपनी आँखों से साम्राज्य की सब कमज़ोरियों को स्पष्टतया देखा तथा उनका पूर्ण अनुभव किया था; आगामी युग में मालवा प्रान्त को मरहठों के उमड़ते हुए प्रवाह का सामना करना था।

किन्तु मालवा पर होने वाले इन आक्रमणों का प्रधान कारण दूसरा ही था। पेशवा पर कर्ज़ा बहुत हो गया था, और अपने क़र्ज़दारों को देने के

मालवा पर होने वाले आक्रमणों का आर्थिक कारण

लिए उसे द्रव्य की बहुत आवश्यकता थी। पेशवा के लिए यह सम्भव न था कि अपने राज्य में ही या दक्षिणी भारत में वह इतना अधिक द्रव्य एकत्रित कर सके। क्योंकि निज़ाम पेशवा को अपने प्रान्तों में आसानी से अनधिकार हस्तक्षेप करने देगा, यह एक असम्भव बात थी। अतएव पेशवा ने देखा कि कुछ भी धन एकत्रित करने के लिए मुग़ल-साम्राज्य के प्रान्तों के अतिरिक्त दूसरा कोई

भी स्थान नहीं था। गुजरात और मालवा, ये दोनों ही प्रान्त दक्षिण से पास पड़ते थे, और उनमें से भी गुजरात प्रान्त पर मरहठा सेनापति दाभड़े दाँत लगाए बैठा था एवं पेशवा के लिए केवल मालवा प्रान्त रह गया।

जो जो मरहठे सेनापति पेशवा की अधीनता में कार्य कर रहे थे, उन्होंने सन् १७२३-६ ई० के प्रारम्भिक आक्रमणों से मालवा प्रान्त में अपने लिए स्थान अवश्य बना लिया था; और जब-जब मरहठों के दल मालवा में जा पहुँचे तब-तब वे कुछ न कुछ द्रव्य एकत्रित करके साथ लाए। किन्तु जब गिरधर बहादुर दूसरी बार मालवा का सूबेदार बना (१७२५-२८), तब तो उसने तथा उससे भी अधिक उसके चचेरे भाई, दया बहादुर ने मरहठों का मालवा में चौथ आदि वसूल करना एक प्रकार से पूर्णतया बन्द कर दिया। मार्च, १७२६ ई० में राजा शाहू ने पत्र लिख कर गिरधर बहादुर से प्रार्थना भी की कि चौथ आदि की वसूली में बाधा न डाले, किन्तु गिरधर बहादुर ने शाहू की इस प्रार्थना पर कुछ भी ध्यान न दिया। सन् १७२५-२६ ई० में जब मरहठों के दल मालवा प्रान्त में भेजे गए तब शाही सेना ने उन्हें प्रान्त में से निकाल बाहिर किया। किन्तु इस समय पेशवा तथा मरहठों की प्रधान सेना दक्षिण में ही निज़ाम का सामना कर रही थी, एवं उन्हें मालवा की ओर ध्यान देने का अवसर न मिला।[१] निज़ाम के साथ फ़रवरी, १७२८ ई० में सन्धि हो गई; तदनन्तर जाड़े की मौसिम में (सन् १७२८-२९ ई०) मालवा पर चढ़ाई हुई। पेशवा और उसके भाई चिमाजी का एक-मात्र

[१] पे० द०, १३, पत्र सं० ५, ९; ३०, पृष्ठ २८०-१

उद्देश्य यही था कि किसी न किसी प्रकार बहुत सा द्रव्य एकत्रित किया जावे, अतएव इस आक्रमण का प्रधान कारण आर्थिक ही था। इस आक्रमण के समय बाजीराव, चिमाजी तथा अन्य मरहठा सेनापति और कर्मचारियों के पत्रों से उपर्युक्त कथन की पूर्णरूपेण पुष्टि होती है।

क़र्ज़ा चुकाने के लिए चिन्ता; द्रव्य की अत्यावश्यकता

निज़ाम के साथ होने वाले पिछले युद्ध के समय राजा शाहू ने बहुत-सा क़र्ज़ा कर लिया था; आक्टोबर १७२८ ई० के अन्तिम दिनों में बाजीराव वह क़र्ज़ा चुका देने के लिए चिन्तित हो उठा। बाजीराव और चिमाजी ने यह निश्चय किया कि घास-दाने का कर भी पूरी सख़्ती के साथ वसूल किया जावे।[१] बाजीराव से पहिले ही चिमाजी पूना से रवाना हो गए थे; पेशवा ने अपने एक पत्र में चिमाजी को उनकी चढ़ाई का उद्देश्य बताते हुए लिखा कि—"सारी बात का सारांश और मतलब यह है कि ऐसी नीति का पालन किया जावे कि सारा क़र्ज़ा चुका दिया जा सके और भविष्य के लिए (द्रव्य का) स्थायी प्रबन्ध हो जावे।" पेशवा ने चिमाजी को इस बात की ताक़ीद की थी कि उपर्युक्त बात का पूरा-पूरा ध्यान रखे, और शीघ्रातिशीघ्र धन भेजे।[२]

ज्योंही बाजीराव ने चिमाजी द्वारा गिरधर बहादुर की पराजय का हाल सुना; उसने चिमाजी को आज्ञा दी कि उज्जैन से बहुत-सा द्रव्य

---

[१] पे० द०, १३, पत्र सं० १३

[२] पे० द०, १३, पत्र सं० १४

बलपूर्वक वसूल करे; साथ यह भी ताक़ीद कर दी कि ज्योंही प्रान्त का शासन-प्रबन्ध हो जावे चिमाजी सीधे किसी धनी प्रदेश में चले जावें और वहाँ धन एकत्रित कर अपनी सेना को पुनः सुसज्जित कर डालें। अन्त में पेशवा ने लिखा कि ऐसी नीति अंगीकार की जावे कि जिससे दुश्मनों की पराजय के साथ ही क़र्ज़ा भी बेबाक़ किया जा सके।[1] सतारा में तो धन की सबसे ज़्यादा ज़रूरत थी; चिमाजी की विजय की सूचना जब सतारा पहुँची तो पत्र द्वारा चिमाजी से यही पूछा गया कि इस युद्ध में कितना द्रव्य हाथ लगा।[2]

सन् १७२८-९ ई० में मालवा पर चढ़ाई के समय चिमाजी को दी गई पेशवा की आज्ञाएँ

तदनन्तर, जब मरहठों की विजय एवं उनकी सेना के आगे बढ़ने का विशेष विवरण पेशवा को ज्ञात हुआ तब पेशवा ने चिमाजी को आदेश दिया कि औरंगाबाद के साहूकार द्वारा तत्काल ही रुपया दक्षिण भेज देवें।[3] पेशवा ने यह भी हुक्म दिया कि सन् १७२५-६ में अम्बाजी पन्त की चढ़ाई सम्बन्धी जो कुछ भी रुपया नन्दलाल मण्डलोई से लेना बाक़ी रहा था, वह भी कड़ाई के साथ उससे वसूल कर लिया जावे।[4] पुनः गिरधर बहादुर की जितनी भी जागीर हो उसे ज़ब्त कर उस ज़मीन का लगान भी एकत्रित करने के लिए पेशवा ने चिमाजी को लिखा।[5] बाजी-

---

[1] पे० द०, १३, पत्र सं० १५

[2] पे० द०, १३, पत्र सं० १७

[3] पे० द०, १३, पत्र सं० १८-१९

[4] पे० द०, १३, पत्र सं० २०-२१

[5] पे० द०, १३, पत्र सं० २२, २३

राव को तो इसी बात की पूरी-पूरी चिन्ता थी कि, किसी भी तरह से क़र्ज़ा बेबाक़ हो जावे; उसने अपने भाई को स्पष्ट शब्दों में लिखा था—"जो प्रदेश तुम्हें अच्छा जान पड़े वहाँ जाओ, किन्तु जिस किसी भी प्रकार से द्रव्य प्राप्त हो और क़र्ज़ा पट जावे वही कार्य करो।"[1]

किन्तु शीघ्र ही यह स्पष्टरूपेण ज्ञात हो गया कि मालवा प्रान्त से बहुत-सा द्रव्य प्राप्त न हो सकेगा; पुनः इसी आशा से कि सहायतार्थ दिल्ली से सेना आदि भेजी जावेगी, प्रान्त के निवासी भी मरहठों का सामना करने की तैयारी करने लगे थे। एवं बाजीराव ने चिमाजी को लिखा कि धन के लिए मालवा में वे विशेष उपद्रव न मचावें; जिस किसी दूसरे प्रान्त में सरलता से धन प्राप्त हो सके वहाँ जाना ही अधिक उचित होगा। गिरधर बहादुर की जागीर की ज़मीन के लिए भी पेशवा ने चिमाजी को सलाह दी कि यदि पुराने किसान और ज़मींदार लगान देने का वादा करलें तो उन्हें बेदख़ल न किया जावे। अन्त में पेशवा ने लिखा था कि—"बहुत सावधानी से रहो। ऐसा प्रयत्न करो कि धन प्राप्त हो कर दूसरों का क़र्ज़ा बेबाक़ किया जा सके। बहुत विचारपूर्वक काम करो, एक पर ही पूरा भार न डालो। किसी भी प्रकार की सुस्ती न करना। अपने शारीरिक सुख का ख़याल न करना। द्रव्य प्राप्त हो ऐसा कार्य करो।"[2]

चिमाजी का निजी क़र्ज़ा भी बहुत था, और ज्योंही उनकी विजय

---

[1] पे० द०, १३, पत्र सं० २९। पे० द०, १३, पत्र सं० ३३ में भी बाजीराव ने चिमाजी को लिखा था कि—"मालवा प्रान्त का सारा द्रव्य जप्त कर लेना। अनेक युक्तियों से कुशलता-पूर्वक द्रव्य प्राप्त करना। जहाँ भी रुपया प्राप्त हो सके, वहीं जाओ।"

[2] पे० द०, १३, पत्र सं० ३०

का वृत्तान्त फैला, उनके लेनदार भी क़र्ज़ा चुकाया जाने के लिए चिमाजी को हैरान करने लगे।[१]

यद्यपि इस चढ़ाई में चिमाजी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई थी; तथापि मालवा पर मरहठों का पूर्ण आधिपत्य स्थापित करने के लिए पेशवा बिलकुल ही उत्सुक न था; वह यही चाहता था कि किसी भी प्रकार नियमित रूप से मालवा की चौथ मिलने का प्रबन्ध हो जावे।[२] मरहठे राजनीतिज्ञों का ख़याल था कि राजा जयसिंह उन्हें प्रान्त की चौथ आदि बराबर दिये जावेगा, इसी लिए राजा शाहू ने आज्ञा दी थी कि माण्डू का क़िला राजा जयसिंह को लौटा दिया जावे। सन् १७३० ई० में सम्राट् की आज्ञानुसार जब जयसिंह ने मरहठों के साथ समझौते की बातचीत शुरू की, तब राजा शाहू इस बात पर राज़ी हो गया कि यदि नियमित रूप से उसे सालाना दस लाख रुपया दिया जावे तो वह अपने किसी भी सेनापति को नर्मदा पार कर उत्तरी भारत में जाने न देगा।[३] यह नीति समस्त भारत में 'हिन्दू-पद-पादशाही' स्थापित करने के ध्येय के बिलकुल ही अनुरूप न थी; पुनः *मुग़ल-साम्राज्य* के विरुद्ध धार्मिक युद्ध करने वाले

यदि मालवा की चौथ आदि वसूल होने का नियमित रूप से प्रबन्ध हो सके तो मालवा पर मरहठों का आधिपत्य स्थापित करने के लिए पेशवा का उत्सुक न होना

---

[१] पे० द०, १३, पत्र सं० २५

[२] राजवाड़े, ६, पत्र सं० ५९९

[३] वाड़, १, पत्र सं० १९८; पे० द०, १०, पत्र सं० ६६

उसी साम्राज्य से द्रव्य लेकर धार्मिक युद्ध समाप्त करने को किसी भी तरह तैयार नहीं हो सकते थे।

सन् १७२८-९ ई० में मालवा की चढ़ाई में चिमाजी की पूर्ण सफलता के कारण

धार्मिक सहानुभूति के कारण ही मालवा में मरहठों के दल को सफलता प्राप्त हुई, यह कहना किसी भी प्रकार सत्य न होगा। अमझरा के युद्ध-क्षेत्र में मरहठों की जो पूर्ण विजय हुई, वह आशातीत ही नहीं किन्तु पूर्णतया आकस्मिक भी थी। यदि यह कहा जावे कि मालवा के स्थानीय ज़मींदारों तथा राजाओं की सहायता से ही चिमाजी को सफलता प्राप्त हुई, तो ऐतिहासिक आधार और प्रमाण उस कथन के विरुद्ध पड़ते हैं। मरहठों का दल इतना शक्तिशाली था कि अपने रद्दी २००० घुड़सवारों को लेकर भी यदि नन्दलाल मण्डलोई उनका सामना कर उन्हें रोकने का प्रयत्न करता तो उसे किसी भी हालत में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती थी। इसके विपरीत पेशवा के उस पत्र का उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें पेशवा ने यह स्पष्ट लिखा था कि स्थानीय राजा और ज़मींदारों ने न तो मरहठों का आधिपत्य ही स्वीकार किया और न आसानी से उन्हें चौथ आदि देने को ही वे तैयार हुए।[1]

यह सम्भव है कि मालवा के शाही सूबेदार का वहाँ के ज़मींदारों, जागीरदारों आदि के साथ अच्छा सम्बन्ध न रहा हो, किन्तु इस आपसी मनमुटाव का कोई धार्मिक कारण न था। औरंगज़ेब की मृत्यु को दो युग बीत चुके थे। सन् १७१३ ई० में जब प्रथम बार जज़िया कर बन्द

[1] पे० द०, १३, पत्र सं० ३०

किया, उसी समय एक प्रकार से उस कर का अन्त होगया; बाद में उस कर की पुनः स्थापना के प्रयत्नों का विफल होना एक अवश्यम्भावी बात थी। सन् १७२८ के पहिले ही जज़िया अन्तिम बार बन्द किया जा चुका था, और उसकी पुनः स्थापना की कोई भी सम्भावना न रह गई थी। पुनः इस समय एक कट्टर हिन्दू ही मालवा का सूबेदार था; और उसी सूबेदार का सहकारी, दया बहादुर, उन व्यक्तियों में से था, जिन्होंने जज़िया को पूर्णतया बन्द कराने के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न किया था, और जो उस प्रयत्न में सफल भी हुए थे। ऐसी हालत में धार्मिक कारणों से ही मरहठों का स्वागत करने के लिए मालवा की प्रजा के सम्मुख कोई भी प्रलोभन न था।

जयसिंह ने क्यों मरहठों की सहायता की ?

मरहठों को सहायता देने की नीति अंगीकार करने में जयसिंह भी किसी धार्मिक हेतु से प्रेरित नहीं हुआ था। वह तो यही चाहता था कि किसी भी प्रकार उसे मालवा की सूबेदारी मिल जावे, और इस प्रकार यमुना के तीर से नर्मदा के तट तक उसका आधिपत्य स्थापित हो सके। जयसिंह का विश्वास था कि नियमित रूप से मरहठों को चौथ आदि देकर वह उन्हें सन्तुष्ट कर मालवा में घुसने न देगा, और इस प्रकार उस प्रान्त पर उसका आधिपत्य चिरस्थायी हो सकेगा। किन्तु मालवा की सूबेदारी उसे उसी हालत में मिल सकती थी यदि मरहठों के उपद्रवों से हैरान होकर दूसरा कोई मालवा में सूबेदारी करने को उतारू न हो।

इसी दृष्टिकोण से जयसिंह ने मरहठों की सहायता की और इसी

कारण उसने मालवा के हिन्दू राजाओं को भी सलाह दी कि वे दक्षिण के इन आक्रमणकारियों का विरोध न करें। परिस्थिति से मजबूर होकर ही गिरधर बहादुर को लगान आदि वसूल करने में पूरी-पूरी सख़्ती करनी पड़ी, क्योंकि इसके बिना उसे द्रव्य मिलना असम्भव था। एवं जब करों आदि का बहुत भार मालवा के राजाओं, ज़मींदारों तथा जागीरदारों पर आ पड़ा तो वे बहुत ही असन्तुष्ट हो गए; उनका ख़याल था कि मरहठों की चौथ आदि की रकम इतनी अधिक न होगी। इस प्रकार आर्थिक कारण से ही ये ज़मींदार आदि मरहठों की ओर झुके। दिसम्बर, १७३० ई० तक उन्होंने मरहठों के साथ सहयोग नहीं किया, किन्तु उसके बाद तो वे खुले तौर से मरहठों के साथ जा मिले।

आर्थिक कारण से मालवा में असन्तोष होना

परिशिष्ट—क

मण्डलोई दफ़्तर के पत्र

इन पिछले सालों में मण्डलोई दफ़्तर के कुछ पत्रों की प्रामाणिकता के बारे में बहुत वाद-विवाद हुआ है। नन्दलाल सन् १६६४ से १७३१

नन्दलाल मण्ड-लोई और मरहठे

ई० तक इन्दौर के पास कम्पेल परगने का मण्डलोई या क़ानूनगो रहा था। वह बहुत प्रख्यात व्यक्ति न था, तथापि मरहठों द्वारा मालवा विजय के इतिहास में, मरहठों के साथ होने वाले उसके लेन-देन तथा मरहठों की ओर उसके झुकाव को बहुत ही महत्त्व दिया गया है। नन्दलाल के वंशजों से जो विवरण सर जान मालकम को मिला, उसी के आधार पर बिना किसी शंका-समाधान के ही मालकम ने अपने 'मेमायर' में नन्दलाल के महत्त्व का विशद उल्लेख किया है (मालकम, १, पृ० ८२-५ फु० नो०)। इस विवरण में बहुत कुछ अत्युक्ति से काम लिया गया है और मण्डलोई घराने को वह महत्त्व दिया है, जिसकी पुष्टि पेशवा के दफ़्तर से प्राप्त मराठी पत्रों और अन्य काग़ज़ों से नहीं हो सकती है।

"मराठ्यांच्या इतिहासाचीं साधनें" के छठे खण्ड के अन्त में राजवाड़े ने मण्डलोई दफ़्तर के प्रायः सब महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक पत्र छाप दिये हैं। इन पत्रों में से कई की तारीखें ग़लत दी गई हैं, जिनको दुरुस्त

करना अत्यावश्यक हो जाता है। इन पत्रों से किसी भी विस्मयकारक बात का पता नहीं लगता है। किन्तु सरदेसाई ने अपनी "मराठी रियासत" के मध्य भाग, खण्ड १ में (पृ० ३२५-२६) सात पत्र प्रकाशित किये हैं, जो हिन्दी भाषा में लिखे हुए हैं। सरदेसाई को ये पत्र ग्वालियर-राज्य निवासी श्रीयुत भास्कर रामचन्द्र भालेराव से प्राप्त हुए थे। ऐसा कहा जाता है कि मण्डलोई दफ़्तर के कुछ पुराने पत्रों की नक़लें मण्डलोई के वंशजों द्वारा ही एक पुस्तिका के रूप में छाप कर प्रकाशित की गई थीं; उसी पुस्तिका से ये नक़लें ली गई थीं। सन् १७२४ में गिरधर बहादुर की सारंगपुर के युद्ध में हार और मृत्यु होने के समान ही अनेकानेक अनोखी बातें इन पत्रों में लिखी हुई थीं। मराठी रियासत में सन् १७२४-१७३२ का इतिहास लिखते समय सरदेसाई ने इन पत्रों का पूर्ण उपयोग किया। यद्यपि इन हिन्दी पत्रों में दी गई कितनी ही तारीख़ों की सर यदुनाथ सरकार ने उपेक्षा की किन्तु उन्होंने भी ईर्विन कृत "लेटर मुग़ल्ज़" का सम्पादन करते समय इन पत्रों का उपयोग किया था।

सरदेसाई द्वारा प्रकाशित हिन्दी में लिखे हुए सात पत्र

जब से सरदेसाई ने इन पत्रों को "मराठी रियासत" में प्रकाशित किया है, उनकी प्रामाणिकता पर बहुत बड़ा वाद-विवाद छिड़ गया है। कोई तीस वर्ष पहिले, शिपोशी (रत्नागिरी-डिस्ट्रिक्ट) के श्रीयुत श्री० वि० अठले ने सारे मण्डलोई दफ़्तर को देखा था, उन्होंने प्रायः सब महत्त्वपूर्ण पत्रों की नक़लें भी कर ली थीं; उस समय ऐसा कोई वाद-विवाद भी छिड़ा न था। श्रीयुत अठले ने प्रारम्भ में ही सरदेसाई को चेतावनी दी

थी कि ये पत्र अप्रामाणिक हैं, और मण्डलोई दफ़्तर में ऐसे कोई भी पत्र नहीं हैं, जिनकी प्रतिलिपियाँ इन पत्रों को मान सकें। सन् १९२७ ई० में तो नन्दलाल मण्डलोई के वर्तमान वंशज, राव छत्रकरण, ने भी इन हिन्दी पत्रों को अपनाने से इन्कार कर दिया। (मध्य०, १, पृ० ३२१-२; भा० इ० सं० म० त्रै०, वर्ष ९, अंक १, पृ० ४०-४४)

इन पत्रों की उपेक्षा करनी चाहिए

तत्त्वान्वेषी इतिहासकार के लिए तो हिन्दी में लिखे हुए ये सात पत्र अग्राह्य हैं। अगर उन पत्रों की ही जाँच की जावे और उनके आन्तरिक पुरावे पर ही विचार किया जावे, तब भी इन पत्रों की अप्रामाणिकता स्पष्ट हो जाती है। अभी-अभी पेशवा के दफ़्तर से प्राप्त सैकड़ों तत्कालीन पत्र प्रकाशित हुए हैं; उन पत्रों से उस काल की घटनाओं का जो विवरण तथा जो क्रम ज्ञात होता है, वह इन पत्रों में दी गई घटनावली से पूर्णतया भिन्न है। इन पत्रों की भाषा भी बहुत ही आधुनिक जान पड़ती है। नन्दलाल के लिए जिन बड़े-बड़े ख़िताबों एवं शब्दाडम्बरपूर्ण विशेषणों का प्रयोग किया गया है, उनसे भी शंकाएँ उठती हैं, क्योंकि मुग़ल साम्राज्य के एक साधारण क़ानूनगो के लिए इतना सब लिखा जाना कठिन ही नहीं असम्भव प्रतीत होता है। एवं मेरा निश्चित मत यही है कि हिन्दी में लिखे हुए ये सात पत्र बहुत बाद में (सम्भव है कि १९ वीं शताब्दी के अन्तिम चौथाई भाग में) उस घराने का ऐतिहासिक महत्त्व स्थापित करने और उसी महत्त्व के आधार पर अधिक मान के लिए दावा करने के उद्देश्य से ही शायद बनाए गए थे; ये पत्र अप्रामाणिक हैं एवं पूर्णतया उपेक्षणीय हैं।

इन पत्रों को अप्रामाणिक मानने के बाद मण्डलोई दफ़्तर में ऐसे महत्त्व के कोई पत्र या काग़ज़ नहीं रह जाते हैं जिनसे मालवा के इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ सके। यदि ख़ास-ख़ास पत्रों को छोड़ दिया जावे तो बाक़ी सब पत्र मण्डलोई द्वारा दिये गए रुपयों की रसीदें ही हैं।

परिशिष्ट — ख

गिरधर बहादुर तथा दया बहादुर की पराजय एवं मृत्यु की तारीख़ों की समस्या

अब तक इतिहासकारों का यही विश्वास बना रहा है कि गिरधर बहादुर एवं दया बहादुर, दोनों चचेरे भाई, दो भिन्न भिन्न लड़ाइयों में, भिन्न भिन्न समय पर मारे गए। "सियार-उल्-मुताख़रीन" तथा उसी के समान अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से ही इस विश्वास का प्रारम्भ हुआ,[1] और दन्तकथाओं तथा परम्परागत वृत्तान्तों के आधार पर इस विश्वास की पुष्टि में बहुत कुछ लिखा गया। इस विश्वास ने अब जड़ जमा ली है।

इतिहासकारों का विश्वास है कि दोनों दो अलग-अलग लड़ाइयों में मारे गए थे

"सिलेक्शन्ज़ फ्राम दी पेशवा दफ़्तर" के प्रकाशन से पहिले ऐसा अनुमान किया जाता था कि इन दोनों युद्धों में दो या अधिक वर्षों का अन्तर था। उपर्युक्त ग्रन्थमाला के १३वें खण्ड में जो काग़ज़-पत्र प्रकाशित हुए हैं, उनसे यह स्पष्टतया साबित है कि दया बहादुर भी सन् १७२८ ई० में ही मारा गया था; एवं इतिहासकारों की अन्तिम सूझ यह थी कि दोनों युद्धों में चार या अधिक से अधिक एक

[1] यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि रुस्तम अली ने अपने ग्रन्थ में मालवा के सम्बन्ध में कहीं भी दया बहादुर का उल्लेख नहीं किया है। "सियार-उल्-मुताख़रीन" में वर्णित मनगढ़न्त घटनाओं में से कोई भी इस ग्रन्थ में नहीं मिलती हैं।

सप्ताह का अन्तर रहा होगा। किन्तु सर यदुनाथ सरकार ने दीर्घकालीन वाद-विवाद के इस निर्णय को अन्तिम निर्णय नहीं माना।

समकालीन मौलिक आधार-ग्रन्थों में इस प्रश्न के सम्बन्ध में जो कुछ भी लिखा है उसकी पूरी-पूरी जाँच करने पर ही इस प्रश्न का पूर्ण निर्णय किया जा सकता है। यदि मण्डलोई दफ़्तर के हिन्दी में लिखे हुए उन सात प्रसिद्ध जाली पत्रों को छोड़ दिया जावे तो केवल दो ही मौलिक समकालीन आधार-ग्रन्थ ऐसे रह जाते हैं, जिनकी जाँच की जाना आवश्यक है[1] :—

मौलिक आधार-ग्रन्थों की जाँच

१—"अजायब-उल्-अफ़ाक़"—गिरधर बहादुर तथा उसके घराने का पत्र-संग्रह (ब्रिटिश म्यूज़ियम-ओरियण्टल मेनस्क्रिप्ट नं० १७७६), तथा

२—"सिलेक्शन्ज़ फ़ाम दी पेशवा दफ़्तर" भाग १३, २२ और ३०।

इन दोनों ग्रन्थों में से प्रथम में दया बहादुर का विशेष उल्लेख नहीं

---

[1] रुस्तम अली कृत "तारीख़-इ-हिन्दी" भी एक समकालीन मौलिक आधार-ग्रन्थ है। किन्तु उससे इस प्रश्न पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता है। दया बहादुर के बारे में तो रुस्तम अली पूर्णतया मूक है। पृ० ५१३ पर गिरधर बहादुर के लिए सिर्फ़ यही लिखा है कि—"इसी साल सम्राट् की सेवा में अर्ज हुई कि ग़नीम (मरहठे) ने नर्मदा को पार कर मालवा के सूबेदार गिरधर बहादुर को बरबाद कर दिया (फारसी मूल में लिखा है—गिरधर बहादुर सूबेदार मालवा रा ग़ारत कर्द)।"

रुस्तम अली ने इस घटना का मुहम्मदशाह के जलूसी सन् १२वें (२१-१०-१७२९ ई० से १०-१०-१७३० ई० तक) के अन्तर्गत उल्लेख किया है; किन्तु शब्दों द्वारा (Chronogram) उसकी मृत्यु का हिजरी सन् ११४१ (२७ जुलाई १७२८ से १५ जुलाई १७२९ ई० तक) दिया, जो बिलकुल सही है। (रुस्तम ८, पृ० ५१३-५)

पाया जाता;[1] एवं उस ग्रन्थ से दया बहादुर के साथ होने वाले युद्ध पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता है। पुनः जिस युद्ध में गिरधर बहादुर मारा गया, उस युद्ध का विस्तृत विवरण भी इस ग्रन्थ में नहीं मिलता है। थोड़े से पत्रों में ही (पत्र सं० १८२, १८६; पृष्ठ २ अ, ६६ अ, ७० ब) गिरधर बहादुर की पराजय और मृत्यु का उल्लेख मिलता है, किन्तु इन पत्रों पर कोई भी तारीख़ नहीं दी हुई है। एवं इस प्रश्न को हल करने में हमें "अजायब-उल्-अफ़ाक़" से विशेष सहायता नहीं मिलती है। इस प्रकार "सिलेक्शन्ज़ फ्राम दी पेशवा दफ़्तर" ही एक-मात्र समकालीन ऐतिहासिक आधार रह जाता है जिसके आधार पर ही इस प्रश्न को सुलझा सकते हैं।

अमझरा के पास ही गिरधर बहादुर के साथ मरहठों का युद्ध हुआ था। चिमाजी ने अमझरा से ही नवम्बर ३०, १७२८ ई० को पेशवा के नाम

अमझरा के युद्ध में गिरधर बहादुर की पराजय और मृत्यु; नवम्बर २९, १७२८ ई०

ख़त लिख भेजा, जिसमें गिरधर बहादुर पर प्राप्त अपनी विजय का पूरा-पूरा विवरण लिखा। (अपने दिसम्बर २७, १७२८ ई० के पत्र में पेशवा ने चिमाजी के इस पत्र की पहुँच लिखी थी; पे० द०, १३ पत्र सं० २३)। चिमाजी के भ्रमण-वृत्तान्त को देखने से यह ज्ञात होता है कि नवम्बर २६, १७२८

---

[1] अजायब० में एक ही स्थान पर (पत्र सं० २०४, पृष्ठ ८२ अ) भवानीराम के काका का कुछ उल्लेख मिलता है। तुर्रेबाज़ खाँ ने नजमुद्दीन अली को लिखा था कि —"सम्राट् उसके (भवानीराम के) काका तथा उसके (भवानीराम के) पिता राजा गिरधर बहादुर की ईमानदारी और स्वामिभक्ति से पूर्णतया परिचित हैं। अपना कर्तव्य करते हुए ही राजा ने अपनी जान दे दी थी।" यह अनुमान किया जा सकता है कि उपर्युक्त उद्धरण में भवानीराम के काका से दया बहादुर का ही निर्देश किया गया हो। किन्तु पत्र-लेखक ने इस बारे में ऊपर उद्धृत वाक्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं लिखा है।

ई० को मरहठों ने प्रथम बार अमझरा में डेरा डाला। पे० द०, १३, पत्र सं० १५ और २३ में गिरधर बहादुर के साथ होने वाले युद्ध का विस्तृत विवरण मिलता है। मराठी वर्णनों के अनुसार गिरधर बहादुर ने ससैन्य आकर अमझरा में मोर्चाबन्दी की थी। यह सोचकर कि माण्डू के क़िले के पास से गुज़रने वाला रास्ता अधिक चक्करदार है और उस सुप्रसिद्ध क़िले पर से उस घाटी में होकर चढ़ने वाले आक्रमणकारियों पर आसानी से हमला किया जा सकता है, मरहठे नर्मदा पार करते ही बकानेर, मनावर और अम्बिका देवी की गुफ़ाओं के पास से होती हुई अमझरा जाने वाली राह से ही चढ़ाई करेंगे, ऐसा गिरधर बहादुर का ख़याल था, एवं अम्बिका देवी की गुफाओं के पास से चढ़ने वाली घाटी को ही रोक कर गिरधर बहादुर डट गया। किन्तु जब कुछ काल तक न तो मरहठे ही उस घाटी में चढ़ते हुए देख पड़े और न उनका कोई समाचार ही मिला, तब तो गिरधर बहादुर को आशंका हुई कि शायद मरहठे माण्डू वाली अरक्षित राह से ही मालवा में घुस आए होंगे और कहीं उसके पृष्ठ भाग पर आक्रमण कर उसके लिए पीछे हटने के लिए सब रास्ते बन्द न कर दें, सशंकित होकर (मराठी में लिखा है—'वहमी करून') वह उत्तर-पूर्व की ओर मुड़ गया और अमझरा तथा तिरला के बीच के मैदान में उतर पड़ा; यहीं उसे पूर्व की ओर से बढ़ता हुआ मरहठों का दल मिला। तत्काल घनघोर युद्ध शुरू हो गया और उसी युद्ध में गिरधर बहादुर और उसके कई प्रधान सहकारी और मुख्य मुख्य सरदार खेत रहे। उसकी सेना तथा उसका पड़ाव बुरी तरह से लूटे गए, और बहुत सा लूट का माल मरहठों के हाथ लगा। किस स्थान पर यह युद्ध हुआ था उसका

ठीक ठीक नाम पता पत्रों में नहीं लिखा गया; किन्तु यह निश्चित है कि अमझरा के पास ही नवम्बर २६, १७२८ ई० को यह लड़ाई हुई थी। मराठी काग़ज़ों से हमें यह ज्ञात होता है कि नवम्बर २५ को चिमाजी नर्मदा के उत्तर तीर पर धरमपुरी के पास थे, नवम्बर २६ को नालछा में, और नवम्बर २६ को अमझरा में उन्होंने मुक़ाम किया था; अमझरा में चार दिन ठहर कर वे उज्जैन की ओर चल दिये। अमझरा से नवम्बर ३० को लिखे गए ख़त में उन्होंने युद्ध का विवरण पेशवा को निवेदन किया। चिमाजी के पत्र में दिए गए वृत्तान्त से यही ख़याल होता है कि आकस्मिक मुठभेड़ से ही युद्ध प्रारम्भ होगया और बहुत देर तक होता रहा; अतएव यह कहा जा सकता है कि नवम्बर २६ को ज्योंही मरहठे घुड़सवार अमझरा के पास पहुँचे युद्ध शुरू होगया। पूरे छः घण्टों तक घनघोर युद्ध तथा तदुपरान्त मुग़ल सेना के पड़ाव को लूटने के बाद जब किसी भी प्रकार के ख़तरे की आशंका न रही, विजेताओं ने अमझरा में ही मुक़ाम किया।

जिस माने हुए दूसरे युद्ध में दया बहादुर की पराजय और मृत्यु हुई, उस युद्ध का विवरण भी पे० द०, १३, पत्र सं० १७,२६ और २७ में

जिस युद्ध में दया बहादुर की पराजय तथा मृत्यु हुई, उसका विवरण

दिए हुए वर्णनों के आधार पर इस प्रकार से संक्षेप में दिया जा सकता है। ऐसा लिखा मिलता है कि दया बहादुर ने अमझरा में मोर्चाबन्दी की और वहाँ की घाटी को रोके डटा रहा। किन्तु मरहठे माण्डू की घाटी पर से चढ़ कर दया बहादुर की ओर बढ़े। दया बहादुर भी सशंकित होकर कि (यहाँ भी मराठी

में उन्हीं शब्दों "वहमी करून" की पुनरावृत्ति हुई है) कहीं मरहठे माण्डू वाली राह से तो नहीं आ रहे हैं, अमझरा छोड़कर धार की ओर बढ़ा। जब दोनों विरोधी सेनाओं की मुठभेड़ हुई तो घनघोर युद्ध शुरू होगया और कोई छः घण्टे तक चलता रहा। दया बहादुर तथा उसके दो प्रधान सरदार मारे गए। दया बहादुर का पड़ाव भी लूटा गया; १८ हाथी, कई घोड़े, अनेक निशान और नगाड़ों के अतिरिक्त बहुत-सा लूट का माल मरहठों के हाथ लगा।

इस दूसरे युद्ध के सम्बन्ध में जो दो बातें निश्चितरूप से कही जा सकती हैं, वे ये हैं:—

१—दया बहादुर अमझरा के पास ससैन्य मोर्चाबन्दी किए डटा हुआ था, और मरहठे दक्षिण से आ रहे थे।

२—यह युद्ध धार और अमझरा के बीच में किसी स्थान पर हुआ।

चिमाजी के भ्रमण-वृत्तान्त को देखने से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि इस चढ़ाई के समय मरहठे माण्डू के घाट से एक ही बार और वह भी नवम्बर २७, १७२८ ई० को ही चढ़े। चिमाजी के भ्रमण का जो मार्ग दया बहादुर के साथ होने वाले इस युद्ध-सम्बन्धी पत्रों में दिया है, वही चिमाजी के भ्रमण-वृत्तान्त में भी दिखलाया गया। इस प्रकार जिस मार्ग से मरहठों ने गिरधर बहादुर पर आक्रमण किया, उस राह से ही उन्होंने दया बहादुर पर भी हमला किया; दोनों चढ़ाइयाँ एक ही राह से हुईं। किन्तु जिन पत्रों में दया बहादुर के साथ इस युद्ध का विवरण मिलता है वे सन् १७२८ ई० में न लिखे जाकर किसी दूसरे साल में लिखे गए

होंगे यह निर्धारित करना एक असम्भव बात है। एवं इस सारे प्रश्न को एक ही प्रकार से हल किया जा सकता है, और वह यह कि अमभरा के पास एक ही युद्ध हुआ, उसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी युद्ध नहीं हुआ। इस प्रकार निर्विवाद रूप से साबित है कि नवम्बर २९, १७२८ ई० को अमभरा के युद्ध में गिरधर बहादुर मारा गया; और दया बहादुर भी उसी युद्ध में खेत रहा। इस निर्णय की पुष्टि में चाहे जितना सबूत पेश किया जा सकता है।

अमभरा के पास एक ही युद्ध हुआ और उसी में दोनों चचेरे भाई मारे गए; नवम्बर २९, १७२८ ई०

पहले युद्ध से चार दिन या एक सप्ताह बाद ही अमभरा में दूसरा युद्ध नहीं हो सकता था; क्योंकि गिरधर बहादुर की पराजय और मृत्यु के बाद जब गिरधर बहादुर की सेना भाग खड़ी हुई, तब ही मरहठों ने अमभरा में मुक़ाम किया; अगर उसी स्थान में दया बहादुर उपस्थित होता और यदि तब तक वह अपराजित ही रहता तो मरहठों के लिए अमभरा में मुक़ाम करना एक असम्भव बात होती। पुनः मराठी पत्रों से यह बात निश्चितरूपेण व्यक्त होती है कि मरहठों के आने का दया बहादुर को कुछ भी पता नहीं लगा, और इसी ख़याल से कि कहीं मरहठे पूर्व की ओर से उसपर आक्रमण न कर दें, सशंकित हो कर ही वह अमभरा से धार की ओर चला। यह बात किसी भी प्रकार नहीं मानी जा सकती कि गिरधर बहादुर की मृत्यु के बाद भी, कुछ दिन के लिए ही क्यों न हो, दया बहादुर जीवित रहा हो और दया बहादुर को मरहठों और गिरधर बहादुर के युद्ध का कुछ भी पता न लगा हो, और वह भी उस हालत में

कि गिरधर बहादुर पर विजय प्राप्त करने के बाद मरहठों ने भी उसी स्थान पर (अमझरा में ही) पड़ाव डाला हो ।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसा अभावात्मक सबूत भी मिलता है जिससे दूसरा युद्ध भी हुआ था इस सिद्धान्त का पूर्णरूप से खण्डन होता है । दया बहादुर की पराजय का वृत्तान्त पेशवा के पास दिसम्बर २०, १७२८ ई० को पहुँच गया (पे० द०, ३०, पृ० २७८), तथापि उसने अपने दिसम्बर २७ के पत्र में (पे० द०, १३, पत्र सं० २३) केवल गिरधर बहादुर के साथ होने वाले युद्ध का ही उल्लेख किया और यही लिखा कि — "गिरधर बहादुर को हराने के बाद, तुम (चिमाजी) उज्जैन की ओर बढ़े" । अगर दया बहादुर के साथ कोई दूसरा युद्ध हुआ होता और यदि उसमें चिमाजी की विजय हुई होती तो पेशवा अपने इस पत्र में अवश्य उसका भी उल्लेख करता; और यदि इसमें न करता तो जनवरी ४, १७२९ ई० के पत्र में (पे० द०, १३, पत्र सं० २९) तो इस दूसरे युद्ध का उल्लेख होना एक अवश्यम्भावी बात थी, किन्तु उस पत्र में भी पेशवा ने केवल चिमाजी द्वारा गिरधर बहादुर की पराजय की घटना का ही उल्लेख किया है । क्यों पेशवा ने दया बहादुर की पराजय और मृत्यु का उल्लेख नहीं किया, इस प्रश्न का उत्तर सरलतापूर्वक दिया जा सकता है; पेशवा की दृष्टि से अमझरा के युद्ध में एक ही महत्त्वपूर्ण घटना घटी और वह थी मालवा के सूबेदार गिरधर बहादुर की पराजय और मृत्यु । पेशवा के लिए सूबेदार के सहकारी दया बहादुर की मृत्यु का कोई विशेष महत्त्व नहीं था, अमझरा के उस महान् युद्ध में अनेक छोटी-मोटी घटनाएँ घटीं और उनमें से एक यह भी थी; और मेरे अनुमान से पेशवा ने यह लिख कर कि

गिरधर बहादुर के अनेक सरदार भी मारे गए, दया बहादुर की मृत्यु का भी परोक्ष रूप से उल्लेख कर दिया था। गिरधर बहादुर तथा दया बहादुर, दोनों की सेनाओं की मोर्चाबन्दी, दोनों चचेरे भाइयों की गति तथा दोनों युद्धों के परिणाम में अनोखी समानता पाई जाती है। ये सब बातें अकाट्य रूप से साबित करती हैं कि अमझरा के पास एक ही युद्ध हुआ, और उसी युद्ध में नवम्बर २६, १७२८ ई० को दोनों चचेरे भाई, मालवा का सूबेदार गिरधर बहादुर, और गिरधर बहादुर की सेना का प्रधान सेनापति दया बहादुर, मारे गए। अमझरा के पास ही अमझरा और तिरला के बीच के मैदान में यह युद्ध हुआ; मरहठों के फुर्तीले घुड़सवार एक स्थान पर ही तो एकत्रित नहीं हुए थे, किन्तु वे अभी बढ़ ही रहे थे कि शत्रु का सामना हो गया, एवं केवल तिरला में ही एकत्रित और संगठित न होकर वे बहुत दूर-दूर तक बिखर गए थे।

कई पत्रों में गिरधर बहादुर की पराजय और मृत्यु का कुछ भी उल्लेख न होते हुए केवल दया-बहादुर की पराजय और मृत्यु

अब सिर्फ़ एक ही प्रश्न हल करना रह गया है। क्या कारण है कि सतारा से भेजे गए, तथा अन्य मरहठे सेनापतियों के कई बधाई-सूचक पत्रों में गिरधर बहादुर का कोई उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु केवल दया बहादुर की ही पराजय और मृत्यु का उल्लेख किया गया? महाराष्ट्र का साधारण जन-समाज तथा कई मरहठे सेनापति दया बहादुर को अधिक जानते थे; उन्हें गिरधर बहादुर का विशेष परिचय न था, और न गिरधर बहादुर के पद की महत्ता का ही उन्हें पूरा पता था। १७२५-२६ ई० की सरदी की मौसिम में मरहठों को

का विवरण पाया जाना — उसका कारण

मालवा से निकाल बाहर करने में दया बहादुर ही बहुत क्रियाशील था, और जहाँ तक वह जीवित रहा उसने मरहठों को मालवा प्रान्त में चौथ वसूल करने न दी (पे० द०, १३, पत्र सं० ६, ११); एवं जब मरहठों को उनके कट्टर शत्रु, दया बहादुर की पराजय और मृत्यु का वृत्तान्त ज्ञात हुआ तब तो वे बहुत ही प्रसन्न हुए। कई मरहठे सेनापति यह बात ठीक तौर से जानते भी न थे कि दया बहादुर को मालवा में कौन सा पद प्राप्त था, एवं एक पत्र में (पे० द०, १३, पत्र सं० २५) दया बहादुर को उज्जैन का सूबेदार लिखा है। इन सेनापतियों ने तथा साहूकारों ने गिरधर बहादुर की मृत्यु की घटना पर ध्यान नहीं दिया, उन्हें तो गिरधर बहादुर के चचेरे भाई, दया बहादुर की मृत्यु का शुभ संवाद सुनकर ही बहुत हर्ष हुआ। दोनों चचेरे भाइयों के नामों को लेकर प्रायः कितनी गड़बड़ होती थी उसका एक सच्चा उदाहरण मालकम ने दिया है (मालकम०, १, पृ० ७६ फु० नो०) और विशेषरूप से उल्लेखनीय बात यह है कि उज्जैन के लोग भी ऐसी गड़बड़ करते थे!

पाँचवाँ अध्याय

मालवा के लिए मुग़ल-मरहठा द्वन्द्व—उसका अन्त
(१७३०-१७४१ ई०)

१. मालवा का साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद

ज्योंही मालवा की सूबेदारी पर बंगश की नियुक्ति हुई, मरहठों के साथ किसी प्रकार के शान्तिपूर्ण समझौते की कोई भी सम्भावना न रही। जयसिंह के वकील दीपसिंह ने राजा शाहू के साथ जो समझौता किया था, उसका भी अन्त हो गया। मालवा का द्वन्द्व फिर प्रारम्भ हो गया। इस समय कुछ काल के लिए तो मरहठों की परिस्थिति भी बहुत ही नाज़ुक हो गई। दाभाड़े के विद्रोह और उदाजी पवार के असन्तोष के कारण हालत बिगड़ती जा रही थी। किन्तु पेशवा के सौभाग्य से उसके नए सेनापतियों, होलकर और सिंधिया, में इतनी योग्यता अवश्य थी कि वे इस द्वन्द्व में पेशवा के लिए सफलता प्राप्त कर सकें।

पुनः मरहठों को सबसे अधिक सहायता मुग़ल-सम्राट् के राजदरबार से ही मिली। राजदरबार में दो विभिन्न दल थे, एक दल मरहठों का विरोधी था और दूसरा था उनका पक्षपाती; इन दोनों दलों में निरन्तर खींचातानी होती रहती थी। जयसिंह तथा ख़ानदौरान का ख़याल था कि मरहठों के साथ शान्तिपूर्वक कोई न कोई समझौता कर लिया जाना ही उचित है; सन् १७३४-३५ ई० में जब ये दोनों व्यक्ति शाही सेना

लेकर मरहठों का सामना करने चले तब भी यह सब कार्यवाही उन्हें अपनी इच्छा एवं विश्वास के विरुद्ध ही करनी पड़ी थी। मरहठों के विरोधी दल का प्रधान व्यक्ति, वज़ीर कमरुद्दीन ख़ाँ स्वयं था, और उस दल में अवध का सादत अली, मुहम्मद बंगश, तुर्रेबाज़ ख़ाँ और जोधपुर का राजा अभयसिंह भी थे। प्रत्येक बार जब-जब शाही सेना की हार होती थी, और शाही सेनापति मरहठों का सामना कर उन्हें रोक सकने में विफल होते थे, तब-तब कुछ काल के लिए सम्राट् को भी स्वयं इस बात का ख़याल होता था कि मरहठों का विरोध करने की नीति व्यर्थ है; किन्तु शीघ्र ही प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती थी, और मरहठों पर आक्रमण करने के लिए पुनः सेनाएँ भेजी जाने का प्रबन्ध होने लगता था। प्रत्येक हार के बाद सम्राट् की ओर से समझौते का प्रयत्न किया जाता था, किन्तु हर बार मरहठों की माँगें बढ़ती ही जाती थीं, और मरहठों की माँगों में वृद्धि के साथ ही मरहठों के विरुद्ध उठने वाली प्रतिक्रिया भी बढ़ती थी, जिससे मरहठों के विरोधी दल को बहुत सहायता मिलती थी।

मालवा के अन्तिम शाही सूबेदार, जयसिंह को यद्यपि मरहठों ने सचमुच प्रान्त से निकाल बाहर किया, किन्तु फिर भी शाही दरबार में मालवा को पुनः अपने अधिकार में कर लेने की कुछ आशा शेष थी, और अन्त में इसी कार्य के लिए निज़ाम को भी दक्षिण से बुला भेजा। वह भी मरहठों के विरोधी दल में सम्मिलित हो गया और मालवा पर फिर चढ़ाई करने का प्रबन्ध होने लगा। दिसम्बर, १७३७ ई० में भोपाल में निज़ाम की पराजय के बाद ही मुग़लों को पता लगा कि मालवा को पुनः जीतने की आशा रखना व्यर्थ था; वे तब पूर्णतया हताश होगये।

इसी समय नादिरशाह का आक्रमण हुआ, जिससे मालवा का मुग़ल-साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद कुछ काल के लिए टल गया; किन्तु साथ ही इस आक्रमण से यह सम्बन्ध-विच्छेद अवश्यम्भावी भी हो गया; अब अधिक काल के लिए मरहठों की माँगों का प्रतिरोध करना निर्बल मुग़ल-साम्राज्य के लिए असम्भव था; अन्त में जुलाई ४, १७४१ ई० को सम्राट् ने पेशवा को मालवा की नायबसूबेदारी देकर मरहठों की मनचाही मुराद पूरी कर दी।

इस प्रकार मालवा मरहठों के अधिकार में चला गया, और उस प्रान्त का साम्राज्य से पूर्णतया सम्बन्ध-विच्छेद होगया। मालवा की प्रान्तीय राजनीति पर से बाह्य राजपूतों का प्रभाव भी अब उठ गया। मालवा पर अपना आधिपत्य स्थापित करने तथा उसे सुदृढ़ बनाने के लिए जितने भी प्रयत्न जयसिंह ने किए थे, वे सब विफल हुए। जयसिंह को मरहठों ने मालवा में से निकाल बाहर किया, और अब मरहठों के दल राजपूताने में भी जा पहुँचे। मरहठों का सामना करने के लिए, राजस्थान के नरेशों में एकता स्थापित करने के सारे प्रयत्न असफल हुए; और जब मालवा प्रान्त की नाम-मात्र की सूबेदारी भी जयसिंह से ले ली गई, तब तो जयसिंह का मालवा के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं रह गया। सितम्बर २१, १७४३ ई० को जयसिंह की मृत्यु हो गई, और उसकी मृत्यु के बाद राजपूताना में कोई ऐसा व्यक्ति न रहा जो मालवा के मामलों में हस्तक्षेप करने की सोचता। राजपूताने के प्रत्येक राज्य को मरहठों का सामना करने के अतिरिक्त अपनी-अपनी स्थानीय समस्याओं और उलझनों को भी हल करना था। मालवा के राज्यों, ज़मींदारों आदि की

सहायता करने वाला अब कोई न रहा; वे सब अपने-अपने भाग्य के भरोसे छोड़ दिए गए; उनके सम्मुख अब दो ही रास्ते रह गए, या तो वे मरहठों का सामना करें और उनसे लड़ कर अपने भाग्य का निपटारा कर लें, या मरहठों द्वारा लगाए गए चौथ आदि कर देकर अपने भावी अस्तित्व को मोल ले लें।

यद्यपि यह मुग़ल-मरहठा द्वन्द्व सारे युग भर चलता रहा, किन्तु मालवा में मुग़ल-शासन-संगठन तो इस युग के प्रारम्भ में ही छिन्न-भिन्न हो चुका था। ज्यों-ज्यों मरहठों की सेनाएँ बढ़ती चली गईं, और ज्यों-ज्यों उनका आधिपत्य इस प्रान्त पर बढ़ता गया, त्यों-त्यों वे अपनी सत्ता को अधिकाधिक सुदृढ़ बनाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करते रहे। जब उदाजी पवार मालवा में न आने लगे तब तो इस प्रान्त में मल्हार होलकर ही सब से अधिक शक्तिशाली रह गया, किन्तु शीघ्र ही पेशवा ने राणोजी सिंधिया को होलकर का साथी बनाकर मालवा में भेज दिया। सन् १७३२ के बाद के कुछ ही वर्षों में मालवा के सब आधुनिक मरहठा राज्यों की नींव पड़ी। सन् १७३३ में चिमाजी बल्लाल ने जो बँटवारा किया था, वह इस प्रान्त के आन्तरिक इतिहास में बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं नवयुग-प्रवर्तक था। इधर जब तक पेशवा ने सम्राट् से शाही फ़रमान प्राप्त किया, तब तक मरहठों ने प्रान्त के विभिन्न राजाओं, ज़मींदारों आदि से भी आपसी समझौते भी कर लिये; किन्तु ये आपसी समझौते एक प्रकार से अस्थायी ही थे, मालवा में मरहठों की सत्ता का असली एकीकरण तो सन् १७४१ के बाद ही हुआ।

२. मालवा में मुहम्मद बंगश—उसकी विफलता
(सितम्बर १६, १७३० ई०—आक्टोबर १२, १७३२ ई०)

रोशन-उद्-दौला और कोकीजी, दोनों ने मुहम्मद बंगश से बहुत सा द्रव्य घूँस में लेकर, बंगश को मालवा का सूबेदार नियुक्त करवा दिया; सितम्बर १६, १७३० को इस सूबेदारी का फ़रमान भी मुहम्मद ख़ाँ को मिल गया। यद्यपि मुहम्मद ख़ाँ को ६० लाख रुपये देने का वादा किया गया था, किन्तु वास्तव में बहुत ही थोड़ा रुपया उसे मिल पाया। नवम्बर ५ को वह आगरा पहुँचा, वहाँ उसे कुछ तोपें एवं अपनी सेना को सुसज्जित करने के लिए कुछ दूसरा सामान मिला। मालवा के सैनिक अफ़सरों, वहाँ के ज़मींदारों तथा राजाओं को हुक्म हुआ था कि वे नरवर में बंगश के साथ आ मिलें। आगरा से नवम्बर ६ को रवाना होकर, नवम्बर ११ को वह ग्वालियर पहुँचा; ग्वालियर में बंगश ने कुछ दिन मुक़ाम किया। दिल्ली से रवाना होने से पहिले बंगश ने सम्राट् से प्रार्थना की थी कि ग्वालियर की फ़ौजदारी भी उसे प्रदान की जावे; उस समय वह फ़ौजदारी देने का वादा कर लिया गया था, किन्तु तत्सम्बन्धी शाही हुक्म अब तक नहीं दिया गया था। ग्वालियर ठहर कर बंगश वहाँ की फ़ौजदारी के लिए ज़ोर देने लगा।[1]

बंगश की नियुक्ति

[1] ख़जिस्ता०, पृ० ३१२-३; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३०४-८; इर्विन, २, पृ० २४९। यह विभाग प्रधानतया विलियम इर्विन लिखित "दी बंगश नवाब्ज ऑफ़ फ़रुक्ख़ाबाद" (ज० ए० सो० बं०, १८७८ ई०—भाग ४) के आधार पर लिखा गया है; मराठी आधार-ग्रन्थों से प्राप्त घटनाएँ भी यथास्थान जोड़ दी गई हैं। "ख़जिस्ता क़लाम" की भी पूर्णतया जाँच कर उसमें से उल्लेखों के हवाले भी दे दिये गये हैं।

सन् १७३० ई० की बरसात समाप्त होते ही मरहठे पुनः क्रिया-शील हो उठे। मालवा में इस समय कोई भी सूबेदार न था, एवं मरहठों ने मालवा पर अधिकार जमाने का इरादा किया।

मालवा में मरहठे; होलकर का उत्थान

सम्राट् की ओर से जयसिंह का वकील, दीपसिंह, समझौते की जो बातचीत कर रहा था, तथा जो समझौता किया जा रहा था, उसका भी अन्त हो गया; बंगश को नियुक्त कर सम्राट् ने उस समझौते को ठुकरा दिया।[1] अब तक मालवा पर होने वाले आक्रमणों में उदाजी पवार ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया था, किन्तु इस बार आगामी वर्ष के सरंजाम की शर्तों के बारे में पेशवा तथा चिमाजी का उदाजी पवार के साथ मतभेद हो गया, एवं मल्हार होलकर ही इस वर्ष मरहठों के दल का प्रधान सेनापति बना। यह देख कर कि उदाजी के साथ समझौता होना कठिन था, पेशवा ने उदाजी के छोटे भाई, आनन्दराव पवार के साथ सब शर्तें तय कर लीं और १७३२-३ ई० से उसको ही मालवा में सरंजाम दे दिया।[2] मालवा के मामले से जब उदाजी सम्बद्ध न रहे तब तो होलकर ही एक मात्र सेना-पति रह गया। आक्टोबर ३, १७३० ई० के दिन मल्हारराव को अन्य सब अधिकारों के सहित मालवा के ७४ परगनों का सरंजाम मिला। शासन-सम्बन्धी प्रबन्ध भी कर दिया गया और कुसाजी गणेश को उज्जैन में वकील नियुक्त किया।[3] होलकर अब मालवा में जा पहुँचा, और जब

---

[1] पे० द०, १०, पत्र सं० ६६

[2] पे० द०, १३, पत्र सं० ५४-५६; २२, पत्र सं० ५४। अठले, धार०, पत्र सं० २८

[3] पे० द०, २२, पत्र सं० ५०; ३०, पृ० ३००-१

वह देपालपुर में ठहरा हुआ था तब उसने नन्दलाल मण्डलोई को बुला भेजा कि आकर प्रान्त के विभिन्न मामलों को तय करे (नवम्बर-दिसम्बर, १७३० ई०) ।[1]

ग्वालियर में ही बंगश के पास ख़ानदौरान के पत्र पहुँचे, जिनमें आग्रह किया कि बंगश शीघ्रातिशीघ्र मालवा में जाकर मरहठे आक्रमणकारियों का सामना करे। बंगश ने अपने तीन सहकारी सेनापतियों को ससैन्य जल्दी-जल्दी सिरोंज, मन्दसौर और सारंगपुर भेज दिया, किन्तु वह स्वयं सुविधापूर्वक धीरे-धीरे ही चलता गया, और दिसम्बर, १७३० में (उज्जैन से १७२ मील उत्तर में) सबौरा नामक स्थान पर पहुँचा। यहीं बंगश को निज़ाम का एक पत्र मिला; पत्र में निज़ाम ने इस बात का प्रस्ताव किया था कि नर्मदा के तीर पर वे दोनों मिलें और परस्पर सलाह कर मरहठों को दबाने का उपाय सोचें। उत्तर में बंगश ने निज़ाम से मिलने का वादा कर लिया और इस बात की भी आशा प्रगट की कि निज़ाम अकबरपुर के घाटे को रोक कर मरहठों को मालवा में घुस आने से रोक देगा।[2] किन्तु मरहठे तो पहिले ही नर्मदा पार कर मालवा में आ पहुँचे थे।

जनवरी १५, १७३१ ई० को मुहम्मद ख़ाँ सारंगपुर पहुँचा। उस समय होलकर शाहजहाँपुर में था; बंगश के आने का वृत्तान्त सुनकर होलकर ने पहिले ही अपना भारी-भारी सामान नर्मदा पार भेज दिया था। जब मुग़ल-सेना

बंगश और मरहठे

[1] राजवाड़े, ६, पत्र सं० ६०५

[2] ख़जिस्ता०, पृ० १३५, ३३०-१, ३२०-२२, ३४६; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३०९

सारंगपुर में मुक़ाम कर रही थी, मरहठों ने उसपर हमला किया, किन्तु बाद में शीघ्र ही वे भाग खड़े हुए। जनवरी १७ को बंगश ने शाहजहाँपुर को मरहठों के अधिकार से छुड़ाया, और तीन दिन बाद बंगश ने उज्जैन को भी हस्तगत किया।[1] अब तो मरहठे मालवा में यत्र-तत्र गाँव और शहर लूटने लगे, और बाध्य होकर मुहम्मद खाँ को उनका सामना करने के लिए पुनः फ़रवरी ८ को रवाना होना पड़ा; वह अब धार की ओर बढ़ा। बंगश के दूसरे लड़के, अहमद खाँ के सेनापतित्व में दूसरी सेना सारंगपुर और शाहजहाँपुर की ओर होलकर का सामना करने के लिए भेजी गई। दोस्त मुहम्मद खाँ का लड़का, यार मुहम्मद खाँ, इस समय अहमद खाँ के साथ था; उसने बंगश के साथ विश्वासघात किया, होलकर को उज्जैन पर आक्रमण करने की सलाह देकर वह स्वयं भोपाल को लौट गया। होलकर उज्जैन में विशेष कुछ कर न सका, एवं वह भी धार की ओर चला। बंगश फ़रवरी १४ को धार पहुँचा; पाँच दिन बाद मरहठे भी वहाँ जा पहुँचे। लगभग एक सप्ताह तक धार के आस-पास ही मुग़ल-मरहठों में लड़ाई होती रही; किन्तु जब बंगश ने सुना कि निज़ाम शीघ्र ही नर्मदा के तट पर पहुँचने वाला है, निज़ाम से मिलने के लिए बंगश फ़रवरी २६ को धार से चल पड़ा।[2]

जब बंगश ने मालवा की सूबेदारी स्वीकार की थी, उसी समय से

---

[1] ख़जिस्ता०, पृ० १३५-६; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३०९-१०; इर्विन, २, पृ० २४९-५०

[2] ख़जिस्ता०, १०४-७, १४९-५१; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३१०-१; इर्विन, २, पृ० २५०

ऐसी अफ़वाहें फैली हुई थीं कि मरहठों को मार भगाने के बाद तत्काल ही निज़ाम के विरुद्ध चढ़ाई करने का उसने वादा किया था। निज़ाम के सैनिकों ने इस अफ़वाह पर विश्वास कर लिया था, एवं जब उन्होंने इन दोनों अमीरों को पास-पास बैठ कर शान्तिपूर्वक सलाह करते देखा तब तो उनको बहुत ही आश्चर्य हुआ। वे मार्च १७ को मिले और १२ दिन तक साथ ही रहे। किस बारे में इन दोनों अमीरों में सलाह हुई उसका कुछ-कुछ पता निज़ाम के पत्रों से ही लगता है; यह प्रतीत होता है कि दोनों ने निश्चय किया कि मरहठों में जो आपसी फूट उस समय फैल रही थी उससे लाभ उठाया जावे। दाभाड़े, गायकवाड़ और उदाजी पवार इस समय पेशवा का विरोध कर रहे थे; निज़ाम का प्रस्ताव था कि इन तीनों विरोधियों के प्रति कुछ कृपा दिखाई जावे।[1]

बंगश और निज़ाम

नर्मदा से निज़ाम आवासगढ़ के मोहनसिंह के राज्य की ओर गया, किन्तु उसे तत्काल ही वहाँ से लौटना पड़ा, क्योंकि मरहठों के बारे में जो कुछ भी उसने सोच रखा था, घटनाएँ बिलकुल उससे विपरीत हो रही थीं। दभोई के युद्ध में बाजीराव ने दाभाड़े तथा उसके साथियों को बुरी तरह से हराया। निज़ाम को तो अब अपनी राजधानी को मरहठों के आक्रमण से बचाने की फ़िक्र पड़ी। अकबरपुर के घाटे से पुनः नर्मदा पार कर वह मागडू के पास से होता हुआ जल्दी-जल्दी सूरत जा पहुँचा। कोई तीन मास बाद

निज़ाम के इरादों का विफल होना

---

[1] ख़जिस्ता०, पृ० ३२८-३३६; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३११-३; अहवाल०, पृ० १९९-२००; इर्विन, २, पृ० २५०-१। 'हदियाक़त-उल्-आलम' में लिखा है कि मुहम्मद ख़ाँ बंगश दो या तीन ही दिन तक निज़ाम का अतिथि रहा (२, पृ० १४२)।

निज़ाम और बाजीराव के बीच में सन्धि होगई, जिसकी एक गुप्त शर्त यह भी थी कि उत्तरी भारत में जो कुछ भी पेशवा करना चाहे उसमें निज़ाम किसी भी प्रकार बाधक न हो।[१]

निज़ाम और पेशवा के द्वन्द से मुहम्मद बंगश का परोक्षरूपेण कुछ लाभ अवश्य हुआ। उस वर्ष फिर मरहठे पूरी सेना के साथ पुनः मालवा पर आक्रमण न कर सके। काकली और चिकल्दा के क़िले उदाजी पवार के अधिकार में थे, बंगश उन्हें ही हस्तगत करने में लगा रहा। अप्रेल १ को बंगश ने इन क़िलों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और कुछ ही दिनों में भीलों के क़िलों को भी हस्तगत कर लिया। उसी समय बंगश को सूचना मिली कि मल्हार होलकर रामपुरा और मन्दसौर के आसपास के प्रदेश को लूट रहा था, और अन्तू (अन्ताजी माणकेश्वर) नामक दूसरा मरहठा कौथ (उज्जैन से १७ मील पूर्व में, कायथ) के पास के प्रदेश को उजाड़ रहा था। मरहठों के दूसरे दल नर्मदा पार कर माण्डू के पास के प्रदेश को लूटने के बाद दक्षिण को लौट गए। किन्तु अन्तू ने तो कुछ दिन के बाद शाहजहाँपुर के आसपास लूटना प्रारम्भ किया। मई ६, १७३१ ई० को बंगश उज्जैन पहुँचा। बंगश के सैनिक अपना वेतन माँग रहे थे; उनके विद्रोही हो जाने की पूरी-पूरी आशंका थी; और किसी भी प्रकार की दूसरी सहायता उसको प्राप्त न हुई। पुनः कोटा के महाराव तथा अन्य राजाओं ने भी मरहठों का सामना करने से इन्कार कर

बंगश और मरहठे

---

[१] ख़जिस्ता०, पृ० ३३६-४४; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३१३-४; इर्विन, २, पृ० २५१-२

दिया। मई १५, १७३१ ई० को सेना लेकर बंगश पुनः उज्जैन से चल पड़ा।[1]

जून ३ को जब वह कायथ पहुँचा तो अन्तू वहाँ से चला गया। दूसरे दिन होलकर सारंगपुर पर आक्रमण करने वाला था, एवं जब यह सूचना बंगश को मिली तो रात भर चलकर वह दूसरे दिन सुबुह में सारंगपुर जा पहुँचा। बंगश के वहाँ पहुँचते ही मरहठों ने उसपर आक्रमण किया; दिन भर युद्ध होता रहा और जब सूर्यास्त हो रहा था मरहठे भाग निकले। कुछ ही दिनों बाद मरहठे नर्मदा पार कर दक्षिण को चले गए। राजगढ़ के आस-पास के प्रदेश से लगान आदि वसूल करने के बाद बंगश सिरोंज चला गया। मालवा में बंगश की परिस्थिति बहुत ही डाँवाडोल हो रही थी, और वह यह नहीं चाहता था कि उसे घेर कर उत्तरी भारत को लौटने की राह को भी मरहठे रोक दें। उज्जैन की अपेक्षा सिरोंज नर्मदा से अधिक दूर था, तथा आवश्यकता पड़ने पर वहाँ से ग्वालियर होता हुआ वह उत्तरी भारत को लौट सकता था। बंगश चाहता था कि वह किसी भी प्रकार की जोखिम न ले, एवं बरसात (१७३१ ई०) वहीं बिताने के इरादे से वह सिरोंज चला गया।[2]

बरसात की मौसिम में बंगश सिरोंज ही रहा, और बरसात भर वह लगातार दिल्ली पत्र लिख-लिख कर द्रव्य तथा सेना भेजने के लिए प्रार्थना करता रहा; उसने यह भी निवेदन किया कि राजाओं को, और विशेषतया

---

[1] ख़ज़िस्ता०, पृ० १७-२०; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३१५-६

[2] ख़ज़िस्ता०, पृ० २७९-२८१; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३१६-८; इर्विन २, पृ० २५२-३

नरवर के छत्रसिंह को उसके साथ सहयोग करने के लिए बाध्य किया जावे।[१] मरहठे भी अपनी शक्ति बढ़ाने में तत्पर थे। आनन्दराव पवार को समझा-बुझा लिया था, और आगामी वर्ष से उसको सरंजाम भी दे दिया गया था। आनन्दराव के चचेरे भाई, तुकोजी और जिवाजी पवार, भी मालवा के कार्य से सम्बद्ध किए गए, और उनके व्ययार्थ प्रान्त से एकत्रित चौथ आदि में से ७% हिस्सा उन्हें देने का वादा किया गया। मालवा में आक्रमण करने का पुरस्कार अन्ताजी को भी मिला। राणोजी सिन्धिया के प्रति पेशवा का आदर निरन्तर बढ़ रहा था; अब मालवा के प्रबन्ध का भार उसपर भी पड़ गया और मालवा में एकत्रित होने वाले द्रव्य में होलकर और सिन्धिया को बराबर-बराबर विभाग मिलने लगा। होलकर को उसकी सेवा के पुरस्कार-स्वरूप कुछ और भाग भी दिया गया, किन्तु यह सब मालवा से बाहर के प्रदेशों में था। नवम्बर २, १७३१ ई० को पेशवा ने होलकर और सिन्धिया को मालवा प्रान्त का शासन-प्रबन्ध सौंप दिया और तदर्थ पेशवा ने अपनी मुहर भी उन्हें दे दी। इसी समय नन्दलाल मण्डलोई मर गया; वह मरहठों की सहायता करता रहा था, एवं पेशवा ने नन्दलाल के स्थान पर उसी के पुत्र, तेज-करण को मण्डलोई मान लिया।[२]

बरसात ख़तम हो चुकी थी, किन्तु अब तक दिल्ली में किसी ने बंगश की प्रार्थनाओं पर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया था, एवं बंगश

---

[१] ख़जिस्ता०, पृ० १२४-६; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३१८, ३२०

[२] पे० द०, २२, पत्र सं० ३८, ३९; १४, पत्र सं० ४८; ३०, पत्र सं० ५५, पृ० ३०३-७। राजवाड़े, ६, पत्र सं० ६१३, ६१४, ६०७

बहुत ही क्रुद्ध हो उठा। पहिले तो उसने स्वयं दिल्ली जाने की सोची, किन्तु बाद में उसने नरवर के छत्रसिंह पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। छत्रसिंह के अन्य क़िलों को हस्तगत करने के बाद, आक्टोबर-नवम्बर, १७३१ ई० में बंगश ने शाहबाद का घेरा डाला। छत्रसिंह ने सन्धि की शर्तें तय कर लीं, किन्तु उसी दिन बंगश को मालवा पर मरहठों की चढ़ाई की सूचना मिली। उसी रात को छत्रसिंह गढ़ से निकल भागा और मरहठों का सामना करने के लिए बाध्य होकर बंगश को सिरोंज लौटना पड़ा। छत्रसिंह पर चढ़ाई कर बंगश ने सम्राट् को पूर्णतया अपने विरुद्ध कर लिया, और इस प्रकार मुहम्मद बंगश का पतन एक अवश्यम्भावी घटना बन गई।[1]

बंगश तथा नरवर का छत्रसिंह

इस समय तक मरहठे गुजरात का मामला तय कर चुके थे, अब वे पूरे दलबल के साथ मालवा पर टूट पड़े। फ़तेहसिंह तथा अन्य सेनापति सिरोंज से २४ मील पूर्व में खिमलासा नामक स्थान पर डटे हुए थे। चिमाजी, मल्हार होलकर तथा कुछ दूसरे सेनापति उमटवाड़ा[2] में थे। १२,००० मरहठों का एक दल अभी नर्मदा के दक्षिण में ही था; और २०,००० मरहठों का एक

बंगश और मरहठे; मरहठों के साथ उसका सन्धि करना, १७३२ ई०

---

[1] ख़जिस्ता०, पृ० ९३-४; खाण्डे०, पृ० ५९८-९; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३१९-२०; इर्विन, २, पृ० २५३

[2] जिस प्रदेश में उमट राजपूतों का ही आधिपत्य है वह "उमटवाड़ा" कहलाता है। राजगढ़ और नरसिंहगढ़ के राज्य तथा उनके आसपास के प्रदेश ही 'उमटवाड़ा' के अन्तर्गत आते हैं।

दूसरा दल सागर की ओर से मालवा की ओर बढ़ रहा था। प्रान्त के विभिन्न विभिन्न राजाओं तथा ज़मींदारों ने मरहठों के साथ सन्धि कर ली थी; उनका कर देकर उनके साथ अपना मामला तय कर वे सब अपनी अपनी राजधानी को लौट चुके थे। बंगश को कोई भी सहायता न मिली। बंगश ने सीधे राजा शाहू के साथ समझौते के लिए बात-चीत चलाने का प्रयत्न किया, किन्तु शाहू ने लिख भेजा कि इसके लिए पेशवा ही उपयुक्त व्यक्ति होगा क्योंकि सब मामलों में शाहू का वही एक मात्र सलाहकार और मन्त्री था।[१]

सिरोंज पहुँचने पर बंगश ने खिमलासा में स्थित मरहठों के दल पर आक्रमण करने का इरादा किया, किन्तु उसी समय बंगश को सूचना मिली कि ५०,००० मरहठों का दल लिए होलकर सिरोंज से कोई १५-१६ मील की ही दूरी पर आ पहुँचा था। अतएव सिरोंज, भिल्सा तथा अन्य शहरों को अरक्षित छोड़ कर पूर्व की ओर जाना बंगश को अनुचित ही प्रतीत हुआ। अब बंगश ने अनुभव किया कि उसका किसी भी ओर हिलना-डुलना सम्भव नहीं। मरहठों ने उसको पूर्णतया मात कर दिया था, एवं उसने मरहठों के सेनापतियों को बुला भेजा, उन्हें बड़े-बड़े उपहार दिए और उनके साथ समझौता कर लिया। किन्तु सम्राट् की आज्ञा बिना इन सब शर्तों को लिख कर लिखित सन्धि करने को वह राज़ी न हुआ। कुछ ही काल बाद मरहठे मालवा छोड़ कर दक्षिण को लौट गए।[२]

---

[१] ख़ज़िस्ता०, पृ० १३९-४०; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३२१-२

[२] ख़ज़िस्ता०, पृ० १३९-१४०; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३२२-३; इर्विन, २, पृ० २५४

सन् १७३२ की बरसात भी बंगश ने सिरोंज में ही बिताई, और इस बार भी बरसात भर वह सैनिक और द्रव्य भेजने के लिए सम्राट् की सेवा में निरन्तर प्रार्थना-पत्र भेजता रहा। बंगश का सारा निजी द्रव्य व्यय हो चुका था; उसकी जागीर बुन्देलों के अधिकार में थी। उसने यह भी निवेदन किया कि यदि उसकी रिपोर्ट उकताने वाली प्रतीत होती हो तो उसके स्थान पर ऐसे किसी भी व्यक्ति को भेज दिया जावे, जो बहुत ही संक्षिप्त सूचनाएँ भेज सके, और बंगश स्वयं उस सूबेदार का सहकारी बन कर काम करने को राज़ी था। उसने प्रार्थना की कि किसी न किसी तरह मरहठों के आक्रमणों को रोका जावे। किन्तु शाही दरबार से कोई भी सहायता न मिली। स्थानीय राजाओं तथा ज़मीदारों को भी कहा गया कि जल्द ही किसी दूसरे व्यक्ति को मालवा का सूबेदार बना कर भेजा जावेगा। बंगश ने निज़ाम को भी सहायता के लिए लिख भेजा, किन्तु निज़ाम के कान पर तो जूँ तक न रेंगी। बंगश को शाही दरबार से जो उत्तर मिला, उसमें भी उसको ही फटकारा गया था। ख़ानदौरान ने बंगश पर यह दोष भी लगाया कि उसके ही कार्यकर्त्ताओं ने मरहठों को राह दिखाई, उसने स्वयं भी मरहठों को चढ़ आने दिया तथा उनकी चढ़ाई की उपेक्षा की। कुछ ही दिनों बाद बंगश को शाही फ़रमान मिला, जिसे सम्राट् ने अपने हाथ से लिखा था; सम्राट् ने बंगश को लिख भेजा कि उसके स्थान पर राजा जयसिंह को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया। बंगश को आदेश मिला कि वह स्वयं आगरा लौट कर वहाँ पहुँचने की सूचना दे। अपने

मालवा की सूबेदारी पर बंगश के स्थान पर जयसिंह की नियुक्ति; आक्टोबर, १७३२

पदच्युत होने की सूचना बंगश को उसके कार्यकर्त्ताओं द्वारा पहिले ही मिल चुकी थी। उज्जैन आदि शहर अपने उत्तराधिकारी के कर्मचारियों के अधिकार में देकर वह मालवा से चल पड़ा, और दिसम्बर ६, १७३२ ई० को आगरा पहुँच गया।[1]

मुहम्मद बंगश के लौटते ही दक्षिणी मालवा पूर्णतया साम्राज्य के अधिकार में से चला गया; प्रान्तीय शासन-संगठन भी पूर्णतया छिन्न भिन्न हो गया तथा शाही सत्ता का पूर्ण पतन हुआ। बंगश की विफलता से यह बात स्पष्टतया साबित है कि मुग़ल साम्राज्य के इन पिछले दिनों में किस प्रकार अपने निजी लाभालाभ के ख़याल से ही किसी ने भी साम्राज्य के हिताहित का कुछ भी विचार नहीं किया। द्रव्य, सेना, तथा अन्य राजाओं, सैनिकों, सेनापतियों आदि के सहयोग के अभाव के कारण ही बंगश को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सम्राट् तथा शाही दरबार के कर्मचारी भी उससे प्रसन्न न थे। प्रान्त के जागीरदार भी बंगश के विरुद्ध शिकायतें कर रहे थे। छत्रसिंह पर चढ़ाई करने के कारण हाफ़िज़ ख़िदमतगार रुष्ट हो गया था। निज़ाम के साथ बंगश की मित्रता के कारण सम्राट् स्वयं सशंकित हो उठा था। शाही दरबारी जानते थे कि सम्राट् को सर्वदा यह डर बना रहता था कि कहीं शक्तिशाली अमीर संगठित हो कर उसे पदच्युत न कर दें, तथा उसके स्थान पर किसी दूसरे शाहज़ादे को सम्राट् न बना दें; अपने निजी लाभ के लिए सम्राट् की इस आशंका से भी अपना काम

बंगश की विफलता के कारण

---

[1] ख़जिस्ता०, पृ० २१-३; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३२३-४; इर्विन, २, पृ० २५४-५

निकालने का प्रयत्न करने में वे दरबारी किसी भी प्रकार से नहीं हिचकिचाये।[1]

३. सवाई जयसिंह की आख़िरी सूबेदारी
(सितम्बर २८, १७३२–अगस्त ३, १७३७ ई०)

सितम्बर २८, १७३२ ई० को सम्राट् ने सवाई जयसिंह को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया। वह आक्टोबर २० को जयपुर से रवाना हुआ और दिसम्बर मास में उज्जैन जा पहुँचा। उसे सम्राट् के पास से २० लाख रुपया (जिसमें से ७ लाख रुपया सिर्फ़ उधार दिया गया था) इस शर्त पर मिला था कि उससे वह एक सुसज्जित सेना एकत्रित कर मरहठों को मालवा में से निकाल बाहर करे; किन्तु जयसिंह को तो द्रव्य देकर उनसे शान्तिपूर्वक समझौता कर लेना ही अधिक उचित जान पड़ा।[2]

१७३२ ई० की बरसात के बाद मरहठे फिर उत्तर की ओर चल पड़े। चिमाजी बुन्देलखण्ड की ओर गए (नवम्बर-दिसम्बर, १७३२ ई०), और होलकर तथा सिन्धिया चाम्पानेर के क़िले को हस्तगत करने तथा पावागढ़ के क़िले में रसद आदि पहुँचाने के उद्देश्य से गुजरात की ओर गए। चाम्पानेर और पावागढ़ के मामले तय करने के बाद

सन् १७३२-३ ई० में शाही सेना की चढ़ाई एवं मरहठे

[1] ज० ए० सो० बं०, पृ० ३२४; रुस्तम०, पृ० ५१६, ५२१; इर्विन २, पृ० २५५

[2] ख़ज़िस्ता०, पृ० ३१४-५; वंश०, ४, पृ० ३२१२; वारिद, पृ० ११५-६; सरकार, १, पृ० २४६-७

सिन्धिया और होलकर चौथ के बारे में तय करने को बाँसवाड़ा और डूँगरपुर पहुँचे, और वहाँ से मन्दसौर की ओर बढ़े। आनन्दराव पवार और विठोजी बुले पहिले ही मालवा में चले गए थे (दिसम्बर, १७३२ ई०)। चिमाजी ने उदाजी पवार को भी मालवा में बुला भेजा। फ़रवरी, १७३३ में जयसिंह मन्दसौर में ठहरा हुआ था। अपना भारी सामान माही के पास ही छोड़ कर होलकर और सिन्धिया ने जयसिंह को ससैन्य सब ओर से जा घेरा; शाही सेना को धान्य और पानी तक मिलना कठिन हो गया, जिससे शाही सेना को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। उदाजी और कृष्णाजी पवार पेशवा से ईर्षा करते थे, अतएव जयसिंह ने उन्हें अपनी ओर मिला लिया; तब तो होलकर ने उदाजी का कुछ सामान आदि लूट लिया। दोनों के मित्र बीच में पड़े, पवारों की बहुत भर्त्सना की, जिससे पवारों ने शाही सेना का साथ छोड़ दिया। तब तो जयसिंह ने भी सन्धि के लिए कहला भेजा, छः लाख रुपया भी देने का वादा किया, किन्तु होलकर ने छः लाख से भी अधिक रुपया माँगा।[1]

उधर सम्राट् भी चिन्तित हो उठा था, और मालवा में जयसिंह की सहायता के लिए अधिक सेना भेजने को उत्सुक हो गया। अनेक अमीरों को यह सेना लेकर मरहठों के विरुद्ध भेजने का प्रस्ताव हुआ, किन्तु प्रत्येक अमीर ने कुछ न कुछ बहाना बना लिया। यद्यपि सम्राट् स्वयं सुख और आलस्यपूर्ण जीवन बिताने का आदी हो गया था, किन्तु इस बार जब कोई भी अमीर सेना का सेनापतित्व करने को उतारू न हुआ, तब तो अन्त में उसने स्वयं मरहठों पर चढ़ाई करने का निश्चय किया।

[1] पे० द०, ३०, पृ० ३०७-९; १४, पत्र संख्या १-३; १५, पत्र सं० ६

शाही डेरे पहिले भेज दिए गए, और फ़रवरी २२, १७३३ ई० को सम्राट् स्वयं दिल्ली से रवाना हुआ, और बहुत ही थोड़ी-थोड़ी दूर बढ़ता हुआ चला। जिस समय जयसिंह मरहठों के साथ उपर्युक्त समझौते की बात-चीत करने लगा था, उसी समय उसके पास ख़बर आई कि सम्राट् स्वयं ससैन्य उसकी सहायतार्थ आ रहा है। यह ख़बर सुनते ही राजपूत योद्धाओं का साहस बढ़ गया और वे युद्ध करने को बढ़े। जो युद्ध हुआ उसमें जयसिंह की सेना के पृष्ठ भाग का सेनापति मारा गया; होलकर के भी १५ अफ़सर तथा सौ-दो सौ घोड़े मारे गए। होलकर ३० मील पीछे हट गया, और उसका पीछा करता हुआ जयसिंह १६ मील आगे बढ़ा। होलकर अब बड़ी तेज़ी से जयसिंह के पीछे जाकर जहाँ जयसिंह पहिले ठहरा हुआ था वहीं जा डटा। पीछे हटने के लिए जयसिंह को अब रास्ता न देख पड़ा और हताश होकर उसे मरहठों के साथ समझौता कर लेना पड़ा। छः लाख नक़द रुपये के अतिरिक्त, चौथ के बदले जयसिंह ने मालवा के २८ परगने भी मरहठों को देना स्वीकार किया। ये सब घटनाएँ फ़रवरी, १७३३ ई० के अन्तिम सप्ताह में घटीं। छः लाख में से पाँच लाख रुपया तो सचमुच दिया गया; जब होलकर, सिन्धिया और आनन्दराव पवार मालवा छोड़ कर गुजरात को चले गए, तब मार्च १७ को तीन लाख रुपया दिया गया; बाकी दो लाख रुपये दक्षिण को लौटते हुए चिमाजी जब मालवा छोड़ कर जाने वाले ही थे, उस समय मई ४ को दिये गए।[1]

---

[1] पे० द०, १४, पत्र सं० २, ७; १५, पत्र सं० ६; ३०, पृ० ३१०-१। इर्विन, २, पृ० २७६—८; वारिद, पृ० ११९-२०; सरकार, १, पृ० २४७-८; वीर०, २, पृ० १२१८-२०

शाही केम्प कभी भी (दिल्ली से १६ मील दक्षिण में) फ़रीदाबाद से आगे न बढ़ पाया; एक माह तक यमुना के तीर पर ही केम्प में ठहरने के बाद, जब वज़ीर ने स्वयं शाही सेना के संचालन का भार उठाया, तब सम्राट् दिल्ली को लौट गया। आगरा में बंगश भी वज़ीर के साथ हो गया। वज़ीर को सूचना मिली कि चिमाजी के सेनापतित्व में मरहठे नरवर तक पहुँच गए और मरहठों के दूसरे दल उमट राजाओं को लूट रहे थे। शाही सेना का अग्र भाग (नरवर से भी आगे) बूढ़ा डोंगर को भेजा गया। मरहठे अब दक्षिण को लौट रहे थे। मन्दसौर के पास जयसिंह की पराजय का वृत्तान्त उसे पहिले ही ज्ञात हो चुका था। जयसिंह जयपुर को लौट गया था; वज़ीर ने भी अपनी सेना को लौटा लिया और दिल्ली की ओर चला।[1]

सन् १७३३-४ ई० की चढ़ाई

मालवा में जयसिंह पूर्णतया विफल हुआ। वह शीघ्र ही अपनी नव-निर्मित राजधानी, जयपुर को लौट गया और मालवा-सम्बन्धी मामलों की चिन्ता उसे न रही। सम्राट् को बहुत पहिले से ज्ञात था कि जयसिंह मरहठों का पक्ष लेता था, किन्तु खानदौरान के रुष्ट होने के डर से सम्राट् जयसिंह को मालवा की सूबेदारी से हटाने का साहस नहीं कर सका। सन् १७३३ ई० की सर्दी की मौसिम आई, और इस बार शाही सेना का सेनापतित्व करने की खानदौरान की बारी थी, किन्तु उसने ३-४ महीने तो दूसरे

---

[1] पे० द०, १५, पत्र सं० ६; १४, पत्र सं० ९; ३०, पृ० ३०९-११। खुशहाल, पृ० १०६३ ब; रुस्तम०, पृ० ५२४-५; वारिद, पृ० ८५; गुलाम०, पृ० ५४ ब; इर्विन, २, पृ० २७६-७

किसी अमीर को फुसला कर अपने स्थान पर उसे ही सेना के साथ भेजने के प्रयत्न में बिता दिये। वह बारंबार अपने डेरे भेजता था और फिर उन्हें पीछा मँगवा लेता था।[1] इसी अर्से में मरहठे पुनः मालवा पर चढ़ आए। सन् १७३२ ई० के बँटवारे से मालवे में चार मरहठा राज्यों की नींव पड़ गई थी; इन चार राज्यों के शासक थे, होलकर, सिन्धिया, आनन्दराव पवार एवं दूसरे दो पवार भाई, तुकोजी और जिवाजी पवार।[2] पिछले आठ महीनों से मरहठों की सारी सेना जंजीरा में ही एकत्रित थी, वहाँ पेशवा जंजीरा के सिद्दियों से लड़ रहा था। दिसम्बर में होलकर और सिन्धिया मालवा के लिए रवाना हुए; पिलाजी जाधव ने भी उनका अनुसरण किया। पिलाजी ने पहिले इरादा किया कि मालवा में होते हुए, नरवर को दाहिने हाथ की ओर छोड़ कर वे कोटा-बून्दी की ओर जावें; वहाँ से चौथ आदि वसूल कर ओरछा-दतिया की ओर घूम कर वहीं से दक्षिण को लौट जावें; किन्तु ये सब इरादे उन्हें बदलने पड़े। वे दिसम्बर, १७३३ ई० में नेमाड़ पहुँचे और वहाँ से सीधे दतिया तथा ओरछा गए; उन्होंने देखा कि उस ओर का सारा प्रान्त उजड़ गया था, एवं अप्रेल ८, १७३० ई० को उन्हें लौटना पड़ा। वे दक्षिण को लौट पड़े, राह में चन्देरी उनके बाएँ हाथ की ओर रह गया।[3]

[1] वारिद, पृ० ११९-२०; इर्विन, १, पृ० २७८-२७९

[2] पे० द०, २२, पत्र सं० ५४, ८२; अठले, धार०, पत्र सं० २८-३१; भागवत, पूर्वार्ध, पत्र सं० १, २

[3] पे० द०, १४, पत्र सं० १०, ११, १३। सरकार, १, पृ० २४८-९; सरकार, खण्ड २ में शुद्धिपत्र भी देखो।

पिलाजी ने बून्दी-कोटा को होलकर और सिन्धिया के लिए छोड़ दिया था। बून्दी जाते समय सिन्धिया और होलकर ने नर्मदा पर स्थित बड़वाह के किले को हस्तगत कर वहाँ की चौथ तय की। आगे चल कर भोपाल के यार मुहम्मद खाँ के साथ युद्ध हुआ (दिसम्बर, १७३५ ई०), जिसमें बहुत से सैनिक मारे गए।[१] जब मरहठे अहीरवाड़ा में होकर निकले तब वहाँ खाण्डेराय के पुत्र सुरतिराम ने चौथ आदि देने का वादा किया और उसके बदले में मरहठों से सहायता चाही। सुरतिराम की सहायतार्थ सेना भेज कर होलकर और सिन्धिया बून्दी की ओर बढ़े। जयसिंह द्वारा नियुक्त दलेलसिंह इस समय बून्दी का शासन कर रहा था। बून्दी का पदच्युत राजा बुधसिंह, मदिरा और अफ़ीम के नशे में चूर बेघम (बेगूँ) में पड़ा अपने दिन काट रहा था। किन्तु उधर दलेलसिंह के बड़े भाई, प्रतापसिंह हाड़ा को अपने छोटे भाई से ईर्षा हुई और दलेलसिंह को पदच्युत करने के इरादे से वह बुधसिंह से जा मिला। बुधसिंह की रानी ने प्रतापसिंह को दक्षिण भेजा कि द्रव्य देने का वादा कर मरहठों को अपनी सहायतार्थ लावे। प्रतापसिंह ने छः लाख देने का वादा किया। प्रतापसिंह ही मरहठों का मार्ग-प्रदर्शक बना; होलकर, सिन्धिया, आनन्दराव पवार और रामचन्द्र बाबा के सेनापतित्व में मरहठों की सेना ने अप्रेल २२, १७३४ ई० को बून्दी पर हमला किया। घमासान युद्ध के बाद मरहठों ने बून्दी के क़िले को हस्तगत किया तथा दलेलसिंह के पिता, संग्रामसिंह को, जो

बून्दी में मरहठे, १७३४ ई०

---

[१] पे० द०, १४, पत्र सं० ११, १८; १५, पत्र सं० १; रुस्तम०, पृ० ५३५; ईर्विन, १, पृ० २७९

इस समय अपने पुत्र की ओर से बून्दी का शासन-कार्य सम्हाल रहा था, बन्दी कर लिया। मरहठों की विजय का वृत्तान्त सुन कर बुधसिंह की रानी बून्दी जा पहुँची और मल्हार होलकर के राखी बाँध कर उसे अपना राखी-बंद भाई बनाया। भविष्य में भी सहायता देने का वादा कर मरहठे दक्षिण को लौट गए। मरहठों के लौटने के कुछ ही दिनों बाद जयपुर से २०,००० सैनिकों की एक सेना चढ़ आई और बून्दी को हस्तगत कर पुनः दलेलसिंह को बून्दी का शासक बना दिया।[1]

शाही सेना लेकर मुज़फ़्फ़र ख़ाँ का मालवा को जाना; मार्च-जून, १७३४ ई०

उधर मरहठे उत्तरी मालवा में धूम-धाम कर रहे थे तथा प्रथम बार राजपूताने में भी जा घुसे थे, किन्तु अब तक ख़ानदौरान दिल्ली से रवाना नहीं हुआ। जब कोई दूसरा अमीर शाही सेना के साथ जाने को तैयार न हुआ, तब अन्त में फ़रवरी, १७३४ ई० में उसने मेवात से अपने भाई, मुज़फ़्फ़र ख़ाँ को बुलाया और उसे मरहठों के विरुद्ध शाही सेना के साथ भेजा। मुज़फ़्फ़र ख़ाँ मार्च २०, १७३४ ई० को दिल्ली से रवाना हो सका; यद्यपि जासूसों ने उसे सूचना दे दी थी कि मरहठे दक्षिण को लौटने लगे थे, वह सिरोंज तक बढ़ता ही गया और बिना कोई युद्ध किये जून ११, १७३४ ई० को वह लौट पड़ा।[2]

---

[1] खाण्डे०, पृ० ६०१-२; वंश०, ४, पृ० ३२१६-६१; सरकार, १, पृ० २५१-२

[2] सियार०, पृ० ४६६-७; ग़ुलाम अली, पृ० ५४ अ; रुस्तम०, पृ० ५२६; इर्विन, २, पृ० २७९

मरहठे दक्षिण को लौट गए; किन्तु राजपूताना पर मरहठों के इस पहले आक्रमण ने, कुछ काल के लिए ही क्यों न हो, राजपूताने के सब विचार-शील नरेशों की आँखें खोल दीं; उन्होंने इस भावी विपत्ति की सम्भावनाओं को कुछ-कुछ समझा भी। जयसिंह ने राजपूताने के सब नरेशों को एकत्रित किया कि सब मिल कर मरहठे आक्रमणकारियों का सामना करने का कुछ उपाय सोच निकालें; सब नरेश मेवाड़ के अगोंच नामक गाँव के पास हुर्दा नामक स्थान में जुलाई १७, १७३४ ई० को एकत्रित हुए। एक सन्धि पर सब नरेशों ने हस्ताक्षर किए और यह वादा किया कि बरसात के समाप्त होते ही सब नरेश ससैन्य रामपुरा में एकत्रित होंगे, और यह सम्मिलित सेना सब की सलाह के अनुसार मरहठों पर चढ़ाई करेगी।[१] किन्तु राजपूत नरेशों का इतना घोर नैतिक पतन हो चुका था कि अपने आपसी जातीय झगड़े मिटा कर, एवं अपने व्यक्तिगत स्वार्थ तथा लाभ को त्याग कर सम्मिलित रूप से पूर्ण बल के साथ मरहठों के विरुद्ध आक्रमण करना भी उनके लिए एक असंभव बात हो गई। इस सन्धि

राजपूताना में एकता स्थापित करने के लिए सन्धि, जुलाई १७, १७३४ ई०; बाद के प्रयत्न; उन सब की विफलता

[१] वंश भास्कर (४, पृ० ३२२७-२८) के आधार पर सर यदुनाथ ने लिखा है कि नरेशों का यह सम्मेलन आक्टोबर, १७३४ के पिछले अर्ध भाग में हुआ (सरकार, १, पृ० २५२)। टाड के अनुसार यह सम्मेलन अगस्त १, १७३४ ई० को हुआ था (टाड, १, पृ० ४८२-३)। उदयपुर राज्य के मुहाफ़िज़ खाने में असली सन्धि-पत्र अब भी विद्यमान है, एवं उसी सन्धि-पत्र के आधार पर वीर-विनोद में दी हुई तारीख़ ही विश्वसनीय प्रतीत होती है। वीरविनोद के अनुसार यह सम्मेलन श्रावण वदि १३, याने जुलाई १७, १७३४ ई० को हुआ। वीर०, २, पृ० १२२०-२१

का कोई भी नतीजा नहीं निकला। जयसिंह स्वयं इस बात को अच्छी तरह जानता था, एवं इस सन्धि के लिखे जाने के बाद ही उसने परोक्षरूप से पेशवा के साथ समझौते की बात-चीत शुरू करने का भी प्रयत्न किया।[1] कुछ वर्ष के बाद राजपूत नरेशों को एकत्रित करने का एक और प्रयत्न हुआ। इस बार यह भी प्रस्ताव किया गया कि मरहठों को मालवा से निकाल बाहर करने के बाद राजपूताने के राजपूत-नरेश मालवा को आपस में बाँट लें। किन्तु ये सारे प्रयत्न विफल हुए और मालवा के साथ ही साथ राजपूताने के भाग्य का भी फ़ैसला हो गया।[2]

सन् १७३४-५ ई० की चढ़ाई; वज़ीर और मरहठे

सन् १७३४ ई० की बरसात समाप्त होते ही हिन्दुस्तान पर मरहठों के आक्रमण फिर शुरू हो गए। पिलाजी जाधव के सेनापतित्व में एक दल ने बुन्देलखण्ड एवं उत्तरी मालवा पर चढ़ाई की; पेशवा का लड़का, बालाजी भी इस चढ़ाई के समय पिलाजी जाधव के साथ था। जनवरी, १७३५ ई० के पहिले सप्ताह में कुरवाई के पास पूर्व की ओर से यह दल मालवा में जा घुसा और नरवर के आसपास ही उद्देश्य-विहीन रूपेण यत्र-तत्र भटकता रहा। इस बार वज़ीर क़मरुद्दीन ने स्वयं शाही सेना का नेतृत्व करने का निश्चय किया। नवम्बर १०, १७३४ ई० ही को शाही दरबार से बिदा लेकर, आगरा होता हुआ वह बढ़ा। उसकी सेना में कोई २५,००० सैनिक थे। फ़रवरी, १७३५ ई० के प्रारम्भ में दो-तीन छोटी सी लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें

---

[1] पे० द०, ३०, पत्र सं० १०८

[2] वीर०, २, पृ० १२२५-६

शाही सेना की ही विजय हुई। तब पिलाजी पाहोरी, शिवपुरी कौलरस को लौट आए; ये तीनों परगने पेशवा ने दिसम्बर ३, १७३४ ई० के दिन पिलाजी जाधव को प्रदान किये थे। क़मरुद्दीन ख़ाँ नरवर तक बढ़ता चला गया, किन्तु उसकी सेना पूर्णतया अस्त-व्यस्त हो गई, एवं अन्त में विवश होकर वज़ीर ने पिलाजी को पाँच लाख रुपया देने का प्रस्ताव किया; तब तो पिलाजी बुन्देलखण्ड से अपना सामान लेकर दक्षिण को लौट पड़े। मार्च १३ को मालवा छोड़ दिया और बेतवा पार कर वे गढ़ा के परगने में जा पहुँचे। वज़ीर लौट कर मई ६, १७३५ ई० को दिल्ली पहुँचा।[1]

मरहठों का ख़ानदौरान और जयसिंह को मालवा से निकाल बाहर करना

जब युद्ध के पूर्वीय क्षेत्र में वज़ीर शाही सेना का संचालन कर रहा था, उसी समय एक और शाही सेना युद्ध के पश्चिमी क्षेत्र में भेजी गई थी, जिसका सेनापतित्व ख़ानदौरान को सौंपा गया था। ख़ानदौरान भी नवम्बर १०, १७३४ ई० को दिल्ली से रवाना हुआ, और राह में जयसिंह उससे आ मिला; कोटा का दुर्जन साल तथा जोधपुर का अभयसिंह भी ससैन्य आ गए। ऐसा अनुमान किया जाता था कि इस सम्मिलित सेना में दो लाख के लगभग सैनिक होंगे। मुकुन्दवारा घाटी को पार कर यह सेना रामपुरा के प्रदेश में जा पहुँची, जहाँ फ़रवरी, १७३५ के प्रारम्भ

[1] अशोब, पृ० १०४-६; ख़ुशहाल, पृ० १०६६; रुस्तम०, पृ० ५२६, ५२८-९; गुलाम अली, पृ० ५४ ब। पे० द०, १४, पत्र सं० २२, २१, २३; २२, पत्र सं० १०२; ३०, पृ० ३१२-३१६। इर्विन, २, पृ० २७९-८०; सरकार, १, पृ० २५३-२५५

में होलकर और सिन्धिया देख पड़े। शाही सेना बहुत ही असंगठित थी एवं उसका ठीक-ठीक संचालन करना एक प्रकार से असम्भव ही था। इस असंगठित दल के हाथों मरहठों के उन फुर्तीले दलों की हार होना एक अनहोनी बात थी। आठ दिन तक लगातार मरहठे शाही सेना के चारों ओर चक्कर लगाते रहे; रसद आदि को शाही सेना तक उन्होंने पहुँचने न दिया; जितने भी घोड़े और ऊँट वे पकड़ पाये उन्हें वे ले गए; और नवें दिन उन्होंने सीधा राजपूताना पर आक्रमण किया। शाही सेना को पीछे छोड़ कर, मुकुन्दवारा घाटी को पार कर मरहठे सीधे कोटा और बून्दी होते हुए जयपुर तथा जोधपुर के अरक्षित प्रदेशों में जा पहुँचे। फ़रवरी २८ को साम्भर के धनी शहर को लूटा, जिससे बहुत-सा लूट का माल मरहठों के हाथ लगा। शाही सेना भी आक्रमणकारियों के पीछे-पीछे चली। मार्च के प्रारम्भ में ख़ानदौरान बून्दी के पास डटा हुआ था, जयसिंह अपनी नवनिर्मित राजधानी जयपुर के पास था, और होलकर तथा सिन्धिया जयपुर से कोई २० मील पर पड़ाव डाले हुए थे। कुछ सप्ताह तक निरुद्योग पड़े रहने के बाद ख़ानदौरान ने जयसिंह की सलाह मान कर जयसिंह के मार्फ़त सिन्धिया और होलकर से सन्धि कर ली। सम्राट् की ओर से ख़ानदौरान ने मालवा की चौथ के २२ लाख रुपये देने का वादा कर मरहठों को नर्मदा पार लौट जाने का प्रलोभन दिया। अप्रेल, १७३५ ई० के अन्तिम दिनों में ख़ानदौरान और जयसिंह दिल्ली जा पहुँचे। होलकर और रामचन्द्र बाबा काला बाग़ की ओर गए; राणोजी सिरोंज, राजगढ़ और पाटन होता हुआ उज्जैन लौटा।[1]

---

[1] अशोब; बयान०, पृ० ५३२; रुस्तम०, पृ० ५२६-५२९; ख़ुशहाल,

कुछ ही दिनों बाद, पेशवा की माँ ने मालवा में प्रवेश किया; वह उत्तरी भारत में बहुत लम्बी तीर्थयात्रा के लिए निकली थीं। वह उदयपुर (मई ६), नाथद्वारा, जयपुर (जुलाई १६ के लगभग), मथुरा, कुरुक्षेत्र, इलाहाबाद, बनारस होती हुई नवम्बर, १७३५ ई० में गया पहुँची। यह यात्रा बहुत ही शानदार ढंग से हुई। मई २, १७३६ ई० को ही वह पुनः पूना को लौट पाई।[1]

सम्राट् तथा मरहठों के साथ सुलह करने का प्रस्ताव

जब बाजीराव की माँ जयपुर में थी, तभी पेशवा के वकील के द्वारा मालवा पर मरहठों का अधिकार स्थापित करने के बारे में जयसिंह ने बातचीत शुरू कर दी थी। किन्तु उधर सम्राट् शाही सेना की अपमान-जनक विफलता पर बहुत रुष्ट हुआ; मरहठों को मालवा से निकालना तो दूर रहा, शाही सेनापति उलटा मालवा की चौथ के रूप में बहुत-सा रुपया देने का वादा कर आए थे। शाही दरबार में इस विफलता का सारा दोष जयसिंह और ख़ानदौरान के सिर पर मढ़ा गया। सादत ख़ाँ ने सम्राट् से निवेदन किया कि,—"गुप्तरूप से मरहठों की सहायता कर जयसिंह ने साम्राज्य को बरबाद कर दिया। मुझे सिर्फ़

पृ० १०६७ अ; सियार०, पृ० ४६७। पे० द०, १४, पत्र सं० २३, २१, २७, २९, ५७; २२, पत्र सं० २८४। इर्विन, २, पृ० २८०-१; सरकार, १, पृ० २५३-६। वंशभास्कर में (४, पृ० ३२२८-३०) लिखा है कि ख़ानदौरान के प्रस्ताव करने पर सम्राट ने मालवा प्रान्त मरहठों को देना स्वीकार कर लिया; किन्तु यहाँ वंशभास्कर-कार आगामी वर्ष (१७३६ ई०) की घटनाओं को इस वर्ष (१७३५ ई०) की घटनाओं के साथ मिला देने की ग़लती कर बैठा है।

[1] सरकार, १, पृ० २५६-७

मालवा और आगरा की सूबेदारी दे दी जावे। जयसिंह भले ही १ करोड़ रुपया माँगे, किन्तु मैं द्रव्य की सहायता नहीं चाहता हूँ, उसकी मुझे आवश्यकता नहीं है। निज़ाम मेरा मित्र है, वह मरहठों को नर्मदा पार न उतरने देगा।"[1] सादत ख़ाँ के साथ-साथ सरबुलन्द ख़ाँ तथा अन्य अमीर भी जयसिंह की निन्दा करने लगे। जब मरहठों को द्रव्य देकर समझाने के लिए सम्राट् भी जयसिंह और ख़ानदौरान की निन्दा करने लगा, तब तो ख़ानदौरान ने अपने पक्ष में निवेदन करना शुरू किया,—"लड़कर कोई भी मरहठों को सफलतापूर्वक नहीं दबा सकता है। प्रेमपूर्वक तथा मैत्री के ढंग से बात-चीत कर मैं पेशवा को बाध्य करूँगा कि वह स्वयं या उसका भाई हुज़ूर की सेवा में उपस्थित हो। यदि उसकी प्रार्थनाएँ स्वीकार कर ली जावें तो निकट भविष्य में शाही इलाक़े में कोई भी गड़बड़ न होगी। इसके विपरीत यदि सादत ख़ाँ और निज़ाम सम्मिलित हो गए तो वे किसी दूसरे को ही सम्राट् बना देंगे।" कुछ काल के बाद उसने पुनः अर्ज़ की कि—"मैंने मरहठों को सिर्फ़ इसी बात का वचन दिया है कि जो परगने विद्रोही रुहेलों तथा अन्य लुटेरों के अधिकार में हैं वे उन्हें जागीर के स्वरूप में दे दिये जावेंगे। जो इलाक़ा हुज़ूर के अधिकार में है, उसमें वे कभी भी हस्तक्षेप न करेंगे। बाजीराव हर प्रकार से हुज़ूर का आज्ञाकारी है। गंगा-स्नान के बहाने से उसने अपने कुटुम्ब को दक्षिण से उत्तरी भारत में भेज दिया है।"[2]

उधर जब जयसिंह के कान तक यह बात पहुँची कि उसे मालवा

---

[1] पे० द०, १४, पत्र सं० ३१

[2] पे० द०, १४, पत्र सं० ४७, ३९, ३१; सरकार, १, पृ० २५७-८

की सूबेदारी से अलग करने का प्रस्ताव हो रहा है, तब तो वह निश्चित रूप से सम्राट् के विरुद्ध हो गया। जयसिंह सर्वदा से परिस्थिति देखकर अपना स्वार्थ साधने की नीति ग्रहण करता रहा था; अब उसे पूर्णरूप से विश्वास हो गया कि मरहठों के लाभ में सहायक होकर ही वह अपना भी फ़ायदा कर सकेगा, एवं वह मरहठों की पूरी-पूरी सहायता करने लगा। मरहठों के वकील को अपने पास बुला भेजा और उसके साथ गुप्त मन्त्रणा की; जयसिंह ने उससे कहा कि—"मैं तुर्कों का (शाही मुग़ल घराने का) बिलकुल ही विश्वास नहीं कर सकता था, एवं अब तक भी मैं बाजीराव की ख्याति तथा उसके लाभ का ही पूरा-पूरा ख़याल करता रहा। यदि ये तुर्क दक्षिणी सेनाओं को हरा दें तो वे हमारी भी अवहेलना करेंगे। अतः मैं अब प्रत्येक बात में पेशवा की सम्मति तथा आज्ञा के अनुसार ही कार्य करूँगा।" अगस्त, १७३५ ई० में जयसिंह ने कहला भेजा कि ५,००० सवारों को लेकर पिलाजी एवं अन्य सेनापतियों के साथ पेशवा जयपुर आकर जयसिंह से मिले; इस बात की उसने अवश्य सूचना कर दी थी कि राह में जो भी परगने जयपुर राज्य के पड़ें, उनमें लूट खसोट न की जावे। ५००० रु० प्रति दिन के हिसाब से मरहठों की इस सेना का ख़र्चा देने का भी जयसिंह ने वादा कर लिया, और इसके अतिरिक्त मालवा की चौथ तथा उत्तरी मालवा में नरवर के पास स्थित पिलाजी जाधव की जागीर का लगान भी चुका देने का जयसिंह ने वादा किया। जयसिंह ने इस बात का भी विश्वास दिलाया कि मालवा, सिरोंज एवं दतिया, ओरछा आदि की चौथ वगैरः दिलवा

जयसिंह का सम्राट् के विरुद्ध होकर मरहठों की सहायता करना

देगा। जयसिंह ने यह भी लिखा कि अगर पेशवा जयपुर आ जावे तो दोनों मिलकर परामर्श कर सकेंगे। पेशवा के जयपुर पहुँचने पर यदि सम्राट् ख़ानदौरान के द्वारा सौगन्द-शपथों के साथ इस बात का पूरा विश्वास दिला देंगे कि पेशवा के साथ किसी भी प्रकार का विश्वास-घात न होगा, तब वह यह भी सलाह देगा कि पेशवा जाकर सम्राट् से भेंट करे; और यदि ऐसा विश्वास नहीं दिलाया गया तो पेशवा जयपुर से ही वापिस लौट सकेगा।[1]

शाही सेना की पुनः चढ़ाई के प्रयत्न

उधर सितम्बर, १७३५ के समाप्त होते-होते सम्राट् आगामी सरदी की मौसिम में मरहठों पर चढ़ाई करने के लिए पुनः शाही सेना भेजने का प्रबन्ध करने लगा। वज़ीर के साथ अभयसिंह का भी मेल करवा दिया गया। सम्राट् ने यह भी प्रस्ताव किया कि आगरा, मालवा और गुजरात के प्रान्त भी वज़ीर के अधिकार में दे दिये जावें, और यदि जयसिंह शाही सेना के साथ सम्मिलित न हो जावे तो उसका राज्य भी उजाड़ दिया जावे और उसको राजद्रोही होने की सज़ा दी जावे। नदियाँ उतरने पर सम्राट् स्वयं भी सेना का संचालन करने का इरादा करने लगा। जयसिंह और ख़ानदौरान को जयपुर होते हुए दक्षिण भेजा जावे, और वज़ीर, अभयसिंह तथा सादत ख़ाँ के साथ ग्वालियर की राह बढ़े।[2]

पेशवा ने उत्तरी भारत में प्रत्येक राजपूत राजा की राजधानी में

---

[1] पे० द०, १४, पत्र सं० ४७; वंश०, ४, पृ० ३२३३; सरकार, १, पृ० २५८-९

[2] पे० द०, १४, पत्र सं० ३९, ३२

स्वयं जाकर, वहाँ समझा-बुझा कर उनसे शान्ति पूर्वक, चौथ वसूल करने का निश्चय किया। सिन्धिया, होलकर और पवारों ने अपनी-अपनी सेनाएँ सुसज्जित कीं। पेशवा पूना से आक्टोबर ६, १७३५ ई० को रवाना हुआ, और नवम्बर २८ को नर्मदा के पास जा पहुँचा। यहाँ से पेशवा ने, होलकर, सिन्धिया, आनन्दराव पवार, बाजी भीमराव और पिलाजी जाधव के पुत्र को आगे मालवा और बुन्देलखण्ड की ओर भेजा। धार परगने की गुजरात की ओर की सीमा पर स्थित, कुकशी के क़िले को हस्तगत करने के बाद लूनावाड़ा और डूँगरपुर के राज्यों में होता हुआ, पेशवा मेवाड़ की दक्षिणी सीमा पर जनवरी १५, १७३६ ई० को जा पहुँचा।[1]

राजपूताना में पेशवा का आना

मरहठों के विरुद्ध भेजी जाने वाली शाही सेना में सम्मिलित होने के लिए सादत ख़ाँ को भी शाही दरबार में बुला भेजा। उसने विभिन्न प्रान्तों के बँटवारे के अनेकानेक प्रस्ताव किये, और इस समय यह भी अफ़वाह उड़ी कि सादत ख़ाँ मालवा का सूबेदार बनाया जावेगा, किन्तु ये सब निरी बातें ही रह गईं। आगरा जाते समय सादत ख़ाँ को अडारू के ज़मींदार का सामना करना पड़ा और यद्यपि उस लड़ाई में अन्त में विजय

सन् १७३५-३६ ई० की चढ़ाई

---

[1] पे० द०, १४, पत्र सं० ४२; ३०, पत्र सं० १४४। सरकार, १, पृ० २६०-१। सरदेसाई ने पे० द०, १४, पत्र सं० ४३ की तारीख़ दिसम्बर १०, १७३५ ई० मानी है, किन्तु यह अनुमान ग़लत जान पड़ता है। इन दिनों में अगले साल, सन् १७३६ ई० में ही पेशवा देपालपुर गया होगा; इस वर्ष पेशवा की उधर जाने की सम्भावना प्रतीत नहीं होती है। एवं उपर्युक्त पत्र की सही तारीख़ नवम्बर २९, १७३६ ई० होना चाहिए।

सादत ख़ाँ की ही हुई, किन्तु सादत ख़ाँ की सेना की बहुत क्षति हुई, जिससे उसकी शक्ति बहुत ही घट गई।[१] मुहम्मद ख़ाँ बंगश को भी मालवा की रक्षा के लिए जाने का हुक्म हुआ। मरहठे चम्बल पार कर चुके थे, किन्तु अभी तक ग्वालियर का क़िला हस्तगत नहीं कर पाए थे। मरहठे और भी आगे नूराबाद तथा उसके आस-पास के प्रदेश तक बढ़ गए। बंगश जनवरी १४, १७३६ ई० को धोलपुर पहुँचा और चम्बल की घाटियों में जा डटा। वह यही प्रयत्न करता रहा कि मरहठों को चम्बल पार करने न दे, किन्तु उसका यह साहस न हुआ कि खुले मैदान में आकर मरहठों का सामना करे। अपने मोर्चों को अधिक सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से बंगश ने अपने आस-पास मिट्टी की दीवाल बनवा कर उस पर तोपें चढ़ा दीं। फ़रवरी मास में कई दिनों तक यों ही चुप-चाप पड़े रहने के बाद बंगश ने सन्धि कर लेने के लिए मरहठों के पास दूत भेजे। उधर मार्च १ को बाजी भिवराव के पास पेशवा का हुक्म पहुँचा कि शाही सेनापति सन्धि करने को तैयार थे, एवं लड़ाई-झगड़े बन्द किये जावें। कुछ ही दिनों बाद मरहठे दक्षिण को लौट गए।[२]

बुन्देलखण्ड में वज़ीर नरवर की राह ओरछा गया और वहाँ मोर्चे-बन्दी कर मरहठों का सामना करने लगा। कई छोटी-छोटी लड़ाइयों के बाद फ़रवरी ३, १७३६ ई० को मरहठों के साथ जम कर एक युद्ध

[१] पे० द०, १४, पत्र सं० ३९, ४०, ४१, ४२; ३०, पत्र सं० १३४, १४३

[२] ख़जिस्ता०, पृ० २८९-३०६; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३२८। पे० द० १४, पत्र सं० ५५, ५६; १३, पत्र सं० ४८; ३०, पत्र सं० १३४। इर्विन, २, पृ० २८१-२; सरकार, १, पृ० २६७-९

हुआ, जिसमें मरहठों की हार हुई। मरहठे जल्दी से लौट गए। मुग़ल भी मरहठों का पीछा करते-करते उज्जैन तक जा पहुँचे, किन्तु सारे रास्ते भर मरहठे उनसे बहुत ही आगे रहे।[1]

ख़ानदौरान राजपूताने को भेजा गया और राह में जयसिंह भी उससे आ मिला। ये सम्मिलित सेनाएँ टोड़ा के तालाब के पास सुदृढ़ मोर्चा-बन्दी करके डट गईं। मल्हार होलकर और प्रताप हाड़ा ने उनका सामना किया। शाही सेना मोर्चा छोड़ कर आगे न बढ़ी। मरहठे रसद आदि का शाही सेना तक पहुँचना भी रोकने लगे। एक दिन डेढ़ हज़ार अहदी सैनिकों का दल मोर्चों के बाहिर निकला, किन्तु मरहठों ने उन सब को मार डाला, जिससे शाही सेना पर बहुत आतंक छा गया। किन्तु शीघ्र ही फ़रवरी ७ को लड़ाई-झगड़ों का अन्त हो गया। सन्धि के लिए बातचीत शुरू हो गई और ख़ानदौरान दिल्ली को लौट गया।[2]

---

[1] वज़ीर की इस चढ़ाई का उल्लेख केवल अशोब (पृ० १०५-७) के ही आधार पर किया गया है। मराठी आधार-ग्रन्थों में इस चढ़ाई का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है। इर्विन, २, पृ० २८२-३; सरकार, १, पृ० २६९। मेरे विचारानुसार तो इस स्थान पर अशोब ने सन् १७३५ ई० की वज़ीर की चढ़ाई का सन् १७३६ ई० होना लिख कर गड़बड़ी पैदा कर दी है; अशोब ने अपना ग्रन्थ सन् १७८४ ई० में लिखा था, एवं विस्मृति के कारण ऐसी भूल होना सम्भव है। फरवरी ७ को दोनों दलों में समझौता हो गया था, एवं यह एक अनहोनी बात प्रतीत होती है कि समझौता होने के बाद भी शाही सेना मरहठों का पीछा किये गई हो।

[2] अशोब, पृ० १०८-९; इर्विन, २, पृ० २८३-८। पे० द०, १४, पत्र सं० ५६ में पेशवा के फरवरी ७, १७३६ ई० के पत्र का उल्लेख मिलता है जिसमें पेशवा ने लिखा है कि ख़ानदौरान के दिल्ली से लौट आने पर ही उससे भेंट हो सकेगी। ऐसा जान पड़ता है कि राजपूताना की सारी परिस्थिति से सम्राट् को परिचित करने के लिए फ़रवरी के प्रारम्भ में ही ख़ानदौरान राजपूताना छोड़ कर दिल्ली को लौट गया था।

इधर विभिन्न क्षेत्रों में युद्ध हो रहा था, और उधर पेशवा उदयपुर की ओर शान्तिपूर्वक बढ़ रहा था; उसके दूत और वकील उससे पहिले ही उदयपुर पहुँच गए थे। जनवरी, १७३६ में महादेव भट्ट हिंगने जयपुर पहुँचा, और वहाँ जयसिंह के मन्त्री राजा अयामल ने जयसिंह के साथ उसकी भेंट करवाई। जयसिंह ने कुल मिला कर पाँच लाख रुपये (दो लाख नक़द और बाक़ी तीन लाख आभूषण, क़ीमती वस्त्र, पाँच घोड़ों, और एक हाथी के स्वरूप में) देना स्वीकार किया। जयसिंह ने अयामल को उदयपुर भेजा कि वह जाकर जयपुर राज्य में आने के लिए बाजीराव को निमन्त्रण दे; जयसिंह ने यह भी वादा किया कि वह बाजीराव को दिल्ली ले जाकर सम्राट् के सम्मुख पेश करेगा, और मरहठों तथा साम्राज्य के बीच में स्थायी सन्धि द्वारा शान्ति स्थापित करने का भी प्रबन्ध कर देगा।

सन्धि की बात-चीत का प्रारम्भ होना; फ़रवरी, १७३६ ई०

जयसिंह ने प्रस्ताव किया कि पेशवा को २० लाख नक़द और ४० लाख की जागीर दी जावे; साथ यह भी लिख दिया कि ख़र्चे वग़ैरा के बदले दोस्त मुहम्मद का प्रदेश पेशवा को दे दिया जावे। उधर मरहठों का एक दूसरा वकील, दादाजी पन्त ख़ानदौरान के साथ था। सन्धि की यह बात-चीत सिन्धिया और रामचन्द्र बावा के ज़रिये हो रही थी। ख़ानदौरान ने अपनी ओर से बात-चीत करने के लिए दिल्ली से निज़ाबत अली ख़ाँ को भेजा, और उसके साथ बाजीराव के ख़र्चे का रुपया चुका देने के लिए कुछ द्रव्य भी भेजा। यह बात स्पष्ट थी कि सब हतोत्साह हो चुके थे; सम्राट् भी स्वयं मरहठों के साथ सन्धि कर लेने के लिए उत्सुक हो गया था।[1] बाजीराव

[1] पे० द०, १४, पत्र सं० ५०-५१; सरकार, १, पृ० २६५

शान्तिपूर्वक, किन्तु बड़ी ही शान के साथ, धूम-धाम से राजपूताना में से होकर निकला। ज्यों ही पेशवा ने सम्राट् एवं शाही कर्मचारियों का समझौते की ओर झुकाव देखा, उसने तत्काल ही फ़रवरी ७ को अपने सेनापतियों को हुक्म दिया कि सब प्रकार का लड़ाई-झगड़ा बन्द कर दें और जहाँ तक हो सके कोई भी अवाञ्छनीय घटना न होने दें।[१] उदयपुर से पेशवा जहाज़पुर की ओर बढ़ा, और जयसिंह को भी उससे मिलने की उतावली हो गई। किशनगढ़ के पास भमभोलाओ नामक स्थान पर पेशवा और जयसिंह की फ़रवरी १५ को भेंट हुई। मल्हार होलकर के अतिरिक्त सब मरहठे सेनापति जयसिंह के सम्मुख उपस्थित हुए। जब प्रताप हाड़ा मरहठों की सहायता प्राप्त करने के लिए सतारा गया था, तब राजा शाहू ने प्रताप से वादा किया था कि वह जयसिंह से कहलवा कर बून्दी का राज्य बुधसिंह को पुनः दिलवा देगा; किन्तु उस वादे के अनुसार पेशवा ने इस समय बून्दी का राज्य लौटाने के लिए जयसिंह पर दबाव नहीं डाला, एवं रुष्ट होकर मल्हार होलकर दरबार में नहीं गया।[२]

मिलने पर जयसिंह ने पेशवा को सलाह दी कि उस बार तो वह सीधा दक्षिण को ही लौट जावे, क्योंकि तब इतना अवसर न रहा था कि दिल्ली पर हमला कर बरसात के पहिले दक्षिण लौट सके।[३] जब सन्धि की बात-चीत आरम्भ हुई तब पेशवा ने अपनी शर्तें लिख कर जयसिंह को दी, जो याददाश्त के लिए इस प्रकार लिखी हुई थीं :—

सन्धि के लिए बाजीराव की शर्तें

[१] पे० द०, १४, पत्र सं० ५६; सरकार, १, पृ० २६६

[२] पे० द०, १४, पत्र सं० ५२, ५६; ३०, पत्र सं० १६०। वंश०, ४, पृ० ३२३८-४०

[३] वंश०, ४, पृ० ३२३९; सरकार, १, पृ० २६४

"(१) मालवा प्रान्त की सूबेदारी दी जावे; बादशाही क़िले, जागीर में दी हुई ज़मीन, पुराने राजाओं का प्रदेश, इनाम या माफ़ी में दी हुई ज़मीन, एवं दैनिक भत्ते के बदले में दी हुई ज़मीन को छोड़ कर मालवा प्रान्त की बाक़ी सब ज़मीन जागीर में दी जावे।

"(२) युद्ध के ख़र्चे के १३ लाख रुपये नक़द तीन किश्तों में दिये जावें:—

रु० ४ लाख—जब पिलाजी सन्धि की शर्तें तय करने शाही दरबार में जावेंगे तब;

रु० ५ लाख—खरीफ़ की फ़सल पर;

रु० ४ लाख—रबी की फ़सल पर।

"(३) दक्षिण के छः सूबों पर सरदेशपंड्या का अधिकार देने के बदले में रु० छः लाख सम्राट् की सेवा में तब नज़र किए जावेंगे, जब वह सारा प्रदेश पेशवा के अधिकार में आ जावेगा।"

जयसिंह ने यह भी वादा किया कि पेशवा की इच्छानुसार, राजा शाहू के लिए मालवा की चौथ एवं मालवा प्रान्त का साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद होने की, दोनों शर्तें भी सम्राट् द्वारा स्वीकार करवाने में वह अपने व्यक्तिगत प्रभाव का पूरा-पूरा उपयोग करेगा।[1] इसके कुछ ही दिन बाद जयसिंह जयपुर चला गया।

पेशवा भी घर को लौट पड़ा। राह में बेघम में वह बुधसिंह से मिला और उसके साथ प्रीतिपूर्वक बातचीत की। वहाँ से वह अहीरवाड़ा की ओर गया। यहाँ से बाबूराव नामक एक और दूत को पेशवा ने भेजा

[1] पे० द०, १५, पृ० ९३; सरकार, १, पृ० २७३-४, २६४

और उसके द्वारा एक नई माँग पेश की। वह माँग यह थी कि चिमाजी साम्राज्य की सेवा पूरे दिल से करते रहे थे, पुनः साम्राज्य के हित का ख़याल कर उसी की वृद्धि करने के उद्देश्य से समय-समय पर उन्होंने पेशवा को बहुत कुछ समझाया-बुझाया था, एवं उन्हें सम्राट् की ओर से पुरस्कार-स्वरूप दो लाख रुपया दिया जावे।[1]

बाजीराव की शर्तों का स्वीकृत होना; पेशवा को मालवा का नायब-सूबेदार बनाना; मई, १७३६ ई०

ख़ानदौरान ने निज़ाबत अली ख़ाँ को भेजा था, सम्राट् ने उसके अतिरिक्त यादगार काश्मीरी और कृपाराम को भी जयसिंह के पास मार्च ८ को भेजा। वे जब लौट कर सम्राट् की सेवा में उपस्थित हुए तब वे अपने साथ बाजीराव की शर्तों की पूरी सूची भी लेते आए। जयसिंह की प्रार्थना के अनुसार सम्राट् भी पेशवा की प्रत्येक माँग के आगे "मंज़ूर" "मंज़ूर" लिखते गए।[2] जून के प्रारम्भ तक पेशवा सिरोंज में ठहरा हुआ, अपनी माँगों के उत्तर में सम्राट् की आज्ञा की बाट देखता रहा; और ज्यों-ही उसे उत्तर मिल गया त्यों-ही वह दक्षिण के लिए रवाना

---

[1] वंश०, ४, पृ० ३२३९-४०। पे० द०,१४, पत्र सं० ५८; १५, पृ० ९३। सरकार, १, पृ० २६४, २६७, २७४

[2] पे० द०, १५, पृ० ९३; सरकार, १, पृ० २७४; इर्विन, १, पृ० २८४। वंश० (४, पृ० ३२३०) में पिछले साल की घटनाओं की इस साल की घटनाओं के साथ गड़बड़ कर दी है; वंश० में लिखा है सन् १७३५ में ही मालवा पेशवा को दे दिया गया था, किन्तु वह कथन ग़लत है; मालवा सन् १७३६ में ही पेशवा को मिला उससे पहले नहीं।

अशोब, पृ० ११० ब; ग़ुलाम अली, पृ० ५४ ब; रुस्तम०, पृ० ५२९-३०; सियार०, पृ० ४६७-४७३

हो गया। इस प्रकार जयसिंह की प्रेरणा से सम्राट् ने बाजीराव को मालवा का नायब-सूबेदार नियुक्त किया, और नाम-मात्र के लिए ही क्यों न हो जयसिंह ही मालवा का सूबेदार बना रहा। "नियमानुसार न होते हुए भी वास्तविकता में तो मालवा प्रान्त का मुग़ल साम्राज्य से इस प्रकार सम्बन्ध-विच्छेद हो गया।"[1]

पेशवा की माँगों में वृद्धि; समझौते का अन्त

जब बाजीराव की ये प्रारम्भिक माँगें मंज़ूर हो गईं, तब पेशवा ने दूसरी और भी माँगें पेश कीं। पेशवा को अपने वकील द्वारा यह ज्ञात हो गया था कि सम्राट् और उसके सलाहकारों ने यादगार खाँ एवं अन्य व्यक्तियों को यह आदेश दिया था कि अगर मरहठों को सन्तुष्ट करने के लिए आवश्यक जान पड़े तो वार्षिक टाँके के रूप में रु० १०,६०,००० राजपूत राज्यों से वसूल करने का अधिकार भी मरहठों को दे दिया जावे। सम्राट् का खयाल था कि इस प्रकार राजपूतों तथा मरहठों में मनमुटाव हो जावेगा। पेशवा को तो इस बात से साम्राज्य की अत्यधिक निर्बलता ही व्यक्त हो गई, एवं उसने धोंधों पन्त के द्वारा खानदौरान के पास अपनी नई माँगों की एक और सूची भेज दी; खानदौरान ने वह सूची सम्राट् की सेवा में पेश की। उस सूची की कुछ माँगें तो सम्राट् मंज़ूर करने को उद्यत थे, किन्तु खानदौरान ने पेशवा को उत्तर में केवल यही लिख भेजा कि शीघ्र ही वज़ीर साम्राज्य के मामले सुलझाने के लिए मालवा प्रान्त में नर्मदा तक जावेगा। साथ ही खानदौरान ने इस बार भी पेशवा से आग्रह किया कि वह दिल्ली जाकर सम्राट् की सेवा में

[1] सरकार, १, पृ० २७०-१; इर्विन, २, पृ० २८४-५

उपस्थित हो; ख़ानदौरान ने यह भी प्रस्ताव कर दिया कि यदि पेशवा उस साल न आ सके तो आगामी वर्ष हाज़िर होने का ही वादा कर दे। ख़ानदौरान ने स्वयं इस बात का वादा किया कि यदि पेशवा उज्जैन तक चला आवेगा तो पेशवा को आदर-पूर्वक दिल्ली तक ले जाने के लिए शाही दरबार से अमीरों को भेज दिया जावेगा।[1]

बाजीराव और चिमाजी को शाही मन्सब आदि मिलना; पेशवा के नाम शाही फ़रमान; सितम्बर २९, १७३६ ई०

नई माँगों की सूची धोंधों पन्त ने पेश कर दी थी; उसके बाद ही महादेव भट्ट हिंगने भी जा पहुँचा और उसने बाजीराव की ओर से पेशकस नज़र कर पेशवा की अर्ज़ी भी सम्राट् की सेवा में पेश की। सितम्बर, २६, १७३६ ई० को मुहम्मद शाह ने शाही फ़रमान द्वारा पेशवा को जागीर, ७-हज़ारी मन्सब और पूरे अधिकारों के साथ उसके वतन के सब महल भी प्रदान किये; पेशवा को खिलअत, सिरोपाव, सिरपेच, तलवार, हाथी, घोड़े आदि भी मिले। चिमाजी को भी ५-हज़ारी मन्सब मिला। अन्य सामन्तों के समान पेशवा को भी शाही दरबार में उपस्थित होने का निमन्त्रण दिया गया। यह भी वादा किया गया कि जब पेशवा दिल्ली आवेगा तब उसकी १५ लाख रुपयों की माँग भी पूरी कर दी जावेगी।[2]

---

[1] इर्विन, २, पृ०; डफ़, १, पृ० ३९१-२; पे० द०, १५ में पृ० ९४ पर राजपूत राज्यों के टाँके की यह सूची दी हुई है। पे० द०, १५, पृ० ९२-३, ८७-८, ८९; सरकार १, पृ० २७४

[2] पे० द०, १५, पृ० ८६, ८८, ८९। पे० द०, १४, पत्र सं० ६२ में दिया हुआ मास यदि सही है तो उस पत्र की ठीक तारीख़ सितम्बर, १८, १७३६ ई० होगी;

सम्राट् द्वारा मालवा प्रान्त का नायब सूबेदार नियुक्त किये जाने पर पेशवा मालवा प्रान्त को अपने अधिकार में करने के लिए उस प्रान्त में गया। १७३६ ई० की वर्षा ऋतु में मरहठों ने भी मालवा में पड़ाव किया। प्रान्त और मरहठों की सेना का भार राणोजी सिन्धिया, पिलाजी जाधव, होलकर, आनन्दराव पवार, तुकोजी पवार और जिवाजी पवार के कन्धों पर था। जून, १७३६ ई० में आनन्दराव पवार की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र, यशवन्तराव उसका उत्तराधिकारी बना; यशवन्तराव इस समय अपने पिता के साथ मालवा में ही था। मरहठे सेनापतियों ने इस बात का पूरा-पूरा प्रयत्न किया कि प्रान्त की कोई भी ज़मीन पड़ती न छोड़ी जावे।[1]

सन् १७३६ ई० में मरहठों का मालवा में पड़ाव

बरसात के बाद मरहठों के आक्रमण पुनः होने लगे। इस बार पेशवा ने अपनी माँगों की अन्तिम सूची पेश की, जिसमें उसने निम्नलिखित शर्तें लिखी थीं :—

पेशवा की माँगों की अन्तिम सूची; १७३६-७ ई०

(१) मालवा की सूबेदारी के साथ ही साथ सब राज्यों सहित सारा मालवा प्रान्त पेशवा को जागीर के तौर पर दे दिया जावे।

किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उस पत्र में दिया हुआ मास ग़लत है, सही मास जमादि-उल्-आख़िर होगा और उसके अनुसार ठीक तारीख़ आक्टोबर १८, १७३६ ई० होगी। पे० द०, १५, पत्र सं० ६७। राजवाड़े, ६, पत्र सं० १७ की जो तारीख़ राजवाड़े नें दी है वह ग़लत है उसकी सही तारीख़ आक्टोबर १४, १७३६ ई० होगी।

[1] पे० द०, २२, पत्र सं० ३३१; १४, पत्र सं० ६२। अ० म० द०, पत्र सं० १०४ राजवाड़े, ६, के पत्र सं० ९५, ९६, ९७ एवं १७ की सही तारीख़ें क्रमशः यों हैं, जून ८, जून २२, जून २५ और आक्टोबर १४, १७३६ ई०।

(२) शाही सेना की सहायता से यार मुहम्मद ख़ाँ और इज़्ज़त ख़ाँ को उनके राज्यों से निकाल बाहर कर उनके राज्य पेशवा को दे दिये जावें ।

(३) दक्षिण के छः सूबों में पेशवा को ५० लाख वार्षिक आय की जागीर दी जावे । ये सूबे सम्राट् के पुत्र के नाम कर दिये जावें और शाहज़ादे की अनुपस्थिति में उन सूबों का शासनकार्य बाजीराव को ही सौंपा जावे । दक्षिण में लगान आदि की जो भी आय हो उसमें आधी सम्राट् लें और बाक़ी बची हुई आधी आय बाजीराव को प्रदान की जावे ।

(४) तञ्जोर का राज्य राजा शाहू को प्रदान किया जावे ।

(५) माण्डू, धार और रायसीन के क़िले पेशवा को दे दिये जावें कि वहाँ पेशवा अपने कुटुम्ब को रख सके ।

(६) चम्बल नदी से दक्षिण का सारा प्रदेश पेशवा को जागीर के तौर पर इस शर्त पर ही दिया जावे कि उस प्रदेश के अन्तर्गत स्थित राजा जहाँ तक पेशवा की आज्ञा मानें और उसे टाँका देते रहें वहाँ तक उनके साथ किसी भी प्रकार की छेड़-छाड़ न की जावे ।

(७) पेशवा के क़र्ज़ का भार हलका करने के लिए तत्काल ही बंगाल के ख़ज़ाने से १५ लाख रुपया पेशवा को सहायतार्थ दे दिया जावे।

(८) प्रयाग, बनारस, गया और मथुरा के तीर्थ पेशवा को जागीर में दे दिये जावें ।

(९) दक्षिण का सारा प्रबन्ध पेशवा के ही द्वारा करवाया जावे ।

(१०) पेशवा आगरा जाने को राज़ी हो गया; आगरा से जयसिंह और अमीर ख़ाँ उसे ले जावें और जब सम्राट् घोड़े पर हवा खाने निकलें

तब वहीं सम्राट् से पेशवा की भेंट हो; भेंट होने के बाद तत्काल ही पेशवा को लौट जाने की आज्ञा हो जावे।"

इन शर्तों का सम्राट् द्वारा अस्वीकृत किया जाना स्वाभाविक ही था। कुछ काल के लिए स्थायी समझौते की सारी बातचीत ख़तम हो गई। बाजीराव की मृत्यु के बाद जब तक सन् १७४०-१ ई० में उसके पुत्र, पेशवा बालाजी राव ने सन्धि की बातचीत पुनः न छेड़ी, किसी ने भी समझौते का नाम न लिया।[1]

पेशवा का मालवा में हो कर गुज़रना; दिल्ली पर उसका धावा एवं वहाँ से वापिस लौटना; १७३६-७ ई०

पेशवा ने देखा कि उसकी सारी शर्तें नामंज़ूर हो गईं, किन्तु उसी समय जयसिंह ने पेशवा को एक गुप्त निमन्त्रण भी भेजा। नवम्बर १२, १७३६ ई० को दिल्ली के दरवाज़े तक धावा मारने के उद्देश्य से पेशवा पूना से रवाना हुआ।[2] नर्मदा पार कर नवम्बर २६ को पेशवा देपालपुर पहुँचा। वहाँ से भोपाल जा कर भोपाल के क़िले का घेरा डाला। यार मुहम्मद ख़ाँ इस्लामनगर में था; वहाँ से निकल कर उसने मरहठों पर आक्रमण किया, किन्तु जब वह मरहठों को घेरा उठा लेने के लिए बाध्य न कर सका तब इस्लामनगर को पुनः लौट गया। भोपाल के घेरे का कार्य होलकर को सौंप दिया, और पेशवा ने जाकर इस्लामनगर का भी घेरा डाला। तब तो यार मुहम्मद ख़ाँ ने हार मान ली और पाँच लाख रुपया देना स्वीकार कर लिया। ३½ लाख रुपया नक़द, सिरोपाव, धान्य

[1] सरकार, १, पृ० २७४-६; पे० द०, १५, पृ० ९५-६

[2] वंश०, ४, पृ० ३२४०; पे० द०, २२, पत्र सं० ३४१; सरकार, १, पृ० २७०-१

आदि अनेकानेक वस्तुएँ देने पर दिसम्बर २० के लगभग सन्धि हो गई। इस समय निज़ाम बुरहानपुर की ओर आ रहा था, किन्तु यार मुहम्मद ख़ाँ ने उससे सहायता नहीं माँगी, जिससे निज़ाम ने भी उसकी सहायता न की।[1] भोपाल से पेशवा भिल्सा गया और कोई १५ दिन के घेरे के बाद जनवरी ११, १७३७ ई० को वह किला भी उसने हस्तगत कर लिया। भिल्सा से चौथ वसूल करने पर पेशवा बुन्देलखण्ड की ओर बढ़ा।[2] इस समय शाही सेनापति भी आगरा के आस-पास चम्बल के उत्तरी तीर पर ससैन्य घूम रहे थे। मरहठे सेनापति भदावर राज्य में जा घुसे और वहाँ युद्ध शुरू हो गया। उसी समय पेशवा घुड़सवारों को लेकर दिल्ली जा पहुँचा, कालकादेवी के मन्दिर को जा घेरा, और यत्र-तत्र लूट खसोट कर वापिस लौट गया। इसी चढ़ाई में शाही सेनापति आगरा के आस-पास तथा अवध के प्रान्त में यत्र-तत्र ससैन्य घूमते रहे और उन्होंने छोटी-मोटी लड़ाइयों में कुछ बार मरहठों को हराया भी, किन्तु इन सब का मालवा की राजनैतिक परिस्थिति पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

अब वज़ीर तथा अन्य सलाहकारों ने सम्राट् को राय दी कि निज़ाम को शाही दरबार में बुलाया जावे। वज़ीर एवं उसके साथियों ने इस बात

निज़ाम का दिल्ली बुलाया जाना

का स्पष्टतया अनुभव किया कि उनकी स्थिति बहुत ही निर्बल थी तथा वे तत्कालीन परिस्थिति को सम्हालने में पूर्णतया असमर्थ थे। शाही कार्य में

[1] पे० द०, १४, पत्र सं० ४३; १५, पत्र सं० १८; १०, पत्र सं० २७। पे० द०, १०, पत्र सं० २७ की सही तारीख़ जनवरी १९, १७३७ ई० है। रुस्तम अली ने मरहठों की इस चढ़ाई का कोई भी उल्लेख नहीं किया है।

[2] पे० द०, ३०, पत्र सं० १९२; १५, पत्र सं० ५, ९३

हस्तक्षेप करने एवं उसको सम्हालने का निज़ाम का मोह अब भी छूटा न था। मालवा में स्थित उसकी जागीर से लगान आदि वसूल करने एवं प्रान्त में शान्ति स्थापित करने के अतिरिक्त मालवा के किसी भी आन्तरिक मामले में निज़ाम को इन दिनों कोई दिलचस्पी नहीं रह गई थी ।[१] किन्तु ज्यों-ज्यों मरहठों की सत्ता बढ़ती गई, और साथ ही साथ ज्यों-ज्यों उनका कार्यक्षेत्र विस्तीर्ण होता गया, त्यों-त्यों निज़ाम अधिकाधिक चिन्तित होने लगा और सादत अली ख़ाँ आदि अमीरों के साथ पत्र-व्यवहार प्रारम्भ कर वह उनसे आग्रह करने लगा कि वे किसी भी प्रकार मरहठों की माँगें स्वीकृत न होने दें ।[२] निज़ाम के कट्टर शत्रु, ख़ानदौरान को भी यह अत्यावश्यक प्रतीत हुआ कि निज़ाम को बुलाया जावे । निज़ाम को शाही दरबार में बुला लाने के लिए दिल्ली से सैयद जमाल ख़ाँ को भेजा । निज़ाम ने बड़े ही आदर के साथ सम्राट् के फ़रमान को बुरहानपुर में फ़रवरी ३, १७३७ ई० को स्वीकार किया ।[३]

निज़ाम दिसम्बर २०, १७३६ ई० को ही बुरहानपुर पहुँच गया था, वहीं ठहरा हुआ वह दिल्ली से आने वाली ख़बरों की राह देख रहा था । निज़ाम के वकील ने उसे पहिले ही सूचित कर दिया था कि मालवा की सूबेदारी उसे दे दी जावेगी, और उससे कहा जावेगा कि वहाँ जाकर वह मरहठों को उस प्रान्त से निकाल बाहिर करे ।[४] ज्यों-ही दिल्ली आने का

---

[१] पे० द०, ३०, पत्र सं० १२५; १५, पत्र सं० ८८

[२] पे० द०, १४, पत्र सं० ४३; १५, पत्र सं० ८९, ९१

[३] पे० द०, १४, पत्र सं० ४५; १५, पत्र सं० ९३। अहवाल०, पृ० २४१; इर्विन, २, पृ० २९९-३००

[४] पे० द०, ३०; पत्र सं० १९४; १०, पत्र सं० २७, इस पत्र की ठीक तारीख़

निमन्त्रण वाला फ़रमान निज़ाम को मिला, उसने दिल्ली जाने का निश्चय कर लिया। यह सुन कर कि निज़ाम भी उसकी सहायतार्थ आ रहा है, सम्राट् ने भी सौगन्द-शपथ के साथ वादा किया कि वह पेशवा से नहीं मिलेगा। बुरहानपुर से अप्रेल ७, १७३७ ई० को रवाना हो कर मई के प्रारम्भ में निज़ाम ने हण्डिया के पास नर्मदा को पार किया।[१] निज़ाम के दिल्ली जाने की ख़बर का मालवा पर बहुत प्रभाव पड़ा। इन्दौर के आस-पास के ज़मींदारों ने मरहठों के कर्मचारियों को लगान आदि देने से इन्कार कर दिया। यार मुहम्मद ख़ाँ चौथ आदि का आधा द्रव्य दे चुका था; किन्तु अब बाक़ी रहा रुपया देने को वह भी तैयार न था।[२]

मई १० को जब निज़ाम सिरोंज पहुँचा, तब मरहठों के जो कर्मचारी वहाँ नियुक्त थे, वे सब शहर छोड़ कर चले गए। मई २६ तक निज़ाम सिरोंज में ठहर कर देखता रहा कि पेशवा किस राह से दक्षिण लौटेगा; पेशवा इस समय दिल्ली पर धावा मार कर दक्षिण की ओर जा रहा था। उत्तर से लौटते समय पिलाजी जाधव मई २८ को निज़ाम से मिले और निज़ाम ने उसका समुचित आदर भी किया। निज़ाम की कुछ सेना सिरोंज में पीछे रह गई थी, निज़ाम के कहने पर पिलाजी जाधव तथा उसका पुत्र

जनवरी १९, १७३७ ई० है। इसी पत्र के दूसरे खण्ड में (पृ० २३, पंक्ति ९ में 'छत्रसाल' लिखा है वह 'छत्रसिंह' होना चाहिए। यहाँ नरवर के छत्रसिंह कछवाहा का उल्लेख है, छत्रसाल बुन्देले का नहीं। अपने रक्षक, मरहठों के विरुद्ध वह निजाम के साथ मैत्री करेगा यह बात छत्रसाल के लिए स्वप्न में भी सम्भव न थी।

[१] पे० द०, १५, पत्र सं० २५, २६, २७, ३७; अहवाल०, पृ० २४५ अ; इर्विन, २, पृ० ३००

[२] पे० द०, १५, पत्र सं० २७, ४०, ४२

एक-दो मंज़िलों तक इस सेना के साथ भी रहे। मई ३१ को शाहदौरा में और जून २ तक बूढ़ा डोंगर में ठहर कर निज़ाम ग्वालियर की ओर चला गया। आगरा होता हुआ वह जुलाई २, १७३७ ई० को दिल्ली के पास जा पहुँचा।[1]

ज्यों ही निज़ाम सिरोंज से रवाना हुआ, यार मुहम्मद ख़ाँ ने पुनः मरहठों से मेल कर लिया और बाक़ी रही चौथ आदि भी देना मंज़ूर किया; उसने मरहठे सेनापतियों से यह प्रार्थना अवश्य की कि उसके राज्य में लूट-खसोट और बरबादी न की जावे। पेशवा मई २६ को धामुनी में था, वहीं से वह जल्द दक्षिण को रवाना हो गया। राणोजी सिन्धिया और होलकर भी जुलाई २४ को पूना पहुँच गए। सिरोंज और भोपाल का मामला तय करके पिलाजी ने भी उनका अनुसरण किया।

दिल्ली के राज्य-कार्य में बड़ी गड़बड़ी फैली हुई थी। यद्यपि अप्रैल, १७३७ ई० में निज़ाम को दिल्ली आने का निमन्त्रण भेजा जा चुका था, फिर भी सादत ख़ाँ ने सम्राट् को निवेदन किया कि मालवा तथा अन्य सूबे उसे इसी शर्त पर दे दिये जावें कि वह मरहठों को मालवा से निकाल बाहिर करे।[2] जयसिंह अब भी नाम-मात्र को मालवा का सूबेदार था; वह अब भी यही प्रयत्न कर रहा था कि किसी न किसी प्रकार शान्तिपूर्वक समझौता हो जावे। किन्तु जब निज़ाम हिन्दुस्तान में आया तब कुछ

---

[1] पे० द०, १५, पत्र सं० ४०, ४२, ४८, ४४, ४९, ६०; अहवाल०, पृ० २४५ ब; मिरात्-उस्-सफ़ा, पृ० ६३४; इर्विन, २, पृ० ३००

[2] पे० द०, १५, पत्र सं० ४८, ४४, ४५, ५९, ३०, ५२; २२, पत्र सं० ३५८

काल के लिए उत्तरी भारत के राजनैतिक वातावरण में निस्तब्धता छा गई; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का यही विश्वास था कि निज़ाम अपनी ही नीति सम्राट् के सम्मुख पेश करेगा।[1]

निज़ाम का अपने पुत्र गाज़ी-उद्दीन को मालवा की सूबेदारी दिलवाना; अगस्त ३, १७३७ ई०

जुलाई ४, १७३७ ई० को निज़ाम शाही दरबार में उपस्थित हुआ। दिल्ली में निज़ाम का बहुत आदर हुआ, उसे 'आसफ़ जाह' का ख़िताब मिला और नियमानुसार ख़िलअत और सिरोपाव आदि भी उसे दिए गए। निज़ाम ने वादा किया कि वह मरहठों को नर्मदा से आगे बढ़ने न देगा, जिसके बदले में उसे ५ सूबे और एक करोड़ रुपया देने का सम्राट् ने भी वचन दिया। अगस्त ३, १७३७ को मालवा की सूबेदारी और नायब सूबेदारी से जयसिंह और बाजीराव बल्लाल को हटा कर, निज़ाम के ज्येष्ठ पुत्र गाज़ी-उद्दीन ख़ाँ को मालवा का सूबेदार बनाया; गाज़ी-उद्दीन ख़ाँ को आगरा का सूबा भी मिला।[2] काग़ज़ों में यह सारी कार्यवाही हो गई, किन्तु वास्तविक तौर पर मालवा पर अधिकार कर वहाँ की सूबेदारी करने के लिए यह आवश्यक था कि निज़ाम और उसका पुत्र मरहठों का सामना कर उनके विरुद्ध अपनी शक्ति आज़मा लें

[1] पे० द०, १५, पत्र सं० ३३

[2] पे० द०, १५, पत्र सं० ५३; अशोब, १२८ अ, १३०ब; खुशहाल, पृ० १०८२; रुस्तम०, पृ० ५४३-६, ५४९; इर्विन, २, पृ० ३००-२। रुस्तम अली (पृ० ५४९) ने लिखा है कि मालवा की सूबेदारी निजाम को दी गई, किन्तु उसका यह कथन ग़लत है।

४. मालवा के लिए अन्तिम द्वन्द तथा उसकी विफलता; मालवा का साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद

(अगस्त ३, १७३७ ई०—जुलाई ४, १७४१ ई०)

अपने पुत्र के लिए मालवा की सूबेदारी प्राप्त कर लेने पर निज़ाम ने मरहठों को मालवा से निकाल बाहर कर उस प्रान्त को अपने अधिकार में लाने का निश्चय किया। बरसात की मौसिम समाप्त होते ही निज़ाम और उसका पुत्र, दोनों मालवा को चल पड़े। निज़ाम की सेना के सिखाए हुए गोलन्दाज़ इस समय भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे; उनके अतिरिक्त निज़ाम अपने साथ कोई ३०,००० सैनिकों (मरहठे जासूसों के अन्दाज़ से यह सेना ६०,००० सैनिकों की थी) को भी लेता गया। उसने ग्वालियर का सीधा रास्ता छोड़ दिया और आगरा से भी नीचे यमुना को पार कर बुन्देलखण्ड में होता हुआ, वह मालवा को चला। नवम्बर (१७३७ ई०) के अन्त में वह धामुनी जा पहुँचा। राह में हिरदेशाह, एवं छत्रसाल बुन्देला के अन्य पुत्रों की निज़ाम से नवम्बर ११, १७३७ ई० को भेंट हुई। दतिया और ओरछा के राजा, एवं जयपुर के जयसिंह के पुत्र भी निज़ाम की सेना के साथ थे। अहीर ज़मींदारों, रुहेला सामन्तों के अतिरिक्त अन्य कई राजा भी निज़ाम की सेना में सम्मिलित हो गए। निज़ाम को आशा थी कि सादत ख़ाँ और कोटा के दुर्जन साल हाड़ा भी उसकी सहायतार्थ अधिक सेना भेजेंगे। दिसम्बर के प्रारम्भ में वह सिरोंज होता हुआ भोपाल की ओर बढ़ा। निज़ाम का छोटा लड़का, नासिरजंग,

मरहठों को निकाल बाहर करने के लिए निज़ाम का मालवा को जाना

इस समय दक्षिण में नायब सूबेदार था; निज़ाम ने उसे पहिले ही लिखा भेजा था कि जहाँ तक हो सके वह पेशवा को दक्षिण से रवाना होने न दे।[1]

पेशवा को दक्षिण में ही रोक रखने के सारे प्रयत्न विफल हुए। ज्यों-ही बाजीराव ने निज़ाम की मालवा पर चढ़ाई का विवरण सुना त्यों-ही वह भी स्वयं जल्दी-जल्दी मालवा की ओर बढ़ा। ८०,००० घुड़सवारों की एक सेना एकत्रित कर वह खरगोन और पुनासा होता हुआ नर्मदा की ओर चला। दिसम्बर ७ को वह पोहानालिया में था। एक सप्ताह बाद दोनों विरोधी सेनाओं में केवल ४० कोस की ही दूरी रह गई।[2] इधर शाहजहाँपुर के आमिल मीरमानि ख़ाँ ने मरहठों के कमाविसदार को मार कर शाहजहाँपुर पर अधिकार कर लिया था, और वह स्वयं निज़ाम की सहायतार्थ जा रहा था। राणोजी सिंधिया, होलकर एवं अन्य मरहठे सेनापतियों ने राह में उसपर हमला किया और दारा-इ-सराय में एक घमासान युद्ध हुआ, जिसमें १५०० सैनिकों के साथ मीरमानि ख़ाँ भी खेत रहा। मीरमानि ख़ाँ को हरा कर ये सब सेनापति पेशवा के साथ आ मिले।[3] पेशवा की सेना के साथ सम्मिलित होने के

पेशवा का भी मालवा को जाना

---

[1] पे० द०, १५, पत्र सं० ५६, ५७; ब्रह्म०, पत्र सं० १३४; खुशहाल, पृ० १०८२; अशोब, पृ० १३० ब; सियार०, पृ० ७७; सुजान०, पृ० ५; रुस्तम०, पृ० ५४९; इर्विन, २, पृ० ३०२

[2] ब्रह्म०, पत्र सं० १३४। पे० द०, ३०, पत्र सं० २०७; १५, पत्र सं० ५९

[3] पे० द०, १५, पत्र सं०, ५८; २२, पत्र सं० ३६५; ३०, पत्र सं० २०७। ब्रह्म०, पत्र सं० ३३

लिए जब सियाजी गायकवाड़ भिल्सा की ओर से आ रहा था, राह में उसे निज़ाम का सामना करना पड़ा। दिसम्बर १४ को भोपाल के पास वह भी पेशवा के साथ सम्मिलित हो गया।[1]

अन्तिम द्वन्द के लिए अब पूरी तैयारी हो चुकी थी। भोपाल आते समय निज़ाम ने अपना निजी भारी-भारी सामान रायसीन के क़िले में भेज दिया था; निज़ाम भी अब युद्ध के लिए तैयारी करने लगा। १२ कोस की लम्बी मंजिल पार कर दिसम्बर १३ को वह भोपाल पहुँचा। सादत अली ने १०,००० सैनिकों का एक दल भेजा था, वह भी निज़ाम से आ मिला।[2] किन्तु मरहठों की सेना का वृत्तान्त सुन कर ही निज़ाम तो सहम गया; साहसपूर्वक आगे बढ़ कर मरहठों की सेना पर हमला करने के बजाय निज़ाम क़िले के पास ही एक ऐसे स्थान पर सुदृढ़ मोर्चाबन्दी करने लगा, जहाँ उसके पीछे तालाब था और सामने एक नाला पड़ता था। मरहठों से अपनी रक्षा करने के लिए यहाँ ही निज़ाम पूरी-पूरी तैयारियाँ करने लगा।[3] दिसम्बर १३ को मर

भोपाल का युद्ध; दिसम्बर १४, १७३७ ई०

[1]पे० द०, ३०, पत्र सं० २०६

[2]डफ़ (१, पृ० ३९७) के आधार पर ही इर्विन ने (२, पृ० ३०४) लिखा है कि "अवध के सूबेदार सादत अली का भतीजा, सफ़दर जंग, और कोटा का हाड़ा राजा जब घिरी हुई मुग़ल सेना की सहायतार्थ जा रहे थे, राह में मल्हार होलकर और जसवन्त पवार ने उन्हें रोक कर हराया।" किन्तु पे० द०, ३०, पत्र सं० २०७ में यह बात निश्चित रूप से लिखी है कि सादत अली ख़ाँ की भेजी हुई सेना दिसम्बर १३ से पहिले ही आकर निज़ाम की सेना के साथ सम्मिलित हो गई थी; एवं सादत अली की सेना के बारे में तो इर्विन का उपर्युक्त कथन स्वीकार नहीं किया जा सकता।

[3]पे० द०, १५, पत्र सं० ५९; ३०, पत्र सं० २०७। ब्रह्म०, पत्र सं० ३३; राजवाड़े, ६, पत्र सं० ११७; इर्विन, २, पृ० ३०३

की सेना भोपाल से ८-९ कोस की दूरी पर थी। दूसरे दिन जब मरहठे भोपाल के पास जा पहुँचे तब निज़ाम को अत्यधिक सतर्क देख कर उनका साहस बहुत बढ़ गया, और मुग़ल सेना के पास जा-जा कर वे लूट-खसोट करने लगे। तब तो जयसिंह के पुत्र, सभासिंह जाट और दूसरे राजपूत सेनापतियों के सेनापतित्व में जाट तथा राजपूत सेना को निज़ाम ने आगे भेजा। उसकी गोलन्दाज़ सेना को भी बढ़ने का हुक्म हुआ। राणोजी सिंधिया, पिलाजी जाधव एवं सियाजी के सेनापतित्व में मरहठों की सेना ने इनपर हमला किया। पेशवा स्वयं पीछे सुसज्जित खड़ा निज़ाम पर आक्रमण करने का सुअवसर पाने की बाट देखता रहा; किन्तु निज़ाम इतना चतुर था कि उसने पेशवा को ऐसा अवसर न दिया। दिसम्बर १४, १७३७ ई० को संध्या के समय यह युद्ध हुआ।[1] कुल मिला कर राजपूतों के १५० सैनिक खेत रहे; मरहठों के तो सिर्फ़ ५०-६० आदमी और ३० घोड़े ही मारे गए। मरहठों की ओर २०० से लेकर ४०० तक मनुष्य एवं ५०० से ७०० तक घोड़े ज़ख्मी भी हुए। निज़ाम के गोलन्दाज़ों ने मरहठों को बहुत क्षति पहुँचाई और साथ ही उन्होंने निज़ाम की सेना को मरहठों के हाथों बुरी हार भी न होने दी। इसके बाद शीघ्र ही निज़ाम ने अपनी

---

[1] बाजीराव लिखता है कि यह युद्ध रमज़ान ३ (दिसम्बर १४) को हुआ (पे० द०, २२, पत्र सं० ३६८; ब्रह्म०, पत्र सं० ३३–३४, ३६। किन्तु राजवाड़े, ६, पत्र सं० १७ में युद्ध की तारीख़ रमज़ान ४ लिखी है। युद्ध संध्या समय हुआ था, इसी कारण से तारीख़ों में भेद पाया जाता है। मुसलमानों की तारीख़ संध्या समय बदलती है; युद्ध सूर्यास्त तक समाप्त नहीं हो पाया था एवं राजवाड़े द्वारा उद्धृत पत्र में अगले दिन की तारीख़ दी हुई है। मुसलमानी तारीख़ों में भेद हो सकता है, किन्तु अंग्रेज़ी तारीख़ तो दिसम्बर १४ ही आती है, उस दिन ही संध्या को यह युद्ध हुआ था।

सेना को वापिस बुला लिया; युद्ध में किसी भी पक्ष की निश्चितरूपेण हार-जीत नहीं हुई।[1]

तीन-चार दिन तक निज़ाम मोर्चे में ही डटा रहा। किन्तु अब राजपूत और निज़ाम, दोनों परस्पर एक दूसरे का अविश्वास करने लगे, और राजपूतों ने यह भी इरादा किया कि निज़ाम को छोड़ कर वे चल दें, किन्तु उनका सामान आदि भोपाल के शहर में निज़ाम के अधिकार में ही पड़ा था, एवं वे वहाँ से रवाना न हो सके। मरहठों ने मुग़ल सेना को घेर लिया और निज़ाम की सेना के घोड़े भूखों मरने लगे। मरहठों के पास बड़ी-बड़ी भारी तोपें न थीं, एवं मुग़ल सेना और केम्प में जलती हुई मशालें, पलीतें, बाण आदि फेंक कर वहाँ गड़बड़ी मचाने के अतिरिक्त वे अधिक कुछ कर न सके।[2]

निज़ाम दिल्ली तथा दक्षिण से सहायता पाने की आशा लगाए बैठा था। किन्तु दिसम्बर १४ के युद्ध के बाद ही उसको सूचना मिली कि दिल्ली से कोई भी सहायता प्राप्त न होगी। सहायतार्थ अधिक सेना भेजने के लिए निज़ाम का निवेदन पत्र जब सम्राट् के पास पहुँचा, तब सम्राट् ने वज़ीर और खानदौरान को आदेश दिया कि जब सम्राट् स्वयं मरहठों के विरुद्ध चढ़ाई करेंगे, तब ही वे दोनों उनके साथ

निज़ाम को कहीं से भी कोई सहायता न मिलना

[1] राजवाड़े, ६, पत्र सं० ११७ में इस युद्ध का दूसरा ही विवरण दिया है, किन्तु बाजीराव द्वारा दिया गया वृत्तान्त ही अधिक विश्वसनीय मानना चाहिये। ब्रह्म०, पत्र सं० ३३

[2] ब्रह्म०, पत्र सं० ३३; इर्विन, २, पृ० ३०३–४

जावें; और निकट भविष्य में सम्राट् के दिल्ली से रवाना होने की कोई भी सम्भावना न थी।[१] निज़ाम की सहायतार्थ भेजी जाने वाली सेना आधे दिसम्बर (१७३७ ई०) के बाद जाकर ही कहीं औरंगाबाद में एकत्रित हुई। कोई २०,००० सैनिक एकत्रित हुए थे। इधर पेशवा ने भी राजा शाहू को सहायता भेजने के लिए लिखा। पेशवा ने चिमाजी को आग्रह पूर्वक लिखा कि दाभाड़े, बान्दे तथा जिन-जिन दूसरे मरहठे सेनापतियों ने अब तक पेशवा की सहायता न की थी, उनसे भी सहायता प्राप्त कर मालवा में भेजी जावे। बाजीराव ने रघुजी भोंसले को भी सहायता के लिए लिख भेजा था। उधर नासिर जंग औरंगाबाद में सेना को एकत्रित एवं संगठित कर दिसम्बर १८ को बुरहानपुर की ओर बढ़ने के लिए तैयार बैठा एलचीपुर से शुजात ख़ाँ के आने की बाट देख रहा था। किन्तु औरंगाबाद आते समय राह में ही शुजात ख़ाँ को रघुजी भोंसले ने बुरी तरह हराया। इधर चिमाजी ताप्ती नदी पर सुदृढ़ मोर्चाबन्दी किए डटे हुए थे, और जब दामाजी गायकवाड़ भी चिमाजी से आ मिले, तब तो चिमाजी की शक्ति बहुत बढ़ गई। नासिर जंग ने स्वयं को बड़ी ही बुरी परिस्थिति में पड़ा पाया। उसे ज्ञात था कि औरंगाबाद से उसके रवाना होते ही औरंगाबाद का भविष्य केवल रघुजी भोंसले की दया पर ही निर्भर रह जावेगा। दीर्घकालीन वाद-विवाद एवं सलाह-मशविरे के बाद नासिर जंग औरंगाबाद छोड़ कर बुरहानपुर की ओर बढ़ा। राह में चिमाजी ने पीछे से नासिर जंग पर आक्रमण किया। किन्तु कुछ ही दिनों बाद (दिसम्बर, २०-३०, सन् १७३७ ई० के लगभग) नासिर

---

[१] ब्रह्म०, पत्र सं० ३३; इर्विन, २, पृ० ३०५

जंग को सूचना मिली कि पेशवा और निज़ाम के बीच सन्धि हो गई,[1] एवं नासिर जंग ने आगे न बढ़ने का निश्चय किया।

उधर निज़ाम नासिर जंग को भोपाल बुला लाने के लिए दूत पर दूत भेज रहा था। किन्तु दक्षिण की सब घटनाओं का पूरा-पूरा विवरण निज़ाम को ज्ञात हो सकने के पहिले ही निज़ाम की सेना भूखों मरने लगी, अतएव पेशवा से समझौते की बातचीत करने के लिए निज़ाम ने आनन्दराव सुमन्त को भेजा (दिसम्बर २४, १७३७ ई०)। बाजीराव ने भी बाबूजी मल्हार को निज़ाम के पास भेजा। दूसरे दिन दोनों दलों के प्रतिनिधियों ने मिल कर समझौते की शर्तें तय कर लीं; वे शर्तें निज़ाम के सम्मुख पेश हुईं, किन्तु निज़ाम एकबारगी निश्चय न कर सका कि इन शर्तों को स्वीकार करे या न करे।[2] दिसम्बर २६ को सन्धि की शर्तों के बारे में बातचीत करने का बहाना

समझौते के लिए पहली बातचीत का विफल होना

[1] पे० द०, १५, पत्र सं० ५८,५९,६३,८२; ३०, पत्र सं० २०७; २२, पत्र सं० ३६९। ब्रह्म०, पत्र सं०, ३३; इर्विन, २, पृ० ३०४–३०५। राजवाड़े, ६, पत्र सं० १०७ में भी इसी चढ़ाई की घटनाओं का उल्लेख है। दिसम्बर २० के बाद तथा दिसम्बर ३० (सन् १८३७) के पहिले ही यह पत्र लिखा गया होगा।

[2] पे० द०, २२, पत्र सं० ३६९ में सन्धि की इन्हीं शर्तों का उल्लेख है। समझौते की इसी बातचीत का वृत्तान्त सुन कर ही शायद नासिर जंग ने आगे न बढ़ने का निश्चय किया था। इस समझौते की शर्तें यह थीं:—

(१) मालवा का प्रान्त तथा उसपर सारा अधिकार पेशवा को दे देना।

(२) मरहठे चम्बल नदी पार न जावें।

(३) कुछ रुपया नक़द देना। (पे० द०, १५, पत्र सं०, ६३ के अनुसार निज़ाम ६५ लाख रुपया देने को तैयार था, किन्तु मरहठे ८५ लाख रुपया माँगते थे।)

बना कर निज़ाम ने भोपाल से रवाना होने का विफल प्रयत्न किया। मरहठे निज़ाम की स्वीकृति जानने का ही इन्तज़ार कर रहे थे, किन्तु निज़ाम कोई उत्तर न दे रहा था। कुछ दूर बढ़ने के बाद एकबारगी निज़ाम लौट पड़ा और भोपाल की ओर बढ़ा। तब तो अवाजी कावड़े और यशवन्तराव पवार ने पीछे से निज़ाम पर आक्रमण किया, और मरहठों तथा जाटों में लड़ाई छिड़ गई। निज़ाम ने अपनी गोलन्दाज़ सेना को आगे बढ़ने का हुक्म दिया; लगातार छः घण्टे तक वे मरहठों पर गोले चलाते रहे। इस गोलन्दाज़ी की आड़ में निज़ाम पीछे हटता गया और भोपाल के क़िले में जा घुसा। मरहठों ने अब क़िले का घेरा डाला, जिससे शाही सेना तक घास-दाना पहुँचना भी कठिन हो गया।[1]

निज़ाम को दक्षिणी भारत की परिस्थिति पूर्णतया ज्ञात न थी, एवं अब भी वह नासिर जंग से सहायता पाने की आशा लगाए बैठा था।

निज़ाम का देहली के लिए रवाना होना; जनवरी, १७३८ ई०

तोपें न होने के कारण बाजीराव क़िले की दीवालें तोड़ कर अन्दर घुसने के लिए राह न बना सका। किन्तु मरहठे लगातार जलते हुए पलीते, मशालें, बाण आदि क़िले के अन्दर फेंक रहे थे; रसद भी अब न रही; अन्त में विवश होकर निज़ाम ने मरहठों के घेरे को तोड़ने का एक और प्रयत्न किया। भोपाल और इस्लामगढ़ में भारी-भारी सामान छोड़ दिया गया। पुनः सन्धि की बात-चीत शुरू हुई। मुग़ल सेना भोपाल से दिल्ली की ओर चली, किन्तु उस असंगठित दल के लिए दिन भर में एक या डेढ़ कोस से अधिक चलना

---

[1] ब्रह्म०, पत्र सं० ३४; इर्विन, २, पृ० ३०५

असम्भव था। मरहठे मुग़ल सेना के आस-पास चक्कर लगाते थे, सेना तक रसद न पहुँचने देते थे, किन्तु फिर भी मरहठों को विशेष लाभ न हुआ। उधर मुग़ल केम्प में परिस्थिति दिन पर दिन बिगड़ती जा रही थी, अधिकाधिक नैराश्यपूर्ण हो रही थी; चावल एक रुपया सेर की दर से बिकता था, और कई बार तो इतना दाम देने पर भी सेर भर चावल तक मिलना असम्भव हो जाता था। घास बिलकुल न रही, एवं घोड़ों को भूखा ही रहना पड़ा। जनवरी ५ को मुसलमानों ने तोपें खींचने वाले बैलों को मार कर अपनी भूख मिटाई, किन्तु राजपूत तो पूर्णतया भूखे ही रहे। निज़ाम ने अब सन्धि कर लेने का दृढ़ निश्चय किया।

दुराहा सराय का समझौता; जनवरी ६, १७३८ ई०

उसने जयपुर के राजा अयामल को बुला कर उसे सैयद लश्कर ख़ाँ तथा अनवरुल्ला ख़ाँ के साथ मरहठों के डेरे भेजा। समझौते की शर्तें तय हो गईं और जनवरी ६, १७३८ ई० को अपने ही हाथ से उन शर्तों को लिख कर, निज़ाम ने मरहठों की माँगों पर स्वीकृति-सूचक अपने हस्ताक्षर भी कर दिये। इस समझौते की ख़ास-ख़ास शर्तें निम्नलिखित थीं :—

(१) सारा मालवा पेशवा को दिया जाना।

(२) नर्मदा और चम्बल के बीच के प्रदेश का पूरा अधिकार पेशवा को देना।

(३) इस समझौते का सम्राट् से अनुमोदन करवाने का निज़ाम ने वादा किया।

(४) बाजीराव के ख़र्च के लिए ५० लाख रुपया सम्राट् से दिलवाने

का प्रयत्न करने के लिए भी निज़ाम ने वादा किया। निज़ाम स्वयं द्रव्य देने को तैयार न था; इस बात का वादा उसने अवश्य किया कि यदि सम्राट् कुछ भी रुपया न देंगे तो निज़ाम अपनी परिस्थिति के अनुसार सुविधापूर्वक कुछ द्रव्य अवश्य देगा।

दुराहा सराय में इस समझौते पर निज़ाम ने हस्ताक्षर किये। यह समझौता होने पर निज़ाम ने सब राजाओं, ज़मींदारों एवं मालवा के अन्य अमीरों को पेशवा से मिलने के लिए भेजा। इस समझौते द्वारा निज़ाम ने मालवा पर मरहठों के आधिपत्य को स्वीकार किया। नाम-मात्र के अतिरिक्त अब मालवा का साम्राज्य से पूर्णतया सम्बन्ध-विच्छेद हो गया।[1]

मरहठों के साथ समझौता करने के बाद निज़ाम दिल्ली के लिए रवाना हो गया, और अप्रेल, १७३८ ई० में वह दिल्ली जा पहुँचा।[2] इस समय एक नई महान् आपत्ति के बादल उमड़ रहे थे; फारस का सम्राट्, नादिर शाह भारत पर आक्रमण करने वाला था।[3] दिल्ली में तो इस समय सब का ध्यान उत्तर-पश्चिमी ओर से होने वाले इस नए आक्रमण की

---

[1]ब्रह्म०, पत्र सं० ३५, ३६, ११६; पे० द०, १५, पृ० ८७; इर्विन, २, पृ० ३०५–६। पे० द०, १५, पत्र सं० ६६ में लिखा है कि पौष वदि १३ (जनवरी ७) को यह सन्धि हुई, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह उल्लेख बाज़ारू गप्पों के आधार पर ही किया गया है, एवं किसी भी प्रकार विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है।

[2]मिरात्-उस्-सफ़ा, पृ० ६३ ब; इर्विन, २, पृ० ३०६

[3]सियार० (पृ० ४७७) में लिखा है कि नादिर शाह के आक्रमण की इस नई एवं महान् आपत्ति का सामना करने के लिए ही पेशवा के साथ सन्धि कर निज़ाम दिल्ली को जल्दी-जल्दी लौट पड़ा। रुस्तम अली के कथनानुसार (रुस्तम० पृ०, ५४९) निज़ाम गुप्त रूप से मरहठों के साथ मिला हुआ था और उसने खुद हो कर अपनी हार स्वीकार की। किन्तु ये दोनों कथन ग़लत हैं।

ओर ही लगा हुआ था; दुराहा सराय के इस समझौते का तीन वर्ष तक सम्राट् द्वारा अनुमोदन नहीं हो सका।[1]

बाजीराव और कोटा का मामला; फ़रवरी-मार्च, १७३८ ई०

निज़ाम के रवाना हो जाने के बाद भी पेशवा भोपाल में एक पक्ष तक ठहरा रहा। जिस समय पेशवा भोपाल में निज़ाम को घेरे हुए था, उस समय निज़ाम की सहायतार्थ कोटा का महाराव दुर्जन साल हाड़ा ससैन्य भोपाल की ओर बढ़ा था; किन्तु मल्हार होलकर और यशवन्त पवार ने राह में ही रोक कर दुर्जन साल को हराया, जिससे दुर्जन साल को पीछा कोटा लौट जाना पड़ा। निज़ाम की सहायता करने का जो विफल प्रयत्न दुर्जन साल ने उस समय किया था, उसके लिए उसे दण्ड देने को पेशवा ने राणोजी सिन्धिया और मल्हार होलकर को कोटा की ओर भेजा। पेशवा ने भी उनका अनुसरण किया और राह में पड़ने वाले सारे प्रदेश को लूट-मार कर बरबाद कर दिया। जब मरहठों ने कोटा का घेरा डाला, तब तो महाराव वहाँ से भाग कर गागरोन चला गया। कोटा-निवासी कोटा की रक्षा करते रहे, परन्तु शीघ्र ही सन्धि होगई और दुर्जन साल ने फ़रवरी १०, १७३८ ई० को दस लाख रुपया देने का वादा कर मरहठों से पीछा छुड़ाया, जिसमें से ८ लाख रुपया तो नक़द दे दिया, और बाक़ी दो लाख रुपये का इक़रारनामा लिख दिया गया; परन्तु यह बक़ाया रुपया एक-दो साल

---

[1] रुस्तम अली (पृ० ५५१) लिखता है कि —"जब मुहम्मद शाह को यह सारा वृत्तान्त ज्ञात हुआ तब उसने मालवा की सूबेदारी पर बाजीराव की नियुक्ति का हुक्म भेजा"। किन्तु यह कथन भी त्रुटिपूर्ण है।

तक चुकाया नहीं गया ।[1] कोटा का मामला तय करने के बाद पेशवा अहीरवाड़ा होता हुआ दतिया और ओरछा की ओर गया (मार्च, १७३८ ई०)। अहीरवाड़े में मरहठों के एक दल ने कुरवाई के क़िले का घेरा डाला। रुस्तम अली के कथनानुसार दो मास तक घेरा लगा रहा; कुरवाई का शासक, इज़्ज़त खाँ, वीरतापूर्वक लड़ा; अन्त में सुलह होगई।[2] किन्तु इस समय पेशवा के लिए यह अत्यावश्यक होगया कि वह बसीन के मामले को स्वयं हाथ में ले, एवं उसे जल्द ही दक्षिण को लौट जाना पड़ा।

नादिर शाह का आक्रमण एवं मालवा; फ़रवरी-मई, १७३९ ई०

नादिर शाह के आक्रमण की विपत्ति किसी भी प्रकार न टली, और उत्तरी भारत को उससे पूरी हानि उठानी पड़ी। पेशवा ने भी उत्तरी भारत की ओर जाने का इरादा किया, और जब उसने सुना कि शायद अजमेर में ख़्वाजा साहिब की दरगाह पर जाने के लिए नादिर शाह देहली से अजमेर की ओर आवेगा तब तो उसने मालवा जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। बाजीराव का

[1] पे० द०, १५, पत्र सं० ६५,६८; २२, पत्र सं० १२९; ३०, पत्र सं० २९९। ब्रह्म०, पत्र सं० १३४; रुस्तम०, पृ० ५५१; इर्विन, २, पृ० ३०४; सरकार, १, पृ० २७२। वंश० (४, पृ० ३२४९) में लिखा है कि ४० दिन तक मरहठों के कोटा पर गोले बरसाने के बाद ही १० लाख रुपया उन्हें दिया। वहाँ इस घटना का पिछले साल (१७३७ ई०) में उल्लेख किया है और लिखा है कि दिल्ली पर धावा करने के बाद दक्षिण को लौटते समय पेशवा ने कोटा का घेरा डाला। किन्तु वंशभास्कर-कार के ये दोनों कथन त्रुटिपूर्ण हैं, दूसरे आधार-ग्रन्थों से इन कथनों की पुष्टि नहीं होती है।

इस समय मरहठों के साथ कोटा के महाराव का जो समझौता हुआ उसमें बालाजी यशवन्त गुलगुले का बहुत हाथ रहा था, जिसके पुरस्कार-स्वरूप महाराव ने उसे एक गाँव दिया; फ़रवरी २४, १७३८ ई० को पेशवा ने भी इसका अनुमोदन किया था। फालके, २, पत्र सं० १

[2] पे० द०, १५, पत्र सं० ६८; ब्रह्म०, पत्र सं० १३६; रुस्तम०, पृ० ५५१–२

इरादा यह था कि चम्बल के उत्तरी तीर पर ही नादिर शाह का सामना किया जावे और उसे किसी भी प्रकार मालवा में घुसने न दे। किन्तु नादिर शाह मालवा की ओर न बढ़ा; वह तो दिल्ली से ही मई ५, १७३९ ई० को सीधा फ़ारस को लौट गया। दिल्ली से रवाना होने से पहिले अप्रेल २९, १७३९ ई० को नादिर शाह ने राजा शाहू तथा बाजीराव के नाम फ़रमान भेज कर दोनों को सूचित किया कि नादिर शाह और मुहम्मद शाह के बीच सुलह हो गई थी और मुहम्मद शाह पुनः भारत का सम्राट् बन गया था, एवं उन दोनों को आदेश दिया गया कि वे सम्राट् की सेवा करें।[1] परोक्ष रूप से ही क्यों नहीं हो किन्तु मालवा पर इस आक्रमण का बहुत प्रभाव पड़ा। इस चढ़ाई के समय सारे प्रान्त भर के शहरों और कस्बों में महीनों तक व्यापारियों ने दूकानें बन्द रखीं। प्रान्त में यत्र-तत्र विद्रोह उठ खड़े हुए जिनको दबाने तथा प्रान्त में शान्ति बनाए रखने के लिए मरहठे सेनापति भेजे गए। दक्षिणी मालवा में ठहर कर पेशवा ने उत्तरी भारत की राजनैतिक परिस्थिति को देखा एवं ध्यानपूर्वक उसका पूर्ण अध्ययन किया; जुलाई में ही वह दक्षिण को लौटा।[2] मालवा के मामले पर नादिर शाह के इस आक्रमण का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि डगमगाते हुए जीर्ण-शीर्ण साम्राज्य को इस आक्रमण ने अत्यधिक विशृंखलित कर दिया; और दिल्ली में सम्राट् के प्रति प्रजा का आदर इतना अधिक घट गया कि दिल्ली में रहने वाले मरहठों के वकील ने पेशवा

---

[1] पे० द०, ३०, पत्र सं० २२२; १५, पत्र सं० ७५,८०,८३। राजवाड़े, ६, पत्र सं० १३०–१३३

[2] पे० द०, १५, पत्र सं० ८१; ३०, पत्र सं० २४९

से पूछा कि वह अब किस से बातचीत करे, सम्राट् से या निज़ाम से।[1] यद्यपि अब तक नियमानुसार मालवा साम्राज्य का ही एक अभिन्न प्रान्त बना हुआ था, किन्तु व्यवहार में तो मालवा का साम्राज्य से सम्बन्धविच्छेद एक भूतपूर्व, सिद्ध घटना हो चुकी थी। इस आक्रमण का धक्का खाने के बाद अब पेशवा की माँगों का कुछ भी विरोध करना सम्राट् के लिए असम्भव ही था।

उधर पेशवा ने अन्य मरहठे सेनापतियों के साथ समझौता कर मालवा में अपनी परिस्थिति अधिक सुदृढ़ बना ली। विभिन्न मरहठे सेनापतियों एवं पेशवा ने मुग़ल प्रान्तों को आपस में बाँट लिया और यह भी निश्चित कर लिया कि किस किस प्रदेश को कौन कौन व्यक्ति अपना कार्यक्षेत्र बनावेंगे। धार यशवन्तराव पवार को दिया गया और मालवा पेशवा के ही क्षेत्र में गिना गया। यह बँटवारा फ़रवरी, १७३९ के बाद हुआ था और राजा शाहू ने भी इसका अनुमोदन कर इसको स्थायित्व प्रदान किया।[2]

इतना सब होते हुए भी बाजीराव के जीवनकाल में सम्राट् और मरहठों के बीच मालवा के बारे में कोई भी समझौता नहीं हुआ। मई

बाजीराव की मृत्यु; मालवा की सूबेदारी पर अज़ीमुल्ला की नियुक्ति; मई, १७४० ई०

१०, १७४० ई० को बाजीराव की मृत्यु हो गई। शाही कार्यकर्ताओं ने बाजीराव की मृत्यु को एक अच्छा अवसर हाथ आया मान कर मालवा पर पुनः शाही आधिपत्य जमाने का प्रयत्न किया। निज़ाम के प्रस्ताव पर उसी के चचेरे भाई अज़ीमुल्ला को मालवा की सूबेदारी पर नियुक्त किया;

---

[1] पे० द०, १५, पत्र सं० ८०

[2] सरकार, १, पृ० ६८–९; सरकार कृत 'बिहार एण्ड उड़ीसा ड्यूरिंग दी फ़ाल ऑफ़ दी मुग़ल एम्पायर', पृ० २१

अज़ीमुल्ला पहिले भी सन् १७२३-४ ई० में निज़ाम का नायब सूबेदार रह कर मालवा पर शासन कर चुका था। अज़ीमुल्ला ने १५ हज़ार सैनिक एकत्रित कर ससैन्य मालवा जाने के लिए सम्राट् से बिदा ली। यद्यपि अज़ीमुल्ला डेरों में जा रहा, किन्तु वह देहली से रवाना न हुआ। शीघ्र ही बरसात शुरू हो गई। इस वर्ष मरहठों की सेना ने मालवा में ही पड़ाव किया था जिससे मालवा जाने का अज़ीमुल्ला को साहस न हुआ।[1]

बालाजी राव और मालवा; १७४०-४१ ई०

उधर दक्षिण में, जून २५, १७४० ई० के दिन बालाजी राव की पेशवा के पद पर नियुक्ति हुई, और इस नियुक्ति पर उसे राजा शाहू ने सिरोपाव आदि भी दिए। बालाजी राव ने अब सर्वदा के लिए मालवा के मामले को तय कर डालने का निश्चय किया। सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि—"जो काम उसका पिता डरा-धमका कर भी नहीं करा सका, उसी काम में नए पेशवा ने कूटनीति एवं चतुरता से पूर्ण सफलता प्राप्त की; यह अवश्य मानना पड़ेगा कि नादिर शाह के आक्रमण से शाही शासन में जो विश्रृंखलता आ गई थी, उससे भी बालाजी को सफलता प्राप्त करने में सहायता मिली थी।" पेशवा का विरोध करने की जो बातें दिल्ली में हो रही थीं, वे पेशवा के कान तक भी पहुँचीं; एवं दिसम्बर, १७४० ई० में पेशवा ने सिन्धिया, होलकर, विट्ठल शिवदेव, नारोशंकर, अन्ताजी माणकेश्वर तथा अन्य मरहठे सेनापतियों को आज्ञा दी कि वे उत्तरी भारत में जाकर निज़ाम तथा उसके साथियों के सारे प्रयत्नों का विरोध करें। उत्तरी भारत की ओर जाते समय मरहठों ने धार के क़िले को

---

[1] राजवाड़े, ६, पत्र सं० १४५; रुस्तम०, पृ० ५८५; डफ़, १, पृ० ४२३

हस्तगत कर लिया। मरहठों की इस सफलता का विवरण सुन कर सम्राट् बहुत ही क्रुद्ध हुआ, तथा समसम्-उद्-दौला, आज़म ख़ाँ और जयसिंह को हुक्म दिया कि वे तीनों जाकर मरहठों का सामना करें और उन्हें चम्बल नदी पार करने न दें। जयसिंह को ७,००० रुपया प्रति दिन तथा दूसरे दोनों सेनापतियों को पाँच-पाँच हज़ार प्रति दिन के हिसाब से ख़र्चा देने का भी सम्राट् ने वादा किया। समसम्-उद्-दौला ने दिल्ली से बाहर पड़ाव किया और उससे जा मिलने के लिए जयसिंह भी बढ़ा।[1]

मार्च, १७४१ ई० में पेशवा बालाजी राव भी पूना से रवाना होकर ग्वालियर जा पहुँचा। इस बात का अनुभव कर कि पेशवा का विरोध करना व्यर्थ था, जयसिंह ने सम्राट् की सेवा में निवेदन किया कि उसकी अधीनता में जो भी सेनापति थे उन सबको मरहठों के विरुद्ध लड़ने का कुछ भी अनुभव न था। जयसिंह ने पेशवा के पास अपने दूत भेज कर सन्धि के लिए बात-चीत प्रारम्भ की। जयसिंह ने पेशवा पर इस बात का ज़ोर दिया कि उसे मालवा और गुजरात के प्रान्त पाकर ही सन्तोष कर लेना चाहिए; और जयसिंह ने यह भी सलाह दी कि पेशवा के लिए यह उचित होगा कि वह साम्राज्य के दूसरे प्रान्तों में कदापि हस्तक्षेप न करने का भी वादा कर ले। पेशवा तो समस्त हिन्दुस्तान की चौथ का दावा करता था, तथापि उसने स्वीकार किया कि यदि ये दोनों प्रान्त शाही फ़रमान द्वारा उसे विधिवत्

बालाजीराव और जयसिंह; समझौते के लिए अन्तिम बातचीत

[1] सरकार, १, पृ० २७६-७; राजवाड़े, ६, पत्र सं० १४५,१४९; पे० द०, १३, पत्र सं० ४

प्रदान किए जावें तो वह जयसिंह द्वारा प्रस्तावित शर्तों पर ही सन्धि कर लेगा।

पेशवा को मालवा प्रान्त प्रदान करना; फ़रमान आदि की शर्तें; जुलाई-सितम्बर, १७४१ ई०

पेशवा द्वारा मंज़ूर हुई शर्तें स्वीकार करने के अतिरिक्त सम्राट् के लिए दूसरा कोई चारा न था। साम्राज्य का ऊपरी दिखावा बनाये रखने के उद्देश्य से ही पेशवा द्वारा सम्राट् की सेवा में प्रार्थना-पत्र पेश करवाया गया, जिसमें सम्राट् के प्रति अपनी राजभक्ति प्रगट करने के अतिरिक्त पेशवा ने सम्राट् को निवेदन किया था कि वह सम्राट् की सेवा करने के लिए उतारू था, एवं इसी उद्देश्य से आया भी था। सम्राट् की रही-सही आशंकाएँ मिटाने के लिए, सम्राट् के ही आग्रह करने पर राणोजी सिन्धिया तथा अन्य मरहठे सेनापतियों ने एक लिखित ज़मानत पेश की और उसमें उन सब सेनापतियों ने यह वादा किया कि यदि पेशवा सम्राट् के विरुद्ध राजद्रोही हो जावेगा, तो वे सारे सेनापति पेशवा का साथ छोड़ देंगे।[1] तब सम्राट् ने पेशवा को एक शाही फ़रमान लिख भेजा और उस फ़रमान द्वारा सम्राट् ने पेशवा को सूचित किया कि शाही दरबार में मरहठों के वकील महादेव भट्ट हिंगने को सब शाही आज्ञाएँ सूचित कर दी गई हैं, हिंगने जाकर स्वयं ही पेशवा को वे सब आज्ञाएँ सूचित करेगा। जुलाई ४, १७४१ ई० को एक दूसरा फ़रमान निकला जिसमें मालवा की नायब-सूबेदारी पर पेशवा को नियुक्त किया गया और

[1] मालकम, १, पृ० ९४–५; इस इक़रारनामे की सही तारीख़ मई १२, १७४१ ई० है।

नए नायब-सूबेदार पर इस बात की ताकीद की गई कि वह प्रान्त की प्रजा के हानि-लाभ का पूरा-पूरा ख़याल रखे। दो मास बाद, सितम्बर ७, १७४१ ई० को सारा मालवा प्रान्त पेशवा को प्रदान कर दिया गया, और उस प्रान्त के सब फ़ौजदारी अधिकार भी पेशवा को दिये जाकर उसे इस बात की आगाही की गई कि प्रान्त भर में शान्ति बनाए रखे, शहरों-कस्बों की रक्षा करे, यात्रियों के लिए आम रास्तों और सड़कों को निरापद बना दे, तथा वह इस बात का भी पूरा-पूरा ध्यान रखे कि प्रजा पर किसी भी प्रकार का अत्याचार या उत्पीड़न न हो। इस शाही सनद पर वज़ीर की ही मुहर लगी हुई थी। वज़ीर ने सम्राट् की सेवा में इस बात की भी सिफ़ारिश की थी कि समझौते की शर्तों के अनुसार पेशवा को पुरस्कार स्वरूप १५ लाख रुपया दिया जावे; यह रुपया तीन किश्तों में चुकाया गया।[1]

पेशवा का सम्राट् को अपना इक़रार-नामा पेश करना, १७४१ ई०

उधर पेशवा बालाजीराव ने भी सम्राट् की सेवा में एक इक़रार-नामा लिख कर पेश किया, जिसके अनुसार पेशवा ने निम्नलिखित छः बातों का वादा किया :—

(१) सम्राट् की सेवा में स्वयं उपस्थित होना।

(२) कोई भी मरहठा नर्मदा पार कर उत्तरी भारत में न आवेगा; अगर कोई घुस आवेगा तो उसकी सारी ज़िम्मेवारी पेशवा पर रहेगी।

(३) मालवा के अतिरिक्त दूसरे किसी प्रान्त में वह हस्तक्षेप न करेगा।

---

[1] बहार गुलज़ार, पृ० ३७६ अ, ३७७ अ; सरकार, १, पृ० २७७–८; पे० द०, १५, पत्र सं० ८६, पृ० ८८,८९,९७

(४) जो कुछ द्रव्य देने का वादा किया जा चुका है, उसके अतिरिक्त अधिक द्रव्य न माँगना।

(५) शाही सेना में सेवा के लिए ५०० घुड़सवारों के साथ एक मरहठे सेनापति को दिल्ली भेजना।

(६) जब कभी शाही सेना कहीं भी चढ़ाई करे तो चढ़ाई में जाने के लिए ४००० सैनिक भेजना; इससे अधिक सहायता की आवश्यकता होने पर सम्राट् उसके लिए विशेष रूप से ख़र्चा देंगे।[1]

मई १२ को पेशवा धोलपुर के पास जयसिंह से मिला, और तीन दिन बाद जयसिंह पेशवा के डेरे पर उससे मिलने के लिए गया। मई २० को बालाजी दक्षिण को लौट गया। जुलाई के प्रारम्भ में जब फ़रमान पेशवा को मिला, तब सुलह का अनुमोदन होगया एवं शान्ति स्थापित हो गई।[2]

मालवा - प्रदान का ख़ास रहस्य

इस प्रकार मालवा प्रान्त सर्वदा के लिए मुग़ल साम्राज्य से अलग होगया। सम्राट् को विवश होकर साम्राज्य का इस प्रान्त से पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद कर यह प्रान्त मरहठों को समर्पित कर देना पड़ा था, किन्तु इस बात की असलियत को छिपाने के लिए ही सम्राट् ने पेशवा को मालवा की नायब-सूबेदारी प्रदान की। पुनः जैसा कि बाद की घटनाओं से साबित होगया, इस प्रान्त का यह समर्पण पूर्ण तथा सब प्रकार से प्रतिबन्धहीन ही था। मालवा अब साम्राज्य का भाग नहीं रह गया, और साम्राज्य की दक्षिणी

---

[1] सरकार, १, पृ० २७८; पे० द०, १५, पत्र सं० ८६, पृ० ९७–८

[2] पे० द०, २१, पत्र सं० २; पुरन्दरे, १, पत्र सं० १४९; सरकार, १, पृ० २७८

सीमा अब सिकुड़ कर चम्बल के उत्तरी तट तक जा पहुँची। बंगश के लौट जाने के बाद ही प्रान्त का आन्तरिक शाही शासन पूर्णतया विशृंखलित हो गया था। मालवा पर आधिपत्य के लिए जो मुग़ल-मरहठा द्वन्द चल रहा था वह एक प्रकार से दुराहा सराय के समझौते के बाद ही समाप्त हो गया था, किन्तु उसकी पूर्णाहुति तो सन् १७४१ ई० में ही हुई। अब मालवा पर मरहठों का आधिपत्य स्वीकार ही नहीं किया गया, किन्तु नियमानुसार विधिवत् उसकी घोषणा भी हुई। सन् १७४१ ई० से मालवा के इतिहास में एक नवीन युग का प्रारम्भ होता है।

मालवा में मुग़ल सेना मरहठों का सामना न कर सकी; शाही सेना पूर्णतया विफल हुई, और उनकी इस विफलता के अनेक कारण थे। मुग़ल-

मालवा में मुग़लों की विफलता के कारण

साम्राज्य के प्रधान व्यक्ति, सम्राट् एवं वज़ीर दोनों ही निकम्मे तथा विलासी थे। वे दोनों ही साम्राज्य के शासन की ओर यों ही ध्यान न देते थे, किन्तु विशेषतया जब मालवा प्रान्त की शासन-सम्बन्धी कोई छोटी से छोटी बात भी उनके सम्मुख उपस्थित होती थी तब तो वे उस ओर से केवल जी ही नहीं चुराते थे किन्तु तब उनकी वह बेफ़िक्री उपेक्षा की हद तक भी पहुँच जाती थी। इस मुग़ल-मरहठा द्वन्द काल में शाही दरबार का यह एक नियम-सा हो गया था कि जब-जब मालवा पर मरहठों के आक्रमण की सूचना दिल्ली पहुँचती थी, तब-तब सम्राट् का ध्यान किसी दूसरी ओर लगाए रखने के लिए सम्राट् को दिल्ली के विभिन्न बाग़ों में घूमने के लिए या शिकार के लिए किसी जंगल में भेज देते थे। वज़ीर भी दिल्ली से १२ मील दूर एक गाँव में स्थित अपने प्रासाद में चला

जाता था, तथा वहीं राग-रंग में ही अपना समय बिताता था; और उधर दिल्ली में साम्राज्य का सारा कार्य स्थगित हो जाता था।[१] प्रान्त के शाही कर्मचारियों को दिल्ली से कुछ भी सहायता नहीं मिलती थी, एवं वे आक्रमणकारियों का सामना नहीं कर सकते थे। मालवा प्रान्त की इस प्रचण्ड उपद्रवपूर्ण परिस्थिति के कारण प्रान्तीय आमदनी बहुत ही घट गई थी, और उस घटी हुई आमदनी में प्रान्त के सूबेदार के लिए अपनी पद मर्यादा बनाए रखना भी कठिन हो जाता था; आक्रमणकारियों को प्रान्त में न घुसने देने के लिए उसी आमदनी से एक सुसज्जित प्रान्तीय सेना रखना तो पूर्णतया एक असम्भव बात थी। प्रान्तीय सूबेदार को आर्थिक सहायता की बहुत आवश्यकता होती थी; परन्तु उधर दिल्ली के शाही ख़ज़ाने में द्रव्य की कमी थी, जिससे सम्राट् तथा वज़ीर कुछ भी द्रव्य नहीं भेज सकते थे। जब-जब किसी भी सूबेदार ने प्रान्त में स्थित जागीरों आदि में हस्तक्षेप करने का प्रयत्न किया, तब-तब उसको दिल्ली से फटकारें मिलीं, और एकाध बार तो इसी प्रकार के हस्तक्षेप ही के कारण उस सूबेदार को पदच्युत भी कर दिया गया। सारा मालवा जागीरों, ज़मीदारियों आदि में बँटा हुआ था, और मालवा के सूबेदार के लिए प्रान्त में कोई भी स्थान न था। अपनी जागीर से लगान वसूल करने के अतिरिक्त उन जागीरदारों को अपनी जागीर से विशेष मतलब न था। इन जागीरदारों के स्थानीय कार्यकर्ताओं तथा प्रान्त के विभिन्न ज़मींदारों और राजाओं का तो मरहठे आक्रमणकारियों से मेल बनाए रखने में ही लाभ था। इससे उनकी ज़मींदारियों या राज्यों में किसी भी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होती थी;

---

[१] वारिद, पृ० १२१–३; इर्विन, २, पृ० २७८–२७९; सरकार, १, पृ० १२

और जब कभी बहुत बड़ी आवश्यकता पड़ने पर ये ज़मींदार या राजा आक्रमणकारियों को अपने यहाँ आश्रय भी दे देते थे तब तो उन ज़मींदारों या राजाओं को बहुत कुछ लाभ हो जाता था। प्रान्त में शाही सत्ता के निर्बल हो जाने से अपना निजी स्वार्थ सध सकेगा, यही विश्वास कर जयसिंह ने मालवा के ज़मींदारों और राजाओं की इस प्रवृत्ति को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। जो ज़मींदार या राजा तब भी मुग़ल साम्राज्य के राजभक्त बने हुए थे, वे इतने शक्तिशाली न थे कि मरहठों के इस उमड़ते हुए प्रवाह का सामना कर सकें। इस प्रकार प्रान्त में मरहठों के विरुद्ध किसी भी प्रकार का विरोध नहीं रह गया। पुनः सन् १७३२-३३ ई० से लेकर सन् १७३७-३८ ई० तक शाही सेना ने मरहठों के विरुद्ध मालवा पर जितनी भी चढ़ाइयाँ कीं उनसे यह स्पष्टरूपेण साबित है कि सब शाही सेनापति पूर्णतया अयोग्य और निकम्मे थे, और शाही सेना भी इतनी असंगठित तथा अस्त-व्यस्त थी कि उस सेना के लिए तेज़ी के साथ दृढ़तापूर्वक युद्ध करना या तत्परता के साथ सोत्साह प्रयत्न करना बिलकुल ही असम्भव था। शाही राजनीतिज्ञों तथा सेनापतियों में भी आपसी फूट थी, और उनका यह पारस्परिक विरोध सब को ज्ञात भी था। शाही नीति पूर्णतया अनिश्चित तथा अस्पष्ट थी; सम्राट् भी बारंबार अपने विचार एवं मत बदला करते थे, जिससे षड्यन्त्र रचकर अपना स्वार्थ साधने वाले व्यक्तियों को अपना मनोरथ पूरा करने के लिए बहुत से सुयोग मिल जाते थे। इसके विपरीत मरहठों की सेनाएँ बड़ी ही फुर्ती के साथ बढ़ती थीं, और मरहठे सेनापति तथा राजनीतिज्ञ बड़ी ही सरलता के साथ अपने शाही प्रतिद्वन्दियों को नीचा दिखा सकते थे। पुनः उधर मालवा में जहाँ शाही शासन विशृंखलित

होता जा रहा था, वहीं मरहठों का आधिपत्य बढ़ता जाता था एवं अधिकाधिक सुदृढ़ भी हो रहा था। कई मरहठे सेनापतियों को मालवा के परगनों की चौथ आदि करों का बँटवारे में कुछ हिस्सा भी मिल गया था, जिससे वे सेनापति भी मालवा में मरहठों का आधिपत्य बनाए रखने के लिए उत्सुक होगए। बाद के बँटवारों में उन सेनापतियों को अधिकाधिक भाग मिलता गया, कुछ को उस प्रान्त के परगने भी दे दिए गए, और दूसरों को प्रान्त की आमदनी में से एक निश्चित हिस्सा मिला; इस प्रकार उन सब सेनापतियों का इस प्रान्त के साथ स्थायी सम्बन्ध स्थापित होगया। इन बँटवारों से ही मालवा के आधुनिक मरहठे राज्यों की नींव पड़ी; कुछ इने-गिने गाँवों पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर या मालवा के किसी स्थान को अपना केन्द्र स्थान बना कर ही उन सेनापतियों ने उन राज्यों की स्थापना की। समय के साथ उन केन्द्रों को लेकर एकीकरण के अतिरिक्त, इन राज्यों का विस्तार भी बढ़ता गया, और अनुकूल अवसर आने पर घनीभूत होकर उनका आधुनिक स्वरूप बन गया।

५. आधुनिक मालवा का विकास
(१७३०-१७४१)

आधुनिक मालवा के विकास में यह युग (१७३०-१७४१ ई०) बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। इस प्रान्त की राजनैतिक परिस्थिति में एकबारगी क्रान्ति हो जाती है और प्रान्त में कई नवीन प्रवृत्तियाँ घर कर लेती हैं। तीन विशिष्ट बातों से इस क्रान्ति का प्रारम्भ देख पड़ता है। सर्व प्रथम तो इसी युग में मालवा के आधुनिक मरहठे

मालवा की प्रान्तीय राजनीति में नई बातें

राज्यों की नींव पड़ी, और छोटे-मोटे तुच्छ अधिकारों या बँटवारों से ही उन राज्यों का प्रारम्भ हुआ। दूसरे, इस युग में प्रान्त का शाही शासन पूर्णतया विश्रृंखलित होगया, जिसके परिणाम-स्वरूप एक ओर नवीन राज्यों की स्थापना हुई या कई सद्यः स्थापित राज्यों का पूर्ण विकास हुआ, तथा दूसरी ओर मुग़ल साम्राज्य का आश्रय खोकर कुछ राज्यों की परिस्थिति बिगड़ने लगी और दूसरों की अपेक्षा उनकी सत्ता घट गई। तीसरे, मालवा के राज्यों का मरहठों के साथ सम्बन्ध स्थापित हो गया, और कुछ राज्यों को आक्रमणकारियों के भारी दबाव का बहुत कुछ अनुभव भी हो गया। नियमानुसार विधिवत् शाही फ़रमान द्वारा मालवा पर अधिकार प्राप्त होने पर मरहठों की परिस्थिति में और भी अधिक परिवर्तन होने वाला था।

मालवा में मरहठे राज्यों का प्रारम्भ

नागर भाइयों पर अमझरा के युद्धक्षेत्र में प्रथम महान विजय प्राप्त करने के बाद से ही पेशवा ने मालवा प्रान्त के विभिन्न परगनों के चौथ आदि कर अपने विशिष्ट मरहठे सेनापतियों में ही बाँट कर उनके द्वारा उस प्रान्त पर अपना अधिकार बढ़ाते जाने की नीति अंगीकार की थी। सन् १७२९ ई० में मालवा प्रान्त से प्राप्त चौथ आदि का कुछ हिस्सा अपने लिए एवं अपने भाई चिमाजी के लिए सुरक्षित रख कर बाकी सब उदाजी पवार तथा मल्हार होलकर में बाँट दिया था। बंगश के आगरा लौट जाने के बाद तो मुग़ल-मरहठा द्वन्द मालवा की उत्तरी सीमा पर रामपुरा से लेकर बुन्देलखण्ड तक के प्रदेश में ही चलता रहा, जिससे मालवा का दक्षिणी तथा मध्य भाग मरहठों के ही भरोसे रह

गया। मरहठे राजनीतिज्ञ ऐसा अच्छा अवसर छोड़ने को तैयार न थे। राज्य बढ़ाने के लिए मरहठों ने इस बार भी जागीर प्रथा का ही उपयोग किया, और उसी प्रयोग के फल-स्वरूप मालवा में आधुनिक मरहठे राज्यों की नींव पड़ी।

जब उदाजी पवार मालवा के मामले से हट गए तब इस प्रान्त में मल्हार होलकर के अतिरिक्त कोई दूसरा महत्त्वपूर्ण सेनापति न रहा, एवं

सन् १७३१ ई० का बँटवारा

आक्टोबर ३, १७३० ई० के दिन होलकर को मालवा के ७४ परगनों का सरंजाम तथा उन परगनों सम्बन्धी अन्य सब अधिकार दिए गए। एक बरस बाद, पेशवा ने प्रान्त के शासन-कार्य में सिन्धिया को भी होलकर का सहयोगी बना दिया। बड़ी ही तेज़ी के साथ राणोजी सिन्धिया बढ़ता गया, और सन् १७३१ ई० में उसे भी मालवा प्रान्त में होलकर के समान अधिकार एवं पद प्राप्त हो गए। दिसम्बर २०, सन् १७३१ ई० के समझौते में चौथ आदि करों से प्राप्त द्रव्य का पेशवा ने इस प्रकार बँटवारा किया—

	प्रति सैकड़ा विभाग
पेशवा	८.५
होलकर	३५.०
सिन्धिया	३५.०
पवार	२१.५

यद्यपि प्रान्त की आमदनी में से कुछ हिस्सा पवारों के लिए रखा गया था, किन्तु उस विभाग में से उन्हें कुछ भी नहीं मिलता था। कुछ

काल तक तो उन्हें प्रान्त की सम्मिलित आमदनी में से ही निश्चित द्रव्य दिया जाने वाला था। आनन्दराव पवार के साथ जो समझौता हुआ था, वह आगामी वर्ष (सन् १७३२-३ ई०) से ही कार्यरूप में परिणत होने वाला था। तुकोजी और जिवाजी पवार भी आक्टोबर २२ को मालवा के मामले से सम्बद्ध कर दिए गए थे, एवं पवारों के लिए जो २१·५% विभाग सुरक्षित रखा था, उसमें ७% भाग इन दोनों भाइयों को दिया जाना निश्चित हुआ; इन दोनों भाइयों को कोई भी परगना नहीं दिया गया, किन्तु सारे प्रान्त की सम्मिलित आमदनी में से ही इतना हिस्सा देने का तय हुआ। नवम्बर २, १७३१ ई० को मालवा प्रान्त का सारा शासन एवं पूरा कामकाज सिन्धिया और होलकर के सिपुर्द कर दिया गया, एवं पेशवा की ओर से यह अधिकार काम में लाने के लिए पेशवा ने अपनी मुहर भी उन दोनों को दे दी; यह निश्चित किया गया कि दोनों सम्मिलित रह कर ही यह कार्य सम्हालेंगे।[1] सन् १७३१ ई० तक सब महत्त्वपूर्ण मरहठा घराने मालवा में जा पहुँचे थे, और अब प्रत्येक के उत्थान का विवरण पृथक्-पृथक् दिया जाता है।

मालवा में होलकर

सन् १७३१ ई० में पेशवा ने सिन्धिया को होलकर का सहयोगी बना दिया, एवं उसे भी होलकर के बराबर अधिकार दे दिए गए, तथापि पेशवा होलकर का विशेष रूपेण बर्ताव करता ही रहा। सन् १७३१ ई० में भी उसे सिन्धिया से ज़्यादा हिस्सा मिला था, और मालवा से बाहर के प्रदेशों में उसे कहीं

---

[1] पे० द०, १३, पत्र सं० ५४,५६; १४, पत्र सं० ५८; २२, पत्र सं० ५०,५५; ३०, पृ० ३००–१, ३०४–३०६,३०६–३०७

अधिक परगने दिए गए। प्रारम्भ में तो छोटे-मोटे हेर-फेर के बाद होलकर के निजी परगनों की भी प्रति वर्ष नई सनद दी जाती थी। किन्तु जनवरी २०, १७३४ ई० को होलकर घराने को चिरकाल के लिए वंशपरम्परागत कुछ परगने दे कर पेशवा ने होलकर को विशेष सम्मान प्रदान किया। इस प्रकार दक्षिण में कुछ ज़मीन देने के अतिरिक्त, पेशवा ने मालवा में भी होलकर को महेश्वर का परगना तथा इन्दौर के परगने में से ६ गाँव

होलकर घराने की ख़ासगी जागीर मिलना: जनवरी २०, १७३४ ई०

(हरसोल, सावेर, बाड़लोई, देपालपुर, हाटोद, महिदपुर, जगोती, करंज, और माकडोन) दिए। यह जागीर होलकर की "ख़ासगी की जागीर" कहलाती थी, और इसकी आमदनी प्रति वर्ष रु० २, ६३,००० होती थी; होलकर के सरंजाम में यह आमदनी जोड़ी नहीं जाती थी। इसी "ख़ासगी जागीर" के दिये जाने के दिन से ही वर्तमान इन्दौर राज्य की स्थापना होती है। ख़ासगी की इस जागीर के अतिरिक्त, और भी परगने होलकर के अधिकार में थे जो उसके सरंजाम के अन्तर्गत आते थे; ये सब परगने "दौलत शाही परगने" कहलाते थे और उनके बदले में होलकर को राज्य-प्रबन्ध का भार तथा सेना रख कर उसका सारा ख़र्च उठाना आवश्यक होता था। इन दौलत शाही परगनों की नई सनद आदि प्रति वर्ष या कुछ अधिक काल के अन्तर से हमेशा दी जाती थी। मालवा प्रान्त के शासन का जो कार्य होलकर को सन् १७३१ ई० में सौंपा गया था, वह सन् १७६६ ई० में उसकी मृत्यु तक उसी के ज़िम्मे रहा।[१]

---

[१] पे० द०, ३०, पृ० ३०५; २२, पत्र सं० ८२। भागवत्, पूर्व०, १, पत्र सं०

मालवा में सिन्धिया का बहुत ही जल्दी-जल्दी उत्थान हुआ। ज्यों-ही उदाजी पवार का मालवा प्रान्त के शासन से सम्बन्ध-विच्छेद हुआ,

मालवा में राणोजी सिन्धिया

पेशवा को यह अत्यावश्यक प्रतीत हुआ कि अकेले होलकर को ही यह सारा कार्य भार देना अनुचित होगा, एवं उसने होलकर के साथ ही साथ राणोजी सिन्धिया को भी मालवा का संयुक्त शासक बना दिया।[1] राणोजी को भी प्रान्त की आमदनी में से एक निश्चित हिस्सा मिल गया, किन्तु उसे भी होलकर के समान मालवा में कोई निजी खासगी की जागीर या ज़मीन मिली हो ऐसा ज्ञात नहीं होता। सन् १७३५ ई० में सिन्धिया ने उज्जैन को ही उत्तरी भारत में अपने पड़ाव का एक-मात्र स्थान बना लिया था।[2]

धार के पवार

ज्यों ही उदाजी पवार मालवा के कार्य से अलग हुए मालवा में पवारों का महत्त्व घट गया। पेशवा की कही हुई शर्तें स्वीकार कर आनन्दराव ने कुछ स्थिति अवश्य सुधारी और सन् १७३२-३ ई० से उसे भी मालवा में सरंजाम

२-३। दक्षिण में चाँदवड़ परगने में से होलकर को खासगी की जागीर दी गई थी; दक्षिण की इस जागीर की वार्षिक आमदनी रु० ३६,०१०-१०-० के लगभग हो जाया करती थी।

[1] 'होलकरांची कैफियत' के अनुसार होलकर की ही मदद तथा प्रेरणा से राणोजी का उत्थान हुआ (पृ० ८-९)। किन्तु यह कथन सर्वथा एकपक्षीय जान पड़ता है। मालवा में नियुक्ति होने से पहिले भी राणोजी कुछ महत्त्व प्राप्त कर चुके थे (पे० द०, १३, पत्र सं० ५०; ३०, पत्र सं० २८)। मालवा में उसकी नियुक्ति केवल पेशवा ने ही की होगी; पेशवा कभी भी यह नहीं चाहता था कि सारे प्रान्त का शासन एक ही व्यक्ति, केवल मल्हार होलकर, के हाथ में रहे।

[2] पे० द०, १४, पत्र सं० २९

मिला। किन्तु अपने भाई के समय से ही आनन्दराव का मालवा के कार्य से सम्बन्ध रहा था। सन् १७३२ ई० के सरंजाम में उसे नालछा, बदनावर, धरमपुरी, बकानेर, सावेर, ताल, ख़ैराबाद के परगनों के अतिरिक्त और भी कुछ प्रदेश मिला। बाँसवाड़ा और डूँगरपुर राज्यों के टाँकों का कुछ हिस्सा भी उसको दिया गया। यह कहा जा सकता है कि सन् १७३३ ई० में ही धार राज्य की स्थापना हुई; सन् १७३५ ई० में सरंजाम की जब नई सनद दी गई तब उसी साल प्रथम बार आनन्दराव को धार का शहर तथा परगना मिला था। जून, १७३६ ई० में आनन्दराव की मृत्यु होने पर उसके पुत्र यशवन्तराव पवार को उसके पिता का सारा सरंजाम दे दिया गया (अगस्त, १७३६ ई०)।[1]

देवास के पवार

तुकोजी और जिवाजी पवार, आनन्दराव पवार के ही चचेरे भाई थे। जब सन् १७३१ ई० में उन दोनों भाइयों की भी मालवा में नियुक्ति हुई तब उन्हें प्रान्त की सारी आमदनी का ७% हिस्सा, मरहठों के ख़जाने से दिया जाना निश्चित हुआ। तीन वर्ष बाद उन्हें उनका निजी सरंजाम मिला, और अगस्त १७, १७३५ ई० को उसकी नई सनद भी दी गई। इस प्रकार इन दोनों भाइयों के संयुक्त अधिकार में देवास, सारंगपुर, बागोद, और इंगनोद के परगने, एवं बाँसवाड़ा और डूँगरपुर राज्यों का बाकी रहा टाँका दिया गया। इसी सनद के दिये जाने के दिन से ही देवास के

[1] पे० द०, १३, पत्र सं० ५४–५६; १४, पत्र सं० ४८; २२, पत्र सं० ५४, ३३१; ३०, पत्र सं० ३२०। अठले, धार०, पत्र सं० २८,२९,३१,३३,३४। अगस्त, १७३२ ई० में आनन्दराव एवं उदाजी पवार का अन्तिम बँटवारा हुआ था।

वर्तमान राज्यों की नींव पड़ी। दोनों भाइयों का साथ-साथ संयुक्त काम चलता था, एवं उनको संयुक्त सरंजाम मिला, जिसका परिणाम यह हुआ कि एक ही स्थान में दो विभिन्न राजघरानों की स्थापना हुई।[1]

मालवा के प्रान्तीय शाही शासन का विशृंखलित होना; उसके परिणाम

सन् १७३२ ई० में मालवा से बंगश के लौट जाने पर जब प्रान्त का शाही शासन विशृंखलित हो गया तब ही इन मरहठा राज्यों की स्थापना हो सकी। इन सब मरहठा राज्यों की नींव दक्षिणी मालवा में ही पड़ी, जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मालवा के दक्षिणी भाग में ही उनका अधिकार अधिक सुदृढ़ था। मुग़ल-मरहठा द्वन्द्व के इस उत्तर युग में मालवा में किसी भी प्रकार की कोई भी शासन-व्यवस्था नहीं रह गई थी। मरहठे भी मुग़ल सेनाओं का सामना करने तथा उत्तर की ओर बढ़ने में ही लगे हुए थे, एवं मालवा पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए मरहठों ने जितने भी प्रयत्न किए वे अनियमित ही थे; और अपने उन सब प्रयत्नों में उन्होंने इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा कि उनके परिणाम-स्वरूप प्रान्त में अल्पतम विरोध उत्पन्न हो। मरहठों को विशेषतया एक ही बात की चिन्ता रहती थी कि किसी भी प्रकार इस प्रान्त से लगान, टाँका एवं चौथ आदि कर वसूल कर लिये जावें। उत्तरी भारत पर चढ़ाई करने वाली सेनाएँ प्रतिवर्ष मालवा में होकर गुज़रती थीं, और मालवा में उन सेनाओं की उपस्थिति के कारण ही मरहठों के

---

[1] पे० द०, १३, पत्र सं० ५५; २२, पत्र सं० ५७, ८७; ३०, पत्र सं० ३०६, ३०७, ३१९

कारिन्दे प्रान्त में लगान एवं अन्य कर आदि वसूल कर पाते थे। इन कारिन्दों की नियुक्ति पेशवा ही करता था; पेशवा की ओर से उन्हें हिदायत होती थी कि वे विशिष्ट सेनापति की अधीनता में उसी की आज्ञानुसार किसी ख़ास परगने में काम करते रहें। इस प्रकार पेशवा अपने सेनापतियों के हिसाब तथा उनकी गति-विधि पर आँख रखने, एवं उन्हें नियन्त्रित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करता था। मरहठे इस बात का पूरा-पूरा ख़याल रखते थे कि उनके कारिन्दे तथा कार्यकर्ता किसी भी प्रकार से आम प्रजा पर अत्याचार न करें; उन्होंने विभिन्न ज़मींदारों को भी इस बात का आदेश दिया कि जितनी ज़्यादा हो सके उतनी ज़मीन बोई जावे।[1] इतने वर्षों में केवल एक ही साल, सन् १७३६ ई० की वर्षा-ऋतु में, जब सम्राट् ने पेशवा को मालवा में जयसिंह का नायब-सूबेदार नियुक्त किया था, तब ही मरहठों की सेना ने मालवा में पड़ाव किया।

विभिन्न राज्यों का सुदृढ़ होना; उनकी शक्ति तथा राजनैतिक पद की वृद्धि

प्रान्त का शाही शासन-संगठन पूर्णतया विश्रृंखलित होगया, जिससे मरहठों का आधिपत्य ही अधिक सुदृढ़ नहीं हो गया किन्तु साथ ही इसका एक दूसरा परिणाम यह भी हुआ कि इस प्रान्त के विभिन्न ज़मींदारों एवं राजाओं की शक्ति भी बहुत बढ़ गई एवं उनकी राजनैतिक स्थिति अधिक सुदृढ़ होगयी। उन जमींदारों एवं राजाओं को अपनी ओर मिलाने के लिए तथा अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए मरहठों ने यही अधिक उपयुक्त समझा कि, यदि ये राजा या ज़मींदार मरहठों को अपना मित्र मान कर

---

[1] राजवाड़े, ६, पत्र सं० ६२०; अ० म० द०, पत्र सं० १५१,१५३,१५४,१६१

उन्हें अपने राज्य या ज़मींदारी की चौथ तथा अन्य कर देना स्वीकार कर लें तो वह ज़मीन, वे राज्य या परगने उन्हीं के अधिकार में रहने दिए जावें। इसी कारण नन्दलाल मण्डलोई की मृत्यु के बाद उसके स्थान पर उसी के पुत्र को नियुक्त कर दिया।[1] जिन-जिन राजाओं ने मरहठों की माँगें स्वीकार कर लीं, उन्हें उन उन राज्यों का अधिपति तथा शासक मान लेने में भी मरहठे न हिचके। इस प्रकार इस द्वन्दकाल में इन राजाओं तथा ज़मींदारों को अपनी परिस्थिति सुधारने, अपना शासन अधिक सुदृढ़ करने तथा अपनी राजनैतिक पद-मर्यादा बढ़ाने का पर्याप्त अवसर मिल गया। प्रान्तीय मुग़ल शासन के विशृंखलित होते ही इन ज़मींदारों तथा राजाओं पर शासन करने वाला कोई न रहा; अपने राज्यों एवं ज़मींदारियों के वे ही एक मात्र स्वामी रह गए और अब इन शासकों ने वे अधिकार भी हड़प लिए जो अब तक कभी भी उन्हें प्राप्त न हुए थे; इस प्रकार फ़ौजदारी अधिकारों को भी प्राप्त कर, कई एक छोटे-छोटे राज्य तथा ज़मींदारियाँ भी सर्वाधिकारपूर्ण स्वतन्त्र राज्य बन बैठे। इस युग में मालवा अनेकानेक छोटे-मोटे स्वतन्त्र राज्यों में बँट गया, इन राज्यों में किसी भी प्रकार की एकता न थी, जिससे मरहठों का कार्य बहुत सरल और साथ ही साथ बहुत कठिन भी हो गया। इन राज्यों में एकता न थी और न उनमें कोई राज्य ही ऐसा शक्तिशाली था कि मरहठों का सामना कर सके, एवं मरहठों ने उन सब राज्यों पर अपना आदेशकारी प्रभाव स्थापित कर लिया; किन्तु साथ ही उनके लिए यह आवश्यक होगया कि वे प्रत्येक राज्य का मामला व्यक्तिगतरूपेण अलग अलग तय करें।

---

[1] राजवाड़े, ६, पत्र सं० ६१३, ६१४, ६०७

मुग़ल-मरहठा द्वन्द के परिणाम के साथ ही साथ विभिन्न राज्यों से मरहठों के सम्बन्ध भी बदलते गए। देशकाल के साथ उनमें परिवर्तन होता गया। प्रान्त के आन्तरिक मामले बहुत ही थोड़े थे और प्रान्त पर होने वाली मरहठों की चढ़ाइयों के साथ उनका बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध था, एवं उनका पृथक रूप से वर्णन करना कठिन ही नहीं असम्भव भी हो जाता है।

मरहठों की चढ़ाइयाँ एवं मालवा के राज्य; दक्षिणी मालवा

दक्षिणी मालवा पर मरहठों का आधिपत्य बहुत ही सुदृढ़ हो गया था। उनके प्रारम्भिक आक्रमणों के समय से ही, और विशेषतया अमभरा के युद्ध के बाद, मरहठों ने अमभरा, भाबुआ और बड़वानी के राज्यों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। भाबुआ के राजा अनूपसिंह की मृत्यु के उपरान्त जन्मे हुए उसी के पुत्र राजा शिवसिंह की अल्पवयस्कता से लाभ उठा कर मरहठों ने उस राज्य का शासन अपने हाथ में ले लिया, होलकर द्वारा नियुक्त मरहठे कार्यकर्ता इस राज्य पर शासन करते थे। सैलाने का जयसिंह भाबुआ पर आक्रमण कर उस राज्य के परगनों को अपने राज्य में मिला लेने के लिए सर्वदा तत्पर रहता था, एवं भाबुआ राज्य के हितेच्छुओं को भी विवश होकर मरहठों की सहायता लेनी पड़ी।[1] अमभरा में गृह-युद्ध चलता रहा, आपसी भगड़ों तथा मरहठों के आक्रमण के कारण वहाँ का शासन बहुत ही अस्त-व्यस्त होगया था और मरहठों की चौथ भी नियमित रूप से चुकाई न जाती थी, जिससे मरहठों को वहाँ के शासन में हस्तक्षेप करने का अवसर मिल गया; अमभरा का

[1] झाबुआ गजे०, पृ० ४

शासन प्रबन्ध भी मरहठे कार्यकर्ताओं के हाथ में चला गया।[1] बड़वानी के राजा मोहनसिंह के शासन काल के अन्तिम वर्ष सुख से न बीते, और उसको भी मरहठों के हस्तक्षेप का सामना करना पड़ा; नागुलवण्डी और ब्राह्मणगाँव के परगने मोहनसिंह के पास से मरहठों ने छीन लिए। मार्च, १७३१ ई० में निज़ाम ने बड़वानी राज्य पर चढ़ाई की और वह राजौर का क़िला हस्तगत कर लेता, किन्तु उसी समय निज़ाम को दक्षिण लौट जाना पड़ा। मोहनसिंह ने अब राज्यगद्दी छोड़ दी और अपने दूसरे पुत्र अनूपसिंह को राज्यगद्दी पर बैठाया, जिससे बड़वानी में भी गृह-कलह प्रारम्भ हो गया। मोहनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र माधोसिंह ने पेशवा के विरोधी सेनापति, उदाजी पवार एवं कण्ठाजी कदम बान्दे को अपने पक्ष में कर लिया, और इन दोनों मरहठे सेनापतियों ने बड़वानी राज्य में बहुत लूट-खसोट की। पेशवा ने अनूपसिंह एवं उसी के छोटे भाई पहाड़सिंह का पक्ष लिया, उन्हें सहायता दी, और इस प्रकार उस राज्य पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।[2]

मालवा के प्रान्तीय शासन के विशृंखलित होने से भोपाल के सद्यः स्थापित मुसलमानी राज्य को बहुत लाभ हुआ। इस समय दोस्त मुहम्मद ख़ाँ का पुत्र, यार मुहम्मद ख़ाँ, भोपाल पर राज्य कर रहा था। अब उसकी राह में कोई बाधा न रही और यार मुहम्मद ख़ाँ अपने राज्य की सीमा बढ़ाने तथा अपने शासन को अधिक सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न करने

---

[1] अ० स० द०, पत्र सं० १७३

[2] बड़वानी गज़े०, पृ० ४–५; वाड़, १, पत्र सं० २०२,२०३; ख़जिस्ता०; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३१५

लगा। रुस्तम अली लिखता है कि—"(यार मुहम्मद ख़ाँ ने) न्यायपूर्ण शासन किया, बहुत से विद्रोही सरदारों और राजाओं को दबाया, तथा चतुरता पूर्ण प्रयत्नों से उसने सिरोंज से लेकर नर्मदा नदी के उत्तर तीर तक के सारे प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया।"[1] यद्यपि कई बार यार मुहम्मद ख़ाँ ने मरहठों से मेल कर उन्हें चौथ आदि देना स्वीकार भी किया तथापि कभी-कभी वह सम्राट् की ओर से भी लड़ता था। भोपाल के युद्ध में उसने निज़ाम की सहायता की थी, एवं प्रसन्न होकर सम्राट् ने यार मुहम्मद ख़ाँ को पाँच हज़ारी एवं पाँच हज़ार घुड़सवारों का मन्सब तथा माही मरातिब प्रदान किये।[2] यार मुहम्मद ख़ाँ के शासन-काल के प्रारम्भिक वर्षों में दोस्त मुहम्मद ख़ाँ का बड़ा भाई, आक़िल मुहम्मद ख़ाँ इस राज्य का प्रधान मन्त्री था; उसकी मृत्यु के बाद विजयराम नामक एक हिन्दू को वह पद मिला। यार मुहम्मद ख़ाँ तथा विजयराम ने इस्लामनगर में अनेकानेक सुन्दर महल बनवाए।[3] यार मुहम्मद ख़ाँ ने इस बात का पूरा-पूरा प्रयत्न किया कि उसके राज्य में लूट-खसोट न हो। अपने राज्य में मरहठों को न घुसने देने के उद्देश्य से ही उसने कई बार मरहठों से मेल कर उन्हें चौथ आदि देना भी स्वीकार कर लिया।[4]

अन्य राज्यों के साथ मरहठों का सम्बन्ध समय-समय पर बदलता जाता था। जब बंगश मरहठों के विरुद्ध चढ़ाई कर मालवा में (सन्

[1] रुस्तम०, पृ० ५५७

[2] रुस्तम०, पृ० ५५८

[3] मालकम, १, पृ० ३५६–७; ताज०, पृ० ७–८

[4] रुस्तम०, पृ० ५५७–८; पे० द०, १५, पत्र सं० ४५

१७३०-३२ ई०) आया था, उस समय इस प्रान्त के राजाओं ने उसे बहुत ही कम मदद दी और जो कुछ भी सहायता दी थी वह भी बहुत ही बेदिली से की गई थी।

मरहठे तथा अन्य राजा एवं ज़मींदार

मरहठों के नर्मदा पार करते ही मालवा के कई ज़मींदारों ने उनके पास अपने कारिन्दे भेज दिए, चौथ आदि कर की रकम नियत करवा ली, तथा मरहठे सेनापतियों के साथ पगड़ियाँ अदल-बदल कर दोस्ती या भाई-चारे का व्यवहार स्थापित कर लिया। जब जयसिंह मालवा का सूबेदार नियुक्त हुआ तब सन् १७३२-३ ई० में भी उसका पक्ष लेकर शाही सेना की ओर से लड़ने के लिए मालवा के बहुत ही थोड़े राजा या ज़मींदार आए। बाद के जितने भी युद्ध हुए वे सब मालवा की उत्तरी सीमा पर हुए थे। सन् १७३७-८ ई० में जब निज़ाम ने सेना लेकर मालवा पर चढ़ाई की और जब वह भोपाल की ओर बढ़ा, उस समय भी मालवा के राजाओं तथा ज़मींदारों को शाही सेना की सहायतार्थ बुलाया गया था। किन्तु निज़ाम की पराजय हुई और उसके साथ ही जिन-जिन राजाओं ने उसका साथ दिया था, उनके भाग्य का भी निपटारा हो गया; और जो सहायता उन्होंने मरहठों के विरुद्ध निज़ाम को दी थी, उसके लिए आक्रमणकारियों ने उनसे जी भर कर बदला लिया। भोपाल में विजय होते ही पेशवा ने कोटा पर चढ़ाई कर दी। भोपाल के रुहेला यार मुहम्मद ख़ाँ का भी रुख़ समय-समय पर बदलता था, किन्तु प्रायः प्रत्येक बार वह चौथ आदि कर चुका ही देता था। मालवा की सूबेदारी से च्युत किए जाने पर भी मालवा के आन्तरिक मामलों से जयसिंह का कुछ न कुछ निजी सम्बन्ध बना ही रहा। अपने पुत्र, माधोसिंह की ओर से जय-

सिंह ही रामपुरा पर शासन कर रहा था। जयसिंह ने मरहठों को रामपुरा की चौथ देना भी स्वीकार कर लिया, और समय-समय पर मरहठों का पक्ष लेकर या उनकी सेना को आश्रय देकर जयसिंह मरहठों की सहायता भी करता रहा।[1]

राजपूताने के झगड़े एवं उनका मालवा पर प्रभाव

राजपूताने के आन्तरिक झगड़ों तथा अन्य मामलों का भी मालवा पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। राजपूताना एवं मालवा के राजपूत नरेशों में एकता स्थापित करने के जो प्रयत्न किए गए थे वे सब विफल हुए, और दोनों प्रान्तों में कोई भी सम्मिलित कार्य होने की आशा न रह गई। बून्दी में अब भी गृहकलह चल रहा था। बुधसिंह की सहायतार्थ जो-जो प्रयत्न किए गए थे उनका उल्लेख किया जा चुका है। मरहठों की सहायता प्राप्त होने पर भी बुधसिंह बून्दी पर बहुत दिनों तक आधिपत्य बनाए न रख सका। अप्रेल २६, १७३६ ई० को बुधसिंह की मृत्यु हुई, और सन् १७४१ ई० के बाद ही उसके पुत्र उम्मेदसिंह ने बून्दी प्राप्त करने के लिए पुनः प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। बून्दी के लिए होने वाले इस अविरत द्वन्द्व से मालवा के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में बहुत बरबादी हुई, एवं वह सारा प्रदेश उजाड़ हो गया।

सन् १७३६ ई० में जब बाजीराव पेशवा उदयपुर पहुँचा तथा वहाँ उसके और महाराणा के बीच जो सन्धि हुई थी, उसके अनुसार

---

[1] ज० ए० सो० बं०, पृ० ३१९; राजवाड़े, ६, पत्र सं० १५०, १५१

महाराणा ने चौथ आदि करों के रु० १,६०,००० वार्षिक पेशवा को देने का वादा किया था। इसी कर के देने पेटे महाराणा ने बनेड़ा का परगना मरहठों को दे दिया। इस समय बनेड़ा का परगना महाराणा जयसिंह के भाई भीमसिंह के वंशज, सरदारसिंह की जागीर में था। बनेड़ा के परगने के अतिरिक्त मालवा में भी बदनावर और नौलाई के परगनों पर सरदारसिंह का ही आधिपत्य था। जब बनेड़ा का परगना मरहठों को दे दिया गया तब सरदारसिंह इस परगने को अपने ही आधीन रखने के लिए चिन्तित हो उठा और मरहठों का सामना करने के लिए उसने अपनी सारी सेना वहीं मेवाड़ में ही एकत्रित कर ली। बदनावर और नौलाई के परगने अरक्षित रह गए और मरहठों ने उन्हें अपने अधिकार में कर लिया; पेशवा ने ये दोनों परगने आनन्दराव पवार को दे दिए। इस प्रकार मध्य मालवा में स्थित बदनावर के सिसोदिया राज्य का सन् १७३६ ई० में अन्त हो गया।[1]

बदनावर के सिसोदिया राज्य का अन्त, १७३६ ई०

सन् १७४१ ई० में जब पेशवा को मालवा सम्बन्धी फ़रमान मिला, तब तो मालवा के राज्यों के साथ मरहठों के सम्बन्ध में एकबारगी पूर्ण परिवर्तन हो गया। अब पेशवा सम्राट् द्वारा नियुक्त मालवा का नायब-सूबेदार बन गया था, एवं मालवा के राजाओं का देहली के सम्राट् से सीधा कोई भी सम्बन्ध न रहा; अब तो पूना में पेशवा के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करना उनके लिए अत्यावश्यक होगया।

---

[1] टाड, १, पृ० ४९३–४; वंश०, ४, पृ० ३२३६–७; ओझा, उदयपुर, २, पृ० ६३०–१; सरकार, १, पृ० २६२

इस युग में प्रान्त की दशा दिन पर दिन अधिकाधिक बिगड़ती ही गई। प्रान्त में अराजकता का एक-छत्र राज्य था, और इसी से प्रान्त पूर्णतया बरबाद हो गया। आमदनी दिन पर दिन घटती जा रही थी और जब शासन-संगठन विश्रृंखलित होगया, तब तो कुछ भी लगान आदि वसूल करना कठिन होगया। उत्तरी मालवा पूर्णतया उजड़ गया, और आक्रमणकारियों को भी नरवर तथा आगरा के बीच के प्रदेश में बहुत सी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती थीं। भोपाल जाते समय निज़ाम को भी इस प्रदेश को टाल कर दूसरी राह जाना ही उचित जान पड़ा। जिस-जिस प्रदेश में स्थानीय राजा कुछ भी शक्तिशाली हो गए थे तथा जहाँ उन्होंने अपने शासन को किंचिद्मात्र भी संगठित कर लिया था, वहाँ की प्रजा का बहुत कुछ बचाव हो जाता था, क्योंकि वहाँ के शासक आक्रमणकारी मरहठों के साथ मेल कर उन्हें चौथ आदि कर चुका कर अपने प्रदेश को लूट-खसोट से बचा लेते थे। सारे प्रान्त में गड़बड़ी फैली हुई थी जिससे किसी भी प्रकार की समृद्धि की आशा रखना व्यर्थ था, और उसी कारण से सब प्रकार का व्यापार भी एक प्रकार से स्थगित सा ही हो रहा था।[1]

प्रान्त तथा वहाँ के निवासियों की परिस्थिति

[1] राजवाड़े, ६, पत्र सं० ६०६,६२०। पे० द०, १४, पत्र सं० ५,५२,५४; १५, पत्र सं० ८९, ९०। अ० म० द०, पत्र सं० १०४,१०५,१५३,१५४। इर्विन, २, पृ० ३०२; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३१८–३२३

छठा अध्याय

मालवा में मरहठों की स्थापना तथा उनकी सत्ता का एकीकरण—पूर्वकाल का अन्त

(१७४१ ई०-१७६५ ई०)

१. इस काल की प्रधान प्रवृत्तियाँ

(१७४१-६५ ई०)

ज्योंही मुग़ल सम्राट् ने मालवा सम्बन्धी फ़रमान पेशवा को दे दिये, मालवा का मुग़ल साम्राज्य से पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद हो गया; मुग़ल-मरहठा द्वन्द का भी अन्त होगया तथा मालवा मरहठों के अधिकार में चला गया। इस काल के प्रारम्भिक वर्षों में होलकर तथा सिन्धिया प्रान्त पर अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न कर रहे थे, तथापि समय-समय पर उन्हें कार्यवशात् बुन्देलखण्ड तथा जोधपुर की ओर जाना पड़ता था। सन् १७४७ ई० के बाद मरहठे जयपुर की राज्यगद्दी के मामले में उलझ गए, और उस मामले के ख़तम होते-होते अहमद शाह अब्दाली तथा उसके अफ़ग़ान साथियों का सामना करने के लिए मुग़ल सम्राट् ने मरहठों को दिल्ली बुला भेजा।

कुछ दिनों बाद दिल्ली के शाही मन्त्रियों में आपसी युद्ध शुरू हो गया और इस युद्ध के कारण मरहठे सेनापतियों का महत्त्व बहुत बढ़

गया। दोनों दलों ने मरहठों को अपनी ओर मिलाने का भरसक प्रयत्न किया और यह खींचा-तानी सन् १७५५ ई० तक चलती रही। अगले साल अहमद शाह अब्दाली ने पंजाब पर फिर आक्रमण किया और जनवरी, १७५७ ई० में वह दिल्ली जा पहुँचा। इन अफ़ग़ान आक्रमणकारियों का सामना करने के लिए मरहठों को सेनाएँ तथा सेनापति भेजने पड़े। रघुनाथ राव इस सेना का नेता बनाया गया और मल्हार होलकर भी उसके साथ गया। अप्रेल, १७५७ ई० में अहमद शाह लौट गया; रघुनाथ राव सेना समेत पंजाब तक बढ़ता गया तथा लौटते समय राजपूताने की ओर गया।

दिसम्बर १७५८ ई० में दत्ताजी सिन्धिया दिल्ली जा पहुँचे, और उत्तरी भारत में तब तक मरहठों की जो नीति रही थी उसमें अब एकबारगी क्रान्ति हो गई। दिल्ली में अनेकों राजनैतिक उलझनें उठ खड़ी हुईं। उसी समय अहमद शाह अब्दाली के नए आक्रमण की सूचना मिली। पुनः मरहठों की सेनाएँ भी दिल्ली की न सुलझ सकने वाली उलझन में उलझ गईं, और उस सब के परिणाम स्वरूप पानीपत का तीसरा युद्ध हुआ। इस प्रकार सन् १७४१ ई० के बाद पूरे बीस वर्षों तक मरहठे राजनीतिज्ञ तथा जिनके ही ज़िम्मे मालवा का सारा शासन-प्रबन्ध था वे दोनों प्रधान मरहठे सेनापति, होलकर और सिन्धिया भी मालवा से बाहर दूसरे-दूसरे मामलों में ही लगे रहे।

पानीपत के युद्ध में मरहठे बहुत ही बुरी तरह हारे, और उस पराजय के बाद सन् १७६६ में उसकी मृत्यु तक मालवे के शासन-प्रबन्ध एवं अन्य कार्यों में मल्हार होलकर का ही प्राधान्य बना रहा। पानीपत

की हार के फलस्वरूप मालवा पर मरहठों के आधिपत्य में जो निर्बलता आगई थी उसे निकाल कर उनकी सत्ता को सुदृढ़ करना तथा सारे प्रान्त में शान्ति स्थापित करने का कार्य-भार भी मल्हार होलकर को ही उठाना पड़ा। इसी अर्से में बालाजीराव की मृत्यु होगई, और माधवराव के पेशवा बनते ही पूना में अनेक पारस्परिक झगड़े शुरू होगए। निज़ाम के साथ युद्ध भी प्रारम्भ होगया और कुछ काल तक मरहठे उसी में लगे रहे। इन्हीं सब कारणों से कुछ काल तक मालवा के मामलों में कुछ निस्तब्धता छा गई और इस काल के अन्तिम तीन वर्षों में (सन् १७६३-६५) मालवा में कोई विशेष घटना नहीं घटी। मल्हार होलकर मर रहा था, जनकोजी सिन्धिया के उत्तराधिकारी की नियुक्ति अब तक नहीं हुई थी। एवं राजपूताने में घटनाओं का प्रवाह एक विशिष्ट मार्ग की ओर अग्रसर हो रहा था।

इस अराजकतापूर्ण शताब्दी के पूर्व काल का अन्त हो रहा था और उसके साथ ही मालवा के मामलों की ओर मरहठे राजनीतिज्ञों ने अब तक जो उपेक्षा दिखाई थी उसका भी अब अन्त होने वाला था। मरहठों का कार्यक्षेत्र अब सीमित होगया; और मरहठे मालवा को भी अपना निवासस्थान एवं अपने राज्य का एक अभिन्न अंग बनाने में जुट गए। उनकी इस नवीन नीति के फलस्वरूप ही मल्हार होलकर की मृत्यु के बाद मालवा के राजनैतिक वातावरण एवं सामाजिक संगठन में बहुत बड़ी क्रान्ति हुई। तथापि अब तक मरहठों ने मालवा के आन्तरिक शासन की जो उपेक्षा की थी उसका भी प्रान्तीय मामलों में अमिट प्रभाव पड़ा। इन पिछले पचीस वर्षों में मुग़लकालीन मालवा एक नए साँचे में ढल गया था; साम्राज्य के पतन के फलस्वरूप जिन-जिन नए-नए राज्यों की

स्थापना हुई थी एवं मुग़लकालीन ज़मींदारियों तथा जागीरों की राजनैतिक परिस्थिति में जो-जो परिवर्तन होगए थे, पचीस वर्षों के इस काल ने उन सबको स्थायित्व प्रदान किया। इस प्रकार सन् १७६५ ई० में मालवा की राजनैतिक परिस्थिति सन् १७४१ ई० के मालवा से बहुत ही भिन्न थी; बहुत बड़े-बड़े राजनैतिक परिवर्तन हो चुके थे।

यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि सन् १७६५ ई० तक मालवा पर मरहठों का आधिपत्य पूर्णतया स्थापित हो चुका था। यद्यपि तब तक मरहठों का शासन न तो संगठित ही हो सका था, और न सुदृढ़ ही बन पाया था, तथापि मरहठों की सत्ता ने मालवा में घर कर लिया और होलकर, सिन्धिया और पवार सेनापति मालवा में बस गए। मालवा में मरहठों की सत्ता स्थापित हो चुकी थी, किन्तु मरहठों का शासन सन् १७६५ ई० के बाद आने वाले उत्तर युग में ही सुसंगठित हो सका।

२. मरहठों की सत्ता का एकीकरण
(१७४१ ई०-१७५९ ई०)

पेशवा को शाही फ़रमान द्वारा मालवा की नायब-सूबेदारी देकर सम्राट् ने साम्राज्य की दक्षिणी सीमा पर शान्ति स्थापित कर दी। मरहठों का भी मनोरथ पूर्ण हुआ; मालवा पर उनका एकाधिपत्य स्थापित होगया। पुनः पेशवा की अधीनता में जो मरहठे सेनापति मालवा में शासन-प्रबन्ध कर रहे थे उनकी भी राजनैतिक स्थिति अधिक सुदृढ़ होगई; पेशवा दिल्ली के सम्राट् के प्रति राजद्रोह न करेगा, इस बात की इन सब सेनापतियों ने दिल्ली के सम्राट् को ज़मानत दी थी। रघुजी भोंसले के समान अन्य मरहठे सेनापतियों द्वारा मालवा प्रान्त में हस्तक्षेप होने की भी सम्भावना अब न रही थी।

मालवा में अपने-अपने प्रदेशों पर अपना आधिपत्य सुदृढ़ बनाने एवं मालवा के राजाओं से सम्बन्ध स्थापित करने में ही अब होलकर और सिन्धिया जुट गए। इस समय मरहठों ने इन राजाओं के साथ जो सम्बन्ध स्थापित किए वे एक प्रकार से आपसी समझौते मात्र थे; मरहठों ने यह वादा किया था कि यदि वे राजा या ज़मींदार चौथ आदि कर बराबर नियमित रूप से देते रहेंगे तो मरहठे उनके राज्य में न तो हस्तक्षेप ही करेंगे और न किसी प्रकार की लूट-खसोट ही। इस समय मरहठों ने भोपाल के यार मुहम्मद ख़ाँ एवं कोटा के महाराव के साथ जो समझौते किये थे उनसे मरहठों की नीति पर पहुत प्रकाश पड़ता है।[1] कई राजा तथा ज़मींदार नियमित रूप से चौथ आदि कर न दे पाते थे और उनसे वसूल करने के लिए सेना भेज कर सख़्ती करनी पड़ती थी; किन्तु जब तक मरहठे सेनापति दूसरे मामलों में उलझे रहते थे तब तक सेना भेजना भी उनके लिए कठिन होता था। इसी कारण बारंबार तक़ाज़ा किये जाने पर भी जब तक कोटा के महाराव को मरहठों की सेना के चढ़ आने की आशंका न होती थी, उन तक़ाज़ों की ओर वह कुछ भी ध्यान देता न था।[2]

मालवा के मामलों को तय करना; सन् १७४१ ई० एवं उसके बाद

---

[1] मरहठों की नीति यह थी कि हिन्दुओं से समझौता कर लें, और जहाँ तक हो सके बिना लड़ाई-झगड़े के ही उनसे रुपया वसूल कर लें।

[2] महाराव से रुपया वसूल करने के लिए तकाज़ा करने के वास्ते गुलगुले के नाम लिखे हुए कई पत्र शिन्देशाही इ० सा०, खण्ड १ और २ में फालके ने प्रकाशित किए हैं। कई बार सिन्धिया और होलकर ने यह भी धमकी दी कि यदि रुपया चुकाया न जावेगा तो वे कोटा पर चढ़ाई कर देंगे।

किन्तु सन् १७४२ ई० में सिन्धिया और होलकर दोनों जोधपुर के मामले में फँसे हुए रहे। मार्च महीने में राणोजी सिन्धिया सिरोंज होते हुए उज्जैन को लौटे; होलकर वज़ीर से मिलने के लिए कालाबाग़ गया, किन्तु होलकर के वहाँ पहुँचने से पहिले ही वज़ीर दिल्ली को लौट गया था, एवं उस प्रदेश से चौथ आदि कर वसूल कर होलकर लौट आया।[1] सन् १७४२ ई० की वर्षाऋतु में मरहठों की सेना ने मालवा में ही पड़ाव किया, जिससे प्रान्त के निवासियों के हृदयों में अनेकानेक आशंकाएँ उठ खड़ी हुईं, किन्तु उन्हें इस बात का आश्वासन दिया गया कि यदि वे नियत कर दे देंगे तो उनपर किसी भी प्रकार का नया कर नहीं लगाया जावेगा।[2]

सन् १७४३ ई० में

सन् १७४३ ई० के प्रारम्भ में दोनों सेनापति मालवा में ही ठहरे हुए थे। रघुजी भोंसले, होलकर और सिन्धिया के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने का भरसक प्रयत्न कर रहा था। उधर यद्यपि इस समय जयसिंह मृत्युशय्या पर पड़ा अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था, तथापि वह मरहठों को मालवा से निकाल बाहर करने की ही सोच रहा था। गुलाबसिंह नामक किसी व्यक्ति ने मालवा पर चढ़ाई करने का वादा किया और जयपुर में रहने वाले मरहठों के वकील ने रामचन्द्र बाबा को सूचना दी कि मालवा में जो-जो क़िले मरहठों के अधिकार में हों उन्हें अधिक सुदृढ़ तथा सुरक्षित बनावें। परिस्थिति

[1] पे० द०, २७, पत्र सं० २; २१, पत्र सं० ४

[2] वाड़, ३, पत्र सं० ६; राजवाड़े, ६, पृ० १६४। पे० द०, २१, पत्र सं० ६, जुलाई, १७४२ ई० के लगभग लिखा हुआ जान पड़ता है।

ख़तरनाक होती जा रही थी, एवं पुरन्दरे ने पेशवा को सलाह दी कि इस वर्ष भी वर्षाऋृतु में सिन्धिया और होलकर को मालवा में पड़ाव करना चाहिए। किन्तु मरहठे सैनिक बरसों तक दक्षिण से दूर विदेश में रह कर ऊब गए थे।[1] बालाजी ने बड़ी ही नीति-कुशलता के साथ परिस्थिति को सम्हाला; कई साल पहिले मालवा के सम्बन्ध में रघुजी भोंसले के साथ बाजीराव ने जो समझौता किया था, बालाजीराव ने अगस्त ३१, १७४३ ई० को पुनः रघुजी से उस समझौते का अनुमोदन करवाया। इस नए समझौते के अनुसार रघुजी ने मालवा, अजमेर, आगरा और इलाहाबाद के प्रान्तों को पेशवा का कार्य-क्षेत्र मान लिया, और उसके बदले में पेशवा ने वादा किया कि जो प्रान्त भोंसले के कार्य-क्षेत्र में गिने जाते थे उनमें वह हस्तक्षेप न करेगा।[2]

भाग्य ने पेशवा का साथ दिया, और सितम्बर २३, १७४३ ई० को जयसिंह की मृत्यु होगई। मृत्यु के पहिले जयसिंह ने माण्डू सरकार के आधे अधिकार (२६ परगने) पेशवा को दे दिए। इनमें से कई परगने पेशवा पहिले ही होलकर, सिन्धिया और पवारों में बाँट चुका था। अब पेशवा ने हुक्म दिया कि उन परगनों से जो लगान आदि वसूल हो उसका आधा हिस्सा नियमित रूप से जयपुर राज्य के वकील को दिया जावे।[3]

सन् १७४० ई० में बाजीराव ने भोपाल के यार मुहम्मद ख़ाँ के

[1] पे० द०, २७, पत्र सं० ५; २१, पत्र सं० ८, ६

[2] ऐति० पत्र०, १, पत्र सं० ३५, ३६

[3] वाड़, ३, पत्र सं० १८

साथ तीन साल के लिए जो समझौता किया था उसकी अवधि समाप्त हो जाने पर सन् १७४४ ई० के प्रारम्भ में बालाजीराव ने यार मुहम्मद ख़ाँ के साथ एक नया समझौता किया, जिससे मालवा प्रान्त के दक्षिण-पश्चिमी प्रदेश की ज़मीन के सब झगड़ों एवं उन परगनों की बक़ाया चौथ आदि का संतोष-जनक फ़ैसला हो गया। खीचीवाड़े का भी मामला तय किया गया। इस समय बुन्देलखण्ड की परिस्थिति ऐसी हो रही थी कि होलकर और सिन्धिया को वहाँ जाना पड़ा; उनकी अनुपस्थिति में मालवा का कार्य-भार लक्ष्मण पन्त, गोविन्द बल्लाल और दादा महादेव को उठाना पड़ा; ये तीनों, प्रान्त भर में यत्र-तत्र घूम-घूम कर विभिन्न प्रदेशों पर मरहठों का पूर्ण आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न करते रहे। उन्होंने विद्रोही ज़मींदारों को निकाल बाहिर किया और महत्त्वपूर्ण स्थानों में मरहठों के थाने एवं सैनिक पड़ाव स्थापित किये। किन्तु वर्षाऋतु के समाप्त होते ही गड़बड़ शुरू हो गई। कोटा राज्य में मरहठों की कुछ ज़मीन वहीं के दुर्गसिंह नामक एक व्यक्ति के अधिकार में थी; उसने मरहठों के विरुद्ध विद्रोह किया, एवं छोटी सी लड़ाई भी हुई जिसमें दुर्गसिंह मारा गया। गोपाल केशव ने अहीरवाड़ा पर आधिपत्य स्थापित कर लिया, और नरसिंह-गढ़ तथा दस दूसरे मामूली क़िलों को जीता।[1]

सन् १७४४ ई० में

सन् १७४५ ई० के प्रारम्भ में मरहठों ने भिल्सा के क़िले पर आक्रमण कर मार्च ११, १७४५ ई० को उसे जीत लिया। इस लड़ाई-

---

[1] वाड़, ३, पत्र सं० २०२, २०, २१, ७५; पे० द०, २१ पत्र सं० १०, ११; फालके, १, पत्र सं० २८ में भी शायद इसी युद्ध का उल्लेख है।

झगड़े के बाद पेशवा को यार मुहम्मद ख़ाँ से साथ एक नया फैसला करना पड़ा।[१] कोटा राज्य की चौथ आदि नियमित रूप से कभी भी चुकाई नहीं जाती थी जिससे मरहठों और कोटा राज्य में हमेशा झगड़ा हुआ करता था। इस समय "पाटन" का परगना मरहठों के अधिकार में था; मरहठे उस शहर को एक समृद्धि-शाली शहर बनाना चाहते थे एवं कोटा के महाराव को चेतावनी दी गई कि वह उस परगने में हस्तक्षेप न करे।[२] होलकर और सिन्धिया बुन्देलखण्ड के मामले में ही उलझ रहे। जुलाई १६, १७४५ ई० को मालवा में स्थित शुजालपुर नामक स्थान में राणोजी सिन्धिया की मृत्यु हो गई, और जयप्पा सिन्धिया उसका उत्तराधिकारी बना।[३]

सन् १७४५ ई० में

सन् १७४६ ई० में साल भर तक मरहठे बुन्देलखण्ड में जैतपुर के क़िले को ही जीतने में लगे रहे। अगले साल अन्ताजी माणकेश्वर ने ग्वालियर के परगने को मरहठे के अधिकार में कर लिया; और सिन्धिया ने होलकर से प्रार्थना की कि वह जाकर नरवर के राजा को दण्ड दे, उससे चौथ आदि कर वसूल करे और उस प्रदेश पर मरहठों का आधिपत्य स्थापित करे।[४]

बाँसवाड़ा राज्य में कुछ ज़्यादतियाँ करने एवं अपने अन्य साथी कर्मचारी तथा सेनापतियों के साथ लड़ने के कारण मई, १७४८ ई० में

---

[१] पे० द०, २१, पत्र सं० ७, १२

[२] फालके, १, पत्र सं० २६, २६, ३१, ३३, ३४, ३८, ३६

[३] पे० द०, २१, पत्र सं० १३, १५; फालके, १, पत्र सं० ३७

[४] पे० द०, २१, पत्र सं० १६, १८, ३; २७, पत्र सं० २६, २३

पेशवा यशवन्तराव पवार के साथ रुष्ट हो गया। जून के प्रारम्भ में पेशवा धार जा पहुँचा; पेशवा को प्रसन्न करने के लिए यशवन्तराव ने धार और माण्डू पेशवा के सिपुर्द कर दिए, तथा वह स्वयं सकुटुम्ब बदनावर में जा ठहरा। जून १४, १७४८ ई० के दिन पेशवा ने यशवन्तराव पवार को जागीर में ३½ महल दिये और उसे पुनः अपना सेनापति भी बनाया। इसके बाद शीघ्र ही पेशवा दक्षिण को लौट गया। धार के पुनः उसे लौटा दिए जाने के बारे में यशवन्तराव पेशवा से बारंबार प्रार्थना करता रहा; अगस्त १५, १७५१ ई० को उसकी यह प्रार्थना स्वीकार हुई और सन् १७५१ ई० में होने वाली प्रान्त की आमदनी में से भी यशवन्तराव पवार को उसका नियुक्त विभाग देने के लिए पेशवा ने आज्ञा दे दी।[1] सन् १७४८ ई० की बरसात में मुरहठों की सेना ने मालवा में ही पड़ाव किया; एवं जयाजी सिन्धिया ने बरसात डेरों में ही काटी।[2]

यशवन्तराव पवार एवं पेशवा; १७४८-१७५१ ई०

सन् १७४७ से तीन वर्षों तक लगातार होलकर और सिन्धिया जयपुर के ही मामले में उलझे रहे। रामपुरा का परगना मेवाड़ राज्य के अन्तर्गत था; महाराणा ने यह परगना उदयपुर की राजकुमारी के गर्भ से

---

[1] पुरन्दरे, १, पत्र सं० १७२, १७५; वाड़, ३, पत्र सं० ३८, ३३, १८३; फालके, १, पत्र सं० ७४, १०४। राजवाड़े, ६, पत्र सं० १४१ की सही तारीख़ जून २५, १७४८ ई० है। धार के परगने में जो-जो जागीरें आदि यशवन्तराव पवार ने दी थीं, धार का परगना जब्त होने पर भी वे जागीरें जब्त न हुईं। जून ७, १७५५ ई० को माण्डू का परगना होलकर और सिन्धिया को मिला। वाड़, ३, पत्र सं० ८३

[2] फालके, १, पत्र सं० ७७, ७८

होने वाले जयसिंह के पुत्र, माधोसिंह को सन् १७२७ ई० में दे दिया था।

रामपुरा का मामला; १७४७-१७५१ ई०

सितम्बर ७, १७४३ ई० को जब तक महाराणा की इच्छानुसार जयसिंह ने अपने कर्मचारियों को रामपुरा से वापिस बुला न लिया, उस प्रदेश का शासन-प्रबन्ध जयसिंह के ही कर्मचारी करते रहे। उस समय माधोसिंह उदयपुर में ही रहता था। जयसिंह की मृत्यु के बाद उसके जीवित पुत्रों में सब से बड़ा, ईश्वरीसिंह, जयपुर की गद्दी पर बैठा और मुग़ल सम्राट् ने भी ईश्वरीसिंह को जयपुर का राजा मान लिया। किन्तु सन् १७०८ की उदयपुर की सन्धि के आधार पर माधोसिंह ने भी जयपुर की गद्दी पर बैठने का दावा किया। उदयपुर के महाराणा ने माधोसिंह का साथ दिया और अब जयपुर की गद्दी के लिए आपसी युद्ध शुरू हो गया। दोनों दलों ने मरहठों की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। सन् १७५० ई० में जब माधोसिंह का पक्ष लेकर मल्हार होलकर ने ससैन्य जयपुर पर चढ़ाई की, और उसकी आगे बढ़ती हुई सेना का वृत्तान्त सुन कर जब ईश्वरीसिंह ने आत्मघात किया तब जाकर कहीं इस गृह-युद्ध का अन्त हुआ। दिसम्बर २६, १७५० ई० को माधोसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा। उनकी सहायता के बदले में माधोसिंह ने मरहठों को रणथम्भोर आदि देने का वादा किया था, किन्तु अब मरहठे उसके सिवाय जयपुर राज्य का एक चौथाई हिस्सा भी माँग बैठे। उनकी इस माँग ने माधोसिंह को मरहठों से विमुख कर दिया; जनवरी १० को जो मरहठे जयपुर शहर में गए वे सब क़त्ल कर दिए गए। माधोसिंह ने इधर उधर की बातें बना कर होलकर एवं सिन्धिया के सम्मुख इस क़त्ल में अपना हाथ न होना

साबित करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार पुनः रामपुरा जयपुर राज्य में सम्मिलित हो गया, जिससे अब माधोसिंह को भी मालवा की राजनीति से पूर्ण दिलचस्पी हो गई।[1]

उधर अप्रेल १८, १७४८ ई० को सम्राट् मुहम्मद शाह की मृत्यु हो गई और उसका शाहज़ादा अहमद शाह मुग़ल सम्राट् बना। इस अवसर पर कई एक नई-नई नियुक्तियाँ हुई किन्तु

सन् १७४८-५३ ई० में दिल्ली की परिस्थिति

शाही कर्मचारियों को मालवा का ख़याल न आया; किसी ने भी वहाँ हस्तक्षेप नहीं किया और पेशवा ही मालवा का नायब सूबेदार बना रहा। सम्राट् ने अवध के अबुल मन्सूर ख़ाँ सफ़दर जंग को वज़ीर बनाया जिससे आसफ़ जाह का पुत्र ग़ाज़ीउद्दीन (प्रथम) बहुत ही असन्तुष्ट हो गया। सन् १७४८ ई० में शाही दरबार में अनेकानेक षड्यन्त्र रचे जाने लगे और नासिर जंग को दक्षिण से दिल्ली बुलाया गया। सफ़दर जंग ने मर

[1] पे० द०, २७, पत्र सं० ६४, ६५; २, पत्र सं० ३१; २१, पत्र सं० ४०। सरकार, १, पृ० २९५–३०५; वंश०, ४, पृ० ३६२२; वीर०, २, पृ० १२३६, १२४१। पे० द०, २७, पत्र सं० ६४ और ६५ से यह ख़याल होता है कि मरहठों को कुछ भी आर्थिक लाभ नहीं हुआ। पे० द०, २१, पत्र सं० ४० में स्पष्ट लिखा है कि माधोसिंह ने मरहठों को बक़ाया तथा उस वर्ष की चौथ आदि देने का वादा किया था। किन्तु पे० द०, २७, पत्र सं०, १५२ अ में राघोबा ने माधोसिंह के पास से रामपुरा का परगना लेने का प्रस्ताव किया था, जिससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि सन् १७५७ ई० में भी रामपुरा का परगना माधोसिंह के ही अधिकार में था। एवं यह बात निश्चित रूप से साबित है कि वीरविनोद का यह कथन कि रामपुरा का परगना सन् १७५१ ई० में ही होलकर को दे दिया गया था (वीर०, २, पृ० १२४१), किसी भी प्रकार विश्वसनीय नहीं है। रामपुरा का परगना सन् १७५७ ई० में ही मरहठों के हाथ लगा।

के साथ मेल कर लिया; जब सफ़दर जंग ने सुना कि नासिर जंग सचमुच दिल्ली जाने के लिए रवाना हो गया है तब उसने होलकर और सिन्धिया को आज्ञा दी कि वे दोनों कोटा में ठहर कर नासिर जंग को दिल्ली जाने न दें तथा उसको राह में ही रोक दें। अप्रेल ७, १७४८ ई० को सम्राट् ने पुनः सफ़दर जंग के साथ मित्रता कर ली और नासिर जंग को लिख भेजा कि वह दक्षिण को लौट जावे।[1]

सन् १७५२ ई० में जब पुनः अब्दाली ससैन्य पंजाब में आ घुसा, तब सफ़दर जंग अवध में था; जब सम्राट् ने सफ़दर जंग को अफ़गानों के आक्रमण की सूचना दी तब सफ़दर जंग ने अपने मरहठे मित्रों को अवध में बुलाकर अफ़ग़ानों से रक्षा करने के लिए उनके द्वारा पेशवा के साथ एक सन्धि कर ली; और मरहठों को रुपया देने का भी उसने वादा किया। होलकर और सिन्धिया को कहा गया कि सम्राट् को सन्तुष्ट करने के लिए वे दोनों पेशवा की राज-भक्ति की एक लिखित ज़मानत पेश करें। मरहठों के विश्वासघातक आक्रमणों को रोकने के लिए सफ़दर जंग ने यह भी प्रस्ताव किया कि बख़्तसिंह तथा अन्य राजपूत राजाओं को नर्मदा के तीर पर भेज दिया जावे, कि ये राजा मरहठों को नर्मदा पार कर उत्तरी भारत में आने न दें। किन्तु सफ़दर जंग के दिल्ली पहुँचने से बारह दिन पहिले ही सम्राट् ने डर के मारे अब्दाली को पंजाब तथा सिन्ध

---

[1] पे० द०, २, पत्र सं० १२, १२ स; सरकार, १, पृ० ३५४–६; हादियाक़त-उल्-आलम, २, पृ० १६२। पुरन्दरे, १, पत्र सं० १५६, १५७, सन् १७४६ ई० में ही लिखे गए थे; इन पत्रों में "राणबा" से राणोजी सिन्धिया की ओर निर्देश नहीं है, राणोजी सिन्धिया तो बहुत पहिले मर गया था; यह "राणबा" कोई दूसरा ही व्यक्ति जान पड़ता है।

के प्रान्त देकर उसके साथ एक अपमान-जनक सन्धि कर ली थी।[1]

सफ़दर जंग चाहता था कि किसी न किसी प्रकार साम्राज्य की सत्ता बढ़ाई जावे एवं सन् १७५२ ई० के आखिरी महीनों में उसने सलाबत जंग को लिखा कि वह मरहठों को दक्षिण में ही रोक रखे जिससे कि जाट और माधोसिंह की सहायता से सफ़दर जंग मरहठों को आसानी से मालवा में से निकाल बाहर कर दे। किन्तु यह प्रस्ताव एवं बाद के माधोसिंह और बिजयसिंह के इरादे भी कार्यरूप में परिणत न हो सके।[2]

रघुनाथराव का मालवा में होकर गुज़रना; सन् १७५३-५५ ई०

सन् १७५३ ई० में रघुनाथराव मालवा में होता हुआ उत्तरी भारत को गया। सितम्बर २२, १७५३ ई० को महेश्वर के पास नर्मदा पार कर इन्दौर और उज्जैन होता हुआ, वह मुकुन्द-दर्रा गया और नवम्बर ३ को उसने चम्बल नदी पार की। दो साल बाद जब वह पुनः दक्षिण को लौटा, तब राह में उसने जून ७, १७५५ ई० को ग्वालियर का प्रसिद्ध क़िला हस्तगत कर लिया; गोहद के जाटों को क़िला खाली करना पड़ा था। गोपाल गणेश बर्वे को इस क़िले का क़िलेदार नियुक्त कर रघुनाथराव खीचीवाड़ा और उमटवाड़ा में होता हुआ मालवा में से गुज़रा और जुलाई ११, सन् १७५५ ई० को बड़वाह के घाटे पर नर्मदा को पार कर दक्षिण को लौट गया।[3]

मई, १७५६ तक मरहठों ने राजपूताना एवं चम्बल के उत्तर के

---

[1] राजवाड़े, १, पत्र सं० १; सरकार, १, पृ० ३६०-४

[2] पे० द, २१, पत्र सं० ४४; २७, पत्र सं० ११९। सरकार, २, पृ० १८२-३

[3] पे० द०, २१, पत्र सं० ६८, ८७, ८८; २७, पत्र सं० ७९, ११०। वाड़, ३, पत्र सं० ८३

सारे प्रदेश छोड़ दिये थे; केवल अन्ताजी माणकेश्वर एवं उसकी छोटी सी सेना ही दिल्ली में रह गए थे। फ़रवरी १०, १७५७ ई० को अन्ताजी ने पेशवा को लिख भेजा कि, "दक्षिण से कोई भी सेनापति (उत्तरी भारत में) नहीं आ रहा है; एवं (दुर्रानी) खयाल करते हैं कि यदि वे मुझे फ़रीदाबाद में से निकाल बाहर करें तो वे मालवा को भी जीत लेंगे।" मार्च, १७५७ ई० में यह अफ़वाह फैली कि आगरा को अपना सैनिक केन्द्र बनाकर अब्दाली मालवा पर आक्रमण करेगा। उसका सामना करने के लिए पेशवा ने होलकर और रघुनाथराव को मालवा की सीमा तक जाने की आज्ञा दी।[1] होलकर और रघुनाथराव दोनों फ़रवरी १४, १७५७ ई० को इन्दौर पहुँचे। वहाँ से मेवाड़ के राज्य में होते हुए तथा नीमच के पास स्थित, जावद नामक शहर से एक लाख रुपया वसूल करके मरहठों ने जाकर जयपुर राज्य में बरवाड़ा नामक स्थान का घेरा डाला।

रामपुरा का मामला; १७५१-१७५९ ई०

चौथ आदि कर का जितना रुपया देने का पहिले वादा किया जा चुका था वह दे-दिला कर रघुनाथराव को सन्तुष्ट करने के लिए जयपुर का प्रधान मन्त्री, कनीराम वहाँ आया। किन्तु चौथ आदि लेकर ही रघुनाथराव सन्तुष्ट होने वाला न था; पहिले के वादे के अनुसार चौथ आदि कर तथा रणथम्भोर की जागीर के अतिरिक्त रामपुरा-भानपुरा, टोंक तथा अन्य दो परगने भी उसने माँगे (अप्रेल १२, १७५७ ई० के लगभग)। शुरू में तो माधोसिंह मरहठों की माँगें स्वीकार करने के बजाय उनसे लड़ने की तैयारी करने लगा। मरहठों की माँगें भी घट गईं। पुनः होलकर को

[1] पे० द०, २१, पत्र सं० ६६; २७, पत्र सं० १६६; सरकार, २, पृ० १३६-७

अपनी ओर मिला कर शान्ति स्थापित करने के लिए माधोसिंह ने रामपुरा-भानपुरा, टोंक तथा अन्य दो परगने होलकर को दे दिये। इस प्रकार रामपुरा-भानपुरा का परगना पुनः मालवा के प्रान्त के अन्तर्गत आ गया।[1]

कोटा में उत्तराधिकारियों की नियुक्ति का प्रश्न; सन् १७५६-५८ ई०

दिल्ली का मामला तय कर वहाँ से दक्षिण को लौटते समय पुनः रघुनाथराव मालवा में होकर गुज़रा। सन् १७५६ ई० में जिस नये महाराव को कोटा की गद्दी पर बैठाया था उसकी मृत्यु होगई एवं उसके उत्तराधिकारी का प्रश्न उठा; सिन्धिया ने कोटा जाकर वह झगड़ा तय किया।[2] लौटते समय होलकर भी जनकोजी सिन्धिया से कोटा में आ मिला, और उन दोनों में अब तक जो मनमुटाव चला आ रहा था, उसकी सफ़ाई होगई। उत्तरी भारत में इस बात की पूरी-पूरी आशंका थी कि माधोसिंह पुनः विरोध करने को उठ खड़ा होगा और मालवा पर आक्रमण करेगा, एवं रघुनाथराव को आदेश मिला कि वह दक्षिण को लौट आने में जल्दी न करे; किन्तु रघुनाथराव मालवा में न ठहरा, वह दक्षिण की ओर बढ़ता ही गया, और

---

[1] पे० द०, २१, पत्र सं० १०७, १२०, १२१; २७ पत्र सं० १५२ अ। राजवाड़े, १, पत्र सं० ७१; सरकार, २, पृ० १३७—८, १६१—२। मराठी आधार-ग्रन्थों में होलकर को इन परगनों के दिये जाने का उल्लेख नहीं मिलता है; किन्तु पे० द०, २१, पत्र सं० १७७ से यह साबित है कि दिसम्बर, १७५६ ई० में रामपुरा मल्हार होलकर के अधिकार में था, एवं सन् १७५७ ई० के बाद तथा दिसम्बर १७५९ के पहिले ही कभी यह परगना होलकर के अधिकार में आया होगा। किन्तु सन् १७५७ के बाद ऐसा कोई दूसरा अवसर नहीं आया जब कि यह परगना होलकर को दिया जा सके।

[2] पे० द०, २, पत्र सं० ६६, ६६; फालके, १, पत्र सं० १६६

सितम्बर, १७५८ ई० के प्रारम्भ में उसने नर्मदा को पार किया।[१]

होलकर इन्दौर को लौट गया और वहाँ पहुँचते ही वह बीमार पड़ गया। स्वस्थ होने पर जनवरी, १७५९ ई० में वह पूना जा पहुँचा। इस समय पेशवा को यह ख़याल होगया कि होलकर उसका विरोध कर रहा था; इस बार पूना पहुँचने पर होलकर ने इस बात का पूरा प्रयत्न किया कि पेशवा का वह ग़लत ख़याल मिट जावे। जब पेशवा को पुनः होलकर पर विश्वास होगया, तब मालवा के शासन-सम्बन्धी सब अधिकार पुनः उसे दे दिए गए और होलकर मालवा को लौट आया।[२]

भोपाल में भी परिवर्तन हो रहे थे। यार मुहम्मद ख़ाँ की मृत्यु होने पर फ़ैज़ मुहम्मद ख़ाँ गद्दी पर बैठा। यार मुहम्मद ख़ाँ के साथ पेशवा का जो समझौता सन् १७४४ ई० में हुआ था, नौ वर्ष बाद सन् १७५३ ई० में वैसा ही समझौता फिर किया गया। इन पिछले वर्षों में भोपाल राज्य की चौथ आदि बराबर नियमित रूप से चुकाई जाती रही। भिलसा के क़िले को भोपाल राज्य ने अपने अधिकार में कर लिया था; वह क़िला उन्हीं के अधिकार में रहने दिया गया।[३] किन्तु इस समय खीचीवाड़ा में झगड़ा उठ खड़ा होने वाला था; वहाँ के राजा बलभद्रसिंह ने चौथ आदि कर नहीं चुकाए थे। पुनः बलभद्रसिंह तथा कोटा के महाराव के बीच निरन्तर लड़ाई-झगड़े भी हो

भोपाल का मामला; १७५३-१७५९ ई०

---

[१] पे० द०, २, पत्र सं० ८८; २७, पत्र सं० २२९, २३०। फालके, २, पत्र सं० ६२

[२] पे० द०, २१, पत्र सं० १६७, १७२; सरकार, २, पृ० १६५–६

[३] वाड़, ३, पत्र सं० ७५; पे० द, २७, पत्र सं० १४५, २१६, २१७

रहे थे।[१] किन्तु इस समय मरहठे सेनापतियों का ध्यान पुनः दिल्ली की ओर आकर्षित हो रहा था; अहमदशाह अब्दाली से अन्तिम बार लड़ने के लिए वे पूरी-पूरी तैयारियाँ करने में लगे हुए थे, एवं अफ़ग़ानों के साथ द्वन्द्व हो चुकने के बाद ही मालवा के ये सब प्रश्न हाथ में लिए जा सकते थे।

प्रान्त की राजनैतिक परिस्थिति में अस्थिरता

सन् १७५९ ई० में मालवा के इतिहास का एक विशिष्ट युग समाप्त होता है, जिसमें मालवा पर मरहठों का आधिपत्य धीरे-धीरे बढ़ता ही गया, एवं उनकी सत्ता का विरोध करने का प्रान्त भर में किसी को भी साहस न हुआ। मरहठे मालवा पर शासन करते रहे, किन्तु उन्होंने इस प्रान्त के मामलों एवं शासन की ओर बहुत ही कम, और वह भी यदा-कदा ही, ध्यान दिया। मुग़लों की शाही सत्ता प्रान्त में से पूर्णतया उठ चुकी थी, किन्तु उसके स्थान में अभी तक मरहठों का पूर्ण सुसंगठित शासन स्थापित नहीं हो पाया था; एवं इन वर्षों में मालवा में कोई सुसंगठित सुदृढ़ शासन न रहा था, और जब-जब मरहठे सेनापतियों को कार्यवश बुन्देलखण्ड, दिल्ली या दक्षिण को चला जाना पड़ता था, तब-तब प्रान्त के विद्रोही अराजकताकारक दल उठ खड़े होते थे और ज़मींदार एवं गरासिया लोग प्रान्त भर में बहुत धूमधाम करते थे। कोई दस या इस से भी ज़्यादा वर्षों तक लगातार सारे प्रान्त में पूर्ण अस्थिरता बनी रही; परिवर्तन की तपतपाती हुई भट्टी एवं अराजकता की दहकती हुई ज्वाला में पड़ कर मध्यकालीन मुग़ल मालवा का सारा ढाँचा पिघल गया।

[१] फालके, १, पत्र सं० २१३, २१५, २१७

वह अब नवीन ढाँचे में ढलने वाला था; इस युग में इस प्रान्त की परिस्थिति पिघली हुई तरल वस्तु की सी अस्थिर ही रही। जिस प्रकार ज़मींदारों एवं छोटे-छोटे शासकों ने मरहठों के परगनों की ज़मीन दबाई उससे ही मरहठों के शासन की तत्कालीन निर्बलता स्पष्ट हो जाती है।[1] इस समय मालवा के विभिन्न राज्यों में भी बहुत गड़बड़ी मच गई थी, "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती थी, एवं कई बार ज्येष्ठाधिकार के नियम की भी पूर्ण अवहेलना होती थी।[2] विंध्याचल तथा वहीं आस-पास रहने वाले भील निरन्तर विद्रोह किया करते थे और इस प्रकार उस प्रदेश में पूर्ण अशान्ति रहती थी, जिससे मरहठों को बहुत कुछ हानि होती थी; इस हानि को पूरा करने के लिए उस प्रदेश के राज्यों पर मरहठों ने एक नया कर लगाया था। किन्तु जब-जब ये स्थानीय विद्रोही उत्तरी और दक्षिणी भारत को सम्बद्ध करने वाले आम रास्तों में बाधा उत्पन्न करने लगते थे तब-तब उन्हें दण्ड देकर रास्ते साफ़ करने का भरसक प्रयत्न किया जाता था।[3] मरहठे सेनापतियों के आपसी झगड़ों से भी प्रान्त में बहुत से लड़ाई-झगड़े उठ खड़े होते थे। बहुत

[1] पे० द०, २, पत्र सं० २२; फालके, १, पत्र सं० २६, ३१, ३८, ३६, १३६

[2] सैलाना के राजा जयसिंह की मृत्यु पर सन् १७५७ ई० के बाद जयसिंह के द्वितीय पुत्र दौलतसिंह तथा उसके वंशजों के रहते हुए भी जिस प्रकार जयसिंह के तीसरे एवं चौथे पुत्र, जसवंतसिंह और अजबसिंह बारी-बारी से सैलाने की गद्दी पर बैठे, वह उपर्युक्त कथन का एक अच्छा उदाहरण है। दौलतसिंह के वंशजों को सेमलिया की जागीर लेकर ही सन्तोष करना पड़ा। सावेनियर, हिस्ट्री आफ़ सैलाना स्टेट, पृ० २३–४। सैलाना गज़े०, पृ० ३ पर दौलत सिंह को जयसिंह का कनिष्ठ पुत्र लिखा है, किन्तु यह कथन ग़लत है।

[3] पे० द०, २१, पत्र सं० १६७; वाड़, ३, पत्र सं० २२६, २३४

दिनों तक होलकर और सिन्धिया में मनमुटाव बना रहा, जिसका परिणाम यह होता था कि दोनों सेनापतियों के सहकारी तथा कर्मचारी भी आपस में झगड़ बैठते थे और एक दूसरे का विरोध भी करते थे। अन्य साधारण कर्मचारियों के आपसी झगड़ों से भी प्रान्त में बहुत कुछ अशान्ति फैलती थी।[१]

सन् १७५१ से १७६० ई० तक के वर्षों में जो बड़ी-बड़ी सेनाएँ मालवा में होकर गुज़रती थीं वे राजपूताना या दिल्ली को जाती थीं, एवं उनका मालवा प्रान्त पर विशेष प्रभाव पड़ता न था। उस प्रान्त में होकर उन सेनाओं के गुज़रने का इतना प्रभाव अवश्य होता था कि प्रान्त में कोई भी एकाएकी विद्रोह करने का साहस न करता था; पुनः कोटा, खीचीवाड़ा आदि के समान उन सेनाओं की राह में पड़ने वाले प्रदेशों या राज्यों की चौथ आदि भी आसानी से वसूल हो जाती थी।

इन सब वर्षों में मरहठों को यही आशा बनी रही कि राजपूताना तथा उत्तरी भारत से वे बहुत सा द्रव्य प्राप्त कर सकेंगे, अतएव उन्होंने मालवा की ओर विशेष ध्यान न दिया। मालवा पूर्णतया दबा कर उसपर अपना एकाधिपत्य स्थापित करने एवं वहाँ के शासन को सुसंगठित करने का काम अब भी मरहठे शासकों के लिए बाक़ी रहा था। अब तक मरहठों को मालवा प्रान्त से विशेष आर्थिक लाभ नहीं हुआ था। मालवा पर मरहठों के शासन के इन प्रारम्भिक वर्षों के काग़ज़-पत्रों में इसी कारण मालवा के शासन आदि का ठीक-ठीक उल्लेख भी नहीं मिलता है। प्रान्त में भी न तो कोई बड़ा विद्रोह ही उठा और न कोई ऐसी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण घटना

---

[१] फालके, १, पत्र सं० २१६, २६; राजवाड़े, ६, पृ० ३०२

ही घटी जिसका प्रान्त के इतिहास एवं वहाँ की राजनीति पर क्रान्तिकारी प्रभाव हुआ हो; इसी कारण प्रान्त के आन्तरिक मामलों का बहुत ही थोड़ा विवरण मिलता है। इस युग में प्रान्त में बहुत बड़े-बड़े परिवर्तन हुए जिनका प्रान्त की राजनीति पर बहुत प्रभाव पड़ा, किन्तु ये सब परिवर्तन साधारण जन-समाज की दृष्टि से अदृष्ट धीरे-धीरे अज्ञातरूपेण ही हुए, एवं उनकी विशद व्याख्या करना एक कठिन बात है।

३. दुर्रानी के साथ द्वन्द, पानीपत का युद्ध तथा उसके बाद (१७५६–१७६५ ई०)

सन् १७५६ ई० के प्रारम्भ से ही भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षितिज पर अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण के रूप में एक नवीन विपत्ति के बादल उमड़ने लगे थे। अब्दाली भारत में घुसता चला आया और जनवरी ६, १७६० ई० को दत्ताजी सिन्धिया के साथ उसका युद्ध हुआ जिसमें दत्ताजी की पराजय तथा मृत्यु हो गई। मरहठे राजनीतिज्ञों का ध्यान अब दिल्ली के मामलों की ओर आकर्षित हुआ, तथा अब्दाली को भारत में से निकाल बाहर करने के लिए बहुत बड़ी तैयारियाँ की जाने लगीं।

सदाशिव भाऊ के सेनापतित्व में मरहठों की वह महान सेना मार्च १७६० ई० में उत्तरी भारत के लिए रवाना हुई। अप्रेल १२ को

मरहठा सेना का मालवा में होकर गुज़रना; अप्रेल-मई, १७६० ई०

हरिडया के पास ही नर्मदा को पार कर सिहोर तथा बरसिया होती हुई मई ६ को यह सेना सिरोंज पहुँची। पेशवा ने सदाशिवराव को उज्जैन तथा इन्दौर शहर के लिए कुछ हुण्डियाँ दी थीं, उन्हें भुनाने के लिए भाऊ को कुछ दिन सिरोंज में

ठहरना पड़ा। बलभद्रसिंह खीची ने पिछले कई वर्षों से कुछ भी चौथ नहीं दी थी, एवं जब भाऊ सिरोंज ठहरा हुआ था तब उसने बलभद्रसिंह से कुछ चौथ आदि वसूल करने का भी प्रयत्न किया। भाऊ सिरोंज से अहीरवाड़ा में होता हुआ आगे बढ़ा, किन्तु उसकी सेना के गुज़र जाने के बाद पीछे से अहीरों ने विद्रोह किया और यात्रियों तथा अन्य आने जाने वालों के लिए वह राह निरापद न रही। किन्तु भाऊ लौट न सकता था, वह बढ़ता ही गया और अरौन तथा नरवर होता हुआ मई ३०, १७६० ई० को वह ग्वालियर पहुँचा।[1]

जब भाऊ मालवा में से गुज़र रहा था, तब उत्तरी भारत की ठीक-ठीक परिस्थिति जानने एवं सब बातों का पता लगाने के लिए उसे होलकर और गोविन्द बुन्देले पर निर्भर रहना पड़ा। भाऊ ने जयपुर, जोधपुर एवं कोटा के शासकों को पत्र लिखे कि वे ससैन्य आकर अब्दाली के विरुद्ध इस चढ़ाई में मरहठों की सहायता करें। माधोसिंह ने सहायता देने का वादा कर लिया, किन्तु कोटा के महाराव ने चुप्पी साधी और कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इस समय अवसर न था कि कोटा के महाराव को दण्ड दिया जा सके, एवं अब्दाली को हराने के बाद कोटा पर चढ़ाई करने का भाऊ ने तय किया। अब्दाली के आक्रमण का वृत्तान्त सुन कर मालवा के मरहठे कमाविसदारों में तो बहुत आतंक छा गया।[2]

---

[1] राजवाड़े, १, पत्र सं० १७४, १७६, १८०, १८६; पे० द०, २, पत्र सं० १२५; खरे १, पत्र सं० १८, २२; फालके, १, पत्र सं० २१३, २१५, २१७; सरकार, २, पृ० २४१–३

[2] फालके, २, पत्र सं० १०, ११; राजवाड़े, १, पत्र सं० १७६; पे० द०, २, पत्र सं० ११८

जनवरी १४, सन् १७६१ ई० को अब्दाली ने पानीपत के युद्ध में मरहठों को बहुत ही बुरी तरह हराया; बड़े-बड़े सेनापतियों में अकेला मल्हार होलकर ही उस महान विपत्ति में से किसी प्रकार बच निकला। जनवरी, १७६१ ई० के प्रारम्भ में पेशवा मालवा में चला आया था। जनवरी २४ को पेशवा भिल्सा में ही था, वहीं दिल्ली के किसी व्यापारी का लिखा हुआ एक पत्र पकड़ा गया जिसके द्वारा पेशवा को पानीपत के युद्ध में मरहठों की भयंकर हार का पता लगा।

पानीपत के युद्ध में मरहठों की हार; होलकर का बच निकलना: पेशवा और माधोसिंह

फ़रवरी ७ तक वह भिल्सा में ही ठहरा रहा और वहाँ से सिहोर एवं सिरोंज होता हुआ वह सिरोंज से ३२ मील उत्तर में स्थित पछार नामक स्थान को गया; आशा का कोई कारण न होते हुए भी वह यही आशा लगाए हुए था कि भाऊ एवं अन्य मरहठे सेनापतियों तथा सरदारों के बच निकलने की अफ़वाहें सत्य साबित हो जावेंगी। इसी समय पेशवा के पास माधोसिंह का पत्र आया, जिसमें पेशवा को बून्दी आने के लिए माधोसिंह ने आग्रह किया था; माधोसिंह का प्रस्ताव था कि वह स्वयं और पेशवा मिलकर पुनः अब्दाली पर चढ़ाई करें। अब्दाली ने माधोसिंह तथा अन्य राजपूत राजाओं को दिल्ली बुला भेजा था कि वे वहाँ उपस्थित होकर अब्दाली को निश्चित द्रव्य दें। किन्तु पानीपत की चढ़ाई के समय जयपुर के राजा ने मरहठों की सहायता न की थी, एवं पेशवा माधोसिंह से बहुत ही चिढ़ा हुआ था; उसने माधोसिंह को उस बार सहायता न करने के लिए बहुत ही फटकारा और यह लिख भेजा कि यदि अब्दाली

मालवा की ओर बढ़ेगा तो वह स्वयं नर्मदा को पार कर दक्षिण को पीछा लौट जावेगा। कुछ ही दिनों बाद पानीपत के युद्ध में से बच निकले हुए सैनिक पेशवा से मिले और उन्होंने पेशवा से दक्षिण लौट जाने के लिए आग्रह किया। पछार से मार्च २२ को रवाना होकर शीघ्र ही पेशवा ने नर्मदा नदी पार की।[१]

पानीपत के युद्ध में मरहठों की पराजय होने से मालवा में मरहठों की सत्ता तथा उनके आधिपत्य को बहुत ही भीषण धक्का लगा। मालवा के राजा तथा ज़मींदार, जिन्हें मरहठों ने निकाल बाहर किया था, या जिनको मरहठों ने अपनी शक्तिशाली सेनाओं द्वारा दबा दिया था, वे सब अब मरहठों की हार का वृत्तान्त सुन कर उत्साहित हो उठे; उन्होंने विद्रोह किया और अब इन दक्षिणी आक्रमणकारियों को प्रान्त में से निकाल बाहर करने की भी बात-चीत करने लगे। तीन महीनों से ज़्यादा काल तक मालवा में मरहठों की स्थिति बहुत ही डाँवाडोल रही। उनकी महान सेनाओं का पानीपत में पूर्ण संहार हो चुका था। जो सैनिक पानीपत के युद्ध-क्षेत्र से बच निकले थे उनपर अब भी आतंक छाया हुआ था; असंगठित तथा नेताओं के बिना वे कुछ भी न कर सकते थे। मरहठे शासकों को आर्थिक संकट सता रहा था, रुपया उनके पास रहा न था। यशवन्तराव पवार तथा सिन्धिया के घरानों की जागीरें ज़ब्त कर पेशवा ने

मरहठों की पराजय का परिणाम

---

[१] पे० द०, २१, पत्र सं० २०४; २७, पत्र सं० २६०—२७२। पुरन्दरे, १, पत्र सं० ४०२; राजवाड़े, ६, पत्र सं० ४१५, ४१६; खरे, १, पत्र सं० २६, २८; सरकार, २, पृ० ३५६—६०, ५०२ फुट नोट।

कुछ द्रव्य प्राप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु इससे भी लाभ होने के बजाय हानि ही हुई; मरहठे सरदारों में असन्तोष फैल गया और मालवा में पेशवा की शक्ति अधिकाधिक क्षीण हो गई। राजपूतों के लिए यह एक बहुत ही सुअवसर था किन्तु न तो उनमें एकता ही स्थापित हो सकती थी, और न उनमें कोई ऐसा महान व्यक्ति ही था जो सब राजपूतों का नेता बनकर उस परिस्थिति से लाभ उठा सके। ऐसा कोई बड़ा उद्योग उठाने तथा उसे सफलतापूर्वक सम्पादन करने की योग्यता जयपुर के माधोसिंह में न थी।[1]

मल्हार होलकर का मालवा की परिस्थिति को सम्हालना

पेशवा ने अब मल्हार होलकर को मालवा के ही नहीं सारे उत्तरी भारत के भी सर्वाधिकार दे दिये और इस कठिनाई के समय उस अनुभवी, वयोवृद्ध सेनापति ने अपनी पूर्ण कार्य-कुशलता दिखाई; अविरत परिश्रम एवं पूर्ण उत्साह तथा साहस के साथ उसने परिस्थिति का सामना किया, और मालवा में मरहठों के सब विरोधियों को दबा दिया। पानीपत से लौटने पर मल्हार ने कुछ काल तक ग्वालियर में विश्राम लिया, और वहीं भाऊ की सेना के बचे हुए सैनिकों को एकत्रित कर उन्हें लेकर वह इन्दौर गया। उसने देखा कि केवल राजपूत ही विद्रोही नहीं हो गए थे किन्तु मरहठों का प्रान्तीय शासन भी बहुत कुछ विश्रृंखलित हो गया था; कई छोटे-छोटे पदाधिकारी भी उच्च सेनापतियों की आज्ञा मानने को तैयार न थे।[2]

---

[1] पे० द०, २, पत्र सं० १४२, १४३; २६, पत्र सं० १८। सरकार, २, पृ० ५०२–४

[2] पे० द०, २७, पत्र सं० २६८; २६, पत्र सं० १०

होलकर ने सब से पहिले राजपूत एवं अन्य जातियों के विद्रोहियों को दबा कर मरहठों की सत्ता पुनः स्थापित करने का दृढ़ निश्चय किया। रामपुरा इस समय होलकर की जागीर में था; उस परगने के पुराने चन्द्रावत शासक इस समय सुअवसर पाकर रामपुरा पर पुनः अधिकार कर बैठे थे। होलकर ने इन चन्द्रावतों पर चढ़ाई की, किन्तु उसके रामपुरा पहुँचने से पहिले ही सन्ताजी वाघ के सहकारी एवं महन्तपुर के कमाविसदार, कृष्णाजी तानदेव ने रामपुरा पर आक्रमण कर चन्द्रावतों को हरा दिया तथा रामपुरा को पुनः मरहठों के अधिकार में कर लिया। चन्द्रावतों का दीवान पकड़ा गया और उनके कोई ४०० आदमी मारे गए।[१]

तानदेव की इस विजय के बाद तीसरे दिन होलकर हाड़ौती की ओर बढ़ा और गहूखेड़ी होता हुआ गागुर्नी पहुँचा; गागुर्नी में कोटा महाराव के अभयसिंह राठौर नामक किसी कर्मचारी ने मरहठे कर्मचारियों को निकाल बाहर किया था। मल्हार होलकर १५-२० दिन तक गागुर्नी का घेरा डाले रहा; होलकर ने इन्दौर से अपनी बड़ी-बड़ी तोपें मँगवाई थीं, और जहाँ तक वे न आ पहुँची, होलकर क़िले को हस्तगत न कर सका। जून १७६१ ई० के प्रारम्भ में गागुर्नी का क़िला होलकर ने ले लिया। होलकर की इस सफलता से पुनः मरहठों का आतंक स्थापित हो गया; और मालवा के उत्तर-पश्चिमी भाग में उनका वही पुराना दबदबा फिर बैठ गया। होलकर अब मेवाड़ की ओर बढ़ा।[२]

---

[१] पे० द०, २७, पत्र सं० २७१; फालके, २, पत्र सं० ६४

[२] पे० द०, २७, पत्र सं० २६६, २७१। जब गागुर्नी में ठहरा हुआ था, तब होल्कर ने रघुनाथराव को अधिक सेना भेजने के लिए लिख भेजा था। पे० द०, २७, पत्र सं० २६७

इसी समय मालवा की उत्तरी सीमा पर गोहद एवं उसके पड़ोसी प्रदेशों में विट्ठल शिवदेव पुनः मरहठों की सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा था।[१] अहीरवाड़ा और उधर के अन्य प्रदेशों में स्थिति बहुत अच्छी न थी, एवं पेशवा को उधर ध्यान देना पड़ा; उस प्रदेश के विद्रोहों को दबाने के लिए पेशवा ने गोपालराव और जानोजी भोंसले को भेजा। मई १७६१ ई० तक गोपालराव ने सब विद्रोहों को दबा कर उस प्रदेश में शान्ति स्थापित कर दी थी, एवं वह सिरोंज होता हुआ सागर चला गया; किन्तु ज्यों ही गोपालराव मालवा छोड़ कर रवाना हुआ अहीरों ने पुनः विद्रोह किया और वे नए-नए क़िले बनाने लगे। बरसात शुरू हो गई थी; पुनः इज़्ज़त खाँ तथा खीची भी अहीरों से जा मिले थे, एवं बरसात ख़तम होने तक उस प्रदेश में कुछ भी छेड़-छाड़ करना मरहठों को उचित न जान पड़ा। तथापि मरहठों ने नरसिंहगढ़ पर अपना अधिकार, अधिक सुदृढ़ बना लिया था। विसाजी पन्त एक मुग़ल कर्मचारी था तथापि इस प्रदेश में उसका प्रभाव बहुत था, एवं मरहठों ने उसके साथ भी बहुत ही अच्छा सम्बन्ध बनाए रखा। नवम्बर १७६१ ई० में होलकर कोटा के पास था, उसी समय अहीरवाड़ा में नियुक्त मरहठे कर्मचारी ने होलकर को पत्र पर पत्र भेजे कि वह सहायतार्थ उस प्रदेश में चला जावे। होलकर सांगानेर तक बढ़ता चला गया, किन्तु मांगरोल के युद्ध में जो घाव होलकर को लगा था उसके पक जाने से होलकर को वहीं से लौटना पड़ा; एवं दिसम्बर, १७६१ ई० में नारो शंकर ने अपने पुत्र विश्वास-

पूर्वी मालवा में प्रयत्न; १७६१-६२ ई०

[१] पे० द०, २७, पत्र सं० २७०, २७२

राव को सिरोंज भेजा कि वह वहाँ जाकर इज़्ज़त खाँ और गोविन्द कल्याण से मिले और उनके साथ मित्रता कर उनकी ही सहायता से झाँसी को अपने अधिकार में कर ले। पेशवा ने गोविन्द कल्याण को आज्ञा दी कि वह सिरोंज और अहीरवाड़ा के मामलों को अपने हाथ में ले, वहाँ के ज़मींदारों को समझा-बुझा कर सन्तुष्ट करे, उस प्रदेश के सब थानों को अपने अधिकार में कर उस परगने पर शासन करे। भिल्सा का क़िला भोपाल के नवाब ने पुनः जीत लिया था; उस क़िले को जीत कर अपने अधिकार में लाने के लिए भी पेशवा ने गोविन्द कल्याण को लिख भेजा।[1]

होलकर के हाथों माधोसिंह की पराजय; आक्टोबर-नवम्बर, १७६१ ई०

उधर माधोसिंह मरहठों की सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए बैठा-बैठा षड्यन्त्र रच रहा था। मई १४ को वह रतलाम गया और वहाँ मध्य-मालवा के राजपूत राज्यों से सहायता प्राप्त करने का उसने प्रयत्न भी किया। बून्दी और कोटा के शासक, खीची राजा एवं अन्य कई राजाओं ने माधोसिंह को सहायता देने का वचन दिया, कई उससे जा मिले। किन्तु इस समय बरसात शुरू हो गई थी एवं होलकर कुछ न कर सका। आक्टोबर १७६१ के पिछले दिनों में उसने माधोसिंह पर चढ़ाई की। इन्हीं दिनों होलकर को पेशवा ने पूना बुला भेजा था; प्रारम्भ में होलकर ने माधोसिंह के विरुद्ध अपनी सेना भेज कर स्वयं पूना जाने का निश्चय भी किया, किन्तु बाद में विवश होकर उसे पूना जाने का विचार छोड़ देना पड़ा। होलकर

[1] ऐति०, २, पत्र सं० १८८; १, पत्र सं० १०१। पे० द०, २६, पत्र सं० १२, २२, ३७, ४३; ३६, पत्र सं० ३; राजवाड़े, १, पत्र स० २६६

को इन्दौर से रवाना होकर जयपुर की सेना का सामना करने के लिए कोटा की ओर जाना पड़ा। नवम्बर २६ को मांगरोल नामक स्थान पर युद्ध हुआ जिस में माधोसिंह की सेना की पूर्ण पराजय हुई। कोटा के महाराव ने मरहठों का साथ दिया। मल्हार होलकर की इस विजय का अच्छा प्रभाव पड़ा और मरहठों का विरोध करने के लिए किसी भी प्रकार की गुट बनने की कोई सम्भावना न रही; मरहठे सैनिकों का दबदबा एवं आतंक पुनः छा गया।[1]

सन् १७६१ ई० की वर्षाऋतु में एवं उसके बाद भी पेशवा ने मालवा प्रान्त में कई नई-नई नियुक्तियाँ कीं। होलकर को बहुत सी नई जागीरें मिलीं, विट्ठल देव राव को सरंजामदार बना दिया गया, बहिरो अनन्त को भी सरंजाम मिला; और केदारजी तथा मानाजी सिन्धिया को जनकोजी सिन्धिया का उत्तराधिकारी मान कर जनकोजी को जागीर एवं ज़मीन उन दोनों को दे दी गई।[2]

किन्तु अब मल्हार होलकर बूढ़ा हो गया था। मांगरोल के युद्ध में जो घाव उसे लगा था, उसी के कारण होलकर को तीन मास तक बिस्तर में पड़े रहना पड़ा। इस समय यह सम्भव न था, कि किसी भी प्रकार आक्रमणशील नीति को कार्य-रूप में परिणत किया जा सके। सन् १७६२ तथा १७६३ ई० में मरहठों की सेना दक्षिण में ही

इस युग के अन्तिम वर्ष; १७६२-६४ ई०

[1] पे० द०, २७, पत्र सं० २७६; २६, पत्र सं० २०, २२; २, पत्र सं० ५७; २१, पत्र सं० ६१, ६२, ६३, ६४। फालके, १, पत्र सं० २६६, २६७; २, पत्र सं० ६५। बड़ोदा०, १, पत्र सं० ८१। सरकार, २, पृ० ५०६, ५०६

[2] वाड़, ६, पत्र सं० १५८, १८६, १६०, १६३, ३३८, १०५, १५६, १६०, १६१, १६२, १६४

उलझी रही; निज़ाम ने पूना पर आक्रमण किया तथा उसके बाद पेशवा और रघुनाथराव में आपसी कलह शुरू हो गया। सन् १७६४ एवं १७६५ ई० में देहली में स्थित नजीब खाँ रुहेले पर आक्रमण करने में जवाहिरसिंह जाट की सहायतार्थ होलकर को उत्तरी भारत में जाना पड़ा। मई १७६५ ई० में वज़ीर शुजाउद्दौला ने द्रव्य देने का वादा कर दोआब में अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ने के लिए होलकर को उतारू किया। इस समय माधोसिंह को यह ज्ञात हो गया था कि मरहठों का विरोध करना व्यर्थ होगा, पुनः जवाहिरसिंह जाट की युरोपीय सेनापतियों द्वारा सुशिक्षित तथा सुसज्जित सेना का आतंक भी माधोसिंह पर छा रहा था, एवं अब उसने मरहठों के साथ मेल कर लिया।

सन् १७६५ ई० में प्रान्तीय परिस्थिति

मालवा में भी इस समय कोई भी महान मरहठा सेनापति तथा नेता नहीं रहा था। मल्हार होलकर अब मर रहा था, और उसके पीछे उसका कार्य चला सकने योग्य कोई भी महान उत्तराधिकारी नहीं रहा। पेशवा को अब तक महादजी सिन्धिया की योग्यता एवं उसकी भावी महत्ता का पता लगा न था। मार्च १७, १७६३ ई० तक पेशवा ने किसी को भी जनकोजी का उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं किया; किन्तु जब केदारजी को ही सिरोपाव देकर जनकोजी का उत्तराधिकारी मानने से भी झगड़ा तय नहीं हुआ तब तो सितम्बर १६, १७६४ ई० के दिन मानोजी सिन्धिया को भी जनकोजी का उत्तराधिकारी मान लिया तथा पेशवा ने दोनों को हुक्म दिया कि वे दोनों मिल कर काम करें। अब तो महादजी रुष्ट हो गया और पेशवा की आज्ञा के बिना ही वह पूना

से रवाना होकर मालवा की ओर चल पड़ा। उसको राह में रोकने के लिए कई व्यक्ति नियुक्त भी किये गए थे किन्तु उनकी भी आँख बचा कर महादजी निकल गया और उज्जैन जा पहुँचा; वहाँ से वह कोटा राज्य की चौथ आदि वसूल करने को कोटा जा पहुँचा।[१] इस समय यद्यपि मालवा में सर्वत्र शान्ति छाई हुई थी और सारा वातावरण निस्तब्ध था किन्तु आगामी विपत्तियों के कई अनिष्ट-सूचक संकेत देख पड़ रहे थे; इस बात की पूरी आशंका थी कि यदि कोई प्रयत्न न किया जावेगा तो मालवा प्रान्त भी मरहठों के हाथ से निकल जावेगा।[२] आक्रमणशील-नीति के अभाव एवं अकर्मण्यता के कारण मालवा में मरहठों की सत्ता निर्बल होती जा रही थी। होलकर मृत्यु-शय्या पर पड़ा था, और उसकी मृत्यु के बाद जो स्थान रिक्त होने वाला था, उस स्थान पर आरूढ़ होकर मालवा पर शासन करने तथा प्रान्त में स्थित मरहठों की सेना का सेनापति बन कर सारे प्रान्त के मामलों को निपटाने वाला अब तक कोई नज़र आता न था।

४. अराजकतापूर्ण शताब्दी के पूर्वकाल का अन्त

सन् १७६५ ई० में मालवा के इतिहास की इस अराजकतापूर्ण शताब्दी के पूर्वकाल का अन्त हो गया। प्रान्त पर मरहठों का आधिपत्य पूरी तरह स्थापित हो चुका था, और पानीपत की हार का भीषण धक्का खाकर भी मरहठों की सत्ता बनी रही थी। प्रान्त में मुग़ल शासन बहुत

[१] पे० द०, २६, पत्र सं० १३०, ४८, ७०, ६७, ६२, ६४, ६२, ६६ ३६, पत्र सं० ३२, ३३। वाड़, ६, पत्र सं० १५६, १६०, १६१, १६३

[२] पे० द०, २६, पत्र सं० १०३

पहिले ही विशृङ्खलित हो चुका था; पतनोन्मुख मुग़ल साम्राज्य में न तो अब कोई शक्ति रह गई थी, और न कोई ऐसा शासक या कर्मचारी ही साम्राज्य में रह गया था जो मालवा पर पुनः साम्राज्य की सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न करे। सन् १७४१ ई० में मालवा की नायब सूबेदारी पेशवा को देकर मुग़ल सम्राट्, साम्राज्य के वज़ीर तथा शाही कर्मचारियों ने सर्वदा के लिए उस प्रान्त को त्याग दिया, मालवा का साम्राज्य से सर्वदा के लिए सम्बन्ध-विच्छेद होगया।

मुग़लों और मरहठों की सत्ताओं में बहुत काल तक द्वन्द चलता रहा, और अन्त में जब मुग़लों ने उस प्रान्त को त्याग दिया तब ही कहीं जाकर उस द्वन्द का अन्त हुआ; तब पेशवा ही मालवा का सर्वाधिकार-पूर्ण अधिपति बन गया; मरहठे सेनापति प्रान्त पर शासन करने लगे; प्रान्त की बागडोर अब उन्हीं के हाथ में चली गई। किन्तु मरहठे सैनिकों और मरहठे सेनापतियों में किसी को भी इतना अवसर न मिला कि वे प्रान्त के शासन को सुसंगठित कर उसे सुदृढ़ बना सकें। मरहठे राजनीतिज्ञों एवं शासन के संचालकों का खयाल था कि अवध, इलाहाबाद और पंजाब जैसे प्रान्तों से उन्हें अधिक द्रव्य मिल सकेगा, एवं उन्होंने उन प्रान्तों पर आधिपत्य बनाए रखने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया; मालवा प्रान्त के बारे में भी उन्हें केवल इसी बात का ध्यान रहा कि कहीं यह प्रान्त उनके हाथ से निकल न जावे, वहाँ के शासन-संगठन की ओर उन्होंने बिलकुल ही ध्यान न दिया। एवं यद्यपि प्रान्त का शासन सुसंगठित न हो पाया तथापि मालवा में मरहठों का आधिपत्य स्थायी हो गया

मालवा के शासन के प्रति मरहठों की उपेक्षा

था; प्रारम्भ में प्रान्त को विजय करने के लिए एवं बाद में वहाँ मरहठों के आधिपत्य को बनाए रखने के लिए ही विभिन्न मरहठे सेनापतियों को मालवा में सरंजाम तथा जागीरें दी गई थीं; अपनी इन जागीरों को ही अपना आधार बनाकर इन सेनापतियों ने अपनी शक्ति बढ़ाई, एवं अवसर मिलने पर उन्होंने मालवा प्रान्त में अपने अलग-अलग राज्यों की स्थापना की।

मालवा के स्थानीय राज्यों का शक्तिशाली होना एवं उनकी पद-मर्यादा में वृद्धि

प्रान्त की परिस्थिति बहुत ही अस्थिर थी, एवं स्थानीय साहसी व्यक्तियों, शक्तिशाली ज़मींदारों और मुग़ल कालीन राजाओं ने इससे बहुत लाभ उठाया। उन्होंने इस सुअवसर को न खोया; और विशेषतया जब उन्होंने देखा कि मरहठे बहुत शक्तिशाली थे तथा उनका विरोध करना व्यर्थ होगा, तब तो मरहठों को द्रव्य, चौथ आदि देने का वादा कर इन राजाओं आदि ने मरहठों से अपना पीछा छुड़ाया। और अब वे राजा एवं ज़मींदार, अपने राज्य या ज़मींदारी के ही संकुचित क्षेत्र में अपनी शक्ति बढ़ाने लगे, तथा वहाँ उन्होंने अपनी परिस्थिति अधिक सुदृढ़ बना ली। ये छोटे-छोटे राज्य, ज़मींदारियाँ या जागीरें धीरे-धीरे पूर्णाधिकार प्राप्त स्वाधीन राजनैतिक सत्ताएँ बन गईं; और तत्कालीन प्रान्तीय परिस्थिति से लाभ उठा कर इन राज्यों आदि ने अपनी राजनैतिक पद-मर्यादा को बहुत बढ़ा लिया। इस प्रकार मरहठों ने अनजाने ही मालवा प्रान्त में एक नवीन उलझन को पैदा कर प्रान्त की राजनैतिक परिस्थिति को अत्यधिक उलझा दिया। इन राज्यों के उत्थान की यह प्रवृत्ति सन् १७६५ ई० के बाद तक

भी अनियन्त्रित ही रही; आगे चल कर ये ही राज्य एवं शक्तिशाली ज़मींदार मालवा में मरहठों के आधिपत्य को चुनौती देने वाले थे।

युगान्तर काल का आगामी युग; उत्तरकाल में पाई जानेवाली प्रधान विभिन्नताएँ

सन् १७६५ ई० के कुछ ही दिनों बाद मालवा में कई ऐसी घटनाएँ घटीं जिनसे यह स्पष्ट हो गया कि वहाँ के प्रान्तीय इतिहास में एक नवीन युग प्रारम्भ हो गया था। यद्यपि मरहठों की सेनाएँ पुनः उत्तरी-भारत पर चढ़ाई करने लगीं और मरहठे सेनापति पुनः बुन्देलखण्ड को दबाने तथा गोहद और भरतपुर के जाटों के विरुद्ध लड़ने में लग गए, किन्तु तब तक मरहठों का एक प्रधान वीर सेना-नायक न रहा था; मई २६, १७६६ ई० को मल्हार होलकर की मृत्यु हो गई थी। पानीपत के युद्ध के बाद मरहठों के आधिपत्य के विरुद्ध उठने वाले विरोध को निर्दयतापूर्वक पूर्णतया दबा कर मल्हार होलकर ने मालवा में मरहठों की सत्ता को पुनः स्थापित किया, तब ही मल्हार होलकर का जीवन भर का कार्य—मालवा में मरहठों की सत्ता की स्थापना करना—समाप्त हो गया था। और मल्हार होलकर के साथ ही मालवा में होलकर घराने के प्रबल आधिपत्य का भी अन्त हो गया। आगामी युग में महत्व प्राप्त कर प्रान्त के भविष्य को निश्चित करने वाला व्यक्ति महादजी सिन्धिया था। यद्यपि सिन्धिया घराने का उत्तराधिकारी नियुक्त करने का प्रश्न सन् १७६१ में उठ चुका था, किन्तु सन् १७६५ के बाद ही इस प्रश्न का निपटारा हुआ; और महादजी के उत्थान के बाद सिन्धिया का घराना अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया एवं होलकर घराने का महत्व घट गया। आगामी युग में कई नए-नए व्यक्तियों

को प्रान्तीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ; महादजी सिन्धिया, अहिल्याबाई होलकर, तुकोजी होलकर, ज़ालिमसिंह झाला तथा अमीर खाँ पिण्डारी का उत्थान सन् १७६५ ई० के बाद ही हुआ; इस अराजकता-पूर्ण शताब्दी के उत्तरकाल में प्रान्तीय इतिहास की घटनावली पर इन सब के व्यक्तित्व का बहुत प्रभाव पड़ा।

सन् १७६५ ई० के बाद मालवा में मरहठों की नीति में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाते हैं। पानीपत युद्ध का मालवा में जो कुछ भी तात्कालिक प्रभाव पड़ा था उसको मल्हार होलकर एवं अन्य मरहठे सेनापतियों ने शक्तिपूर्ण नीति द्वारा उसी समय मिटा दिया; सारे प्रान्त में शान्ति स्थापित कर उन्होंने मरहठों की सत्ता को सुदृढ़ कर दिया, किन्तु मरहठों की उस भयंकर पराजय के गम्भीर तथा दीर्घकालीन परिणाम सन् १७६५ ई० के बाद ही दृष्टिगोचर हुए। सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि—"मरहठों की पुनः संगठित सत्ता की महत्वाकांक्षा तथा उसका लक्ष्य अब राजपूताने की ऊसर मरु-भूमि, तथा बुन्देलखण्ड के बहुत ही यत्र-तत्र बिखरे हुए जंगलों से पूर्ण ऊबड़-खाबड़ प्रदेश तक ही सीमित रह गये; यह सब हिन्दू प्रदेश ही था, एवं आगामी चालीस वर्षों (१७६५-१८०५ ई०) में मरहठों ने जो उद्योग किया उसका परिणाम यह हुआ कि राजपूतों के हृदय में मरहठों के प्रति ऐसा द्वेष भर गया जो अब तक नहीं मिट पाया है।"[1] इस प्रकार जब (जनवरी १७६५ ई०) मरहठों को पूर्ण निराशा हो गई कि वे दिल्ली में अपना आधिपत्य स्थापित न कर सकेंगे तब जाकर कहीं उत्तरी भारत में स्थित मरहठे सेनापति मालवा के

[1]सरकार, २, पृ० ३५७-८

शासन को संगठित करने में तत्परता से लगे। किन्तु यह सब बातें सन् १७६५ ई० के बाद ही हुईं। यद्यपि मरहठे सन् १७४१ ई० से ही मालवा पर विधिवत् शासन कर रहे थे, किन्तु मालवा में मरहठों का सुसंगठित शासन कई युगों बाद ही स्थापित हुआ; सन् १७७५ के बाद जाकर कहीं महादजी सिन्धिया ने मालवा के शासन को सुव्यवस्थित स्वरूप दिया। और जब मरहठे मालवा के शासन को सुव्यवस्थित करने लगे तथा प्रान्त की आमदनी बढ़ा कर वहाँ से आर्थिक लाभ उठाने का उन्होंने प्रयत्न किया तब राजपूत राज्यों, ज़मींदारों एवं ठिकानेदारों के साथ मरहठों की मुठभेड़ हो गई। मालवा के राजाओं को मुग़ल साम्राज्य या अन्य कोई बाह्य सत्ता सहायता करेगी, राजपूताने के राजपूत नरेशों में एकता स्थापित हो सकेगी, या राजपूत और जाट मिल कर मरहठों का विरोध करेंगे, ऐसी किसी भी बात की सम्भावना सन् १७६५ ई० तक न रह गई थी; एवं जब मरहठों की इस नवीन नीति से मालवा के इन राजपूत राजाओं, ज़मींदारों आदि को हानि पहुँचने लगी तब उन्होंने अनुभव किया कि वे कितने असहाय तथा निरुपाय हो गए थे।

सन् १७६५ ई० के अन्तिम महीनों में मालवा के राजनैतिक रंगमंच पर एक नवीन शक्ति प्रवेश करने लगी थी। मरहठों की सेना के साथ उनके सहायक के रूप में पिण्डारियों के दल भी मालवा में आने लगे थे। यद्यपि प्रारम्भ में जब-जब उन पिण्डारियों को नर्मदा से उत्तर के प्रदेशों में जाना पड़ता था तब उन्हें विशेष आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती थी, और उस समय ऐसी आज्ञाएँ बहुत ही कम दी जाती थीं;[1] किन्तु

[1] वाड़, ६, पत्र सं० ३५१

कुछ ही दिनों बाद ये पिण्डारी मालवा में इतने हो गए कि प्रान्त की शान्ति और समृद्धि भी उन्होंने नष्ट कर दी। लूट-खसोट करने वाले इन दलों ने प्रान्त के स्थानीय ज़मींदार और राजाओं को बहुत हानि पहुँचाई, जिससे उन दलों के संरक्षकों तथा उन राजाओं में मनमुटाव, द्वेष और शत्रुता का एक और कारण उपस्थित हो गया।

मरहठों की सत्ता के विरोधी राजपूतों, एवं उन्हीं के कट्टर शत्रु मुसलमानों को यह बात भली भाँति ज्ञात थी कि यदि किसी भी भारतीय सत्ता ने मरहठों का सामना किया तो मरहठों को हराना उस सत्ता के लिए एक कठिन बात होगी, एवं वे स्वयं उनका विरोध करने का साहस न कर सकते थे। किन्तु साथ ही वे इस बात से भी अपरिचित न थे कि किसी विदेशी सत्ता के विरुद्ध मरहठों का भी सफल होना एक कठिन बात थी; एवं जब प्रान्तीय राजनैतिक क्षेत्र में अंगरेज़ों ने प्रवेश किया तब उन पीड़ित ज़मींदारों, त्रस्त राजाओं, तथा दरिद्री प्रजा ने अँग्रेज़ों को अपना उद्धारक समझ कर उनका हृदय से स्वागत किया।

किन्तु इन सब घटनाओं तथा प्रवृत्तियों का इस ग्रन्थ के विषय से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है; ये प्रवृत्तियाँ केवल इस अराजकतापूर्ण शताब्दी के पूर्व एवं उत्तरकालों में पाई जाने वाली प्रधान विभिन्नताओं की ओर निदेश करती हैं। उत्तरकाल के इतिहास में ही इन विशेषताओं की विशद व्याख्या की जानी चाहिए।

सातवाँ अध्याय

पूर्व-काल में मालवा की परिस्थिति

(१६९८-१७६५ ई०)

राजनैतिक

राजनैतिक दृष्टि से, सन् १७४१ ई० में मालवा का मुग़ल साम्राज्य के साथ सम्बन्ध-विच्छेद हो गया; और उसके बाद पेशवा के विभिन्न कार्य-क्षेत्रों में मालवा की भी गिनती होने लगी। मालवा मुग़ल साम्राज्य का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रान्त था। किन्तु जब मरहठों के आक्रमण निरन्तर होने लगे तब इस प्रान्त पर आधिपत्य बनाए रख कर वहाँ शासन करना कठिन ही नहीं किन्तु एक ख़तरनाक बात हो गई।

मरहठों के हाथ में जाते ही मालवा का मुग़ल साम्राज्य से कोई भी सम्बन्ध न रहा। पेशवा को नायब सूबेदार बनाने की पूरी-पूरी विधि हुई थी; फ़रमान भी दिया गया था; किन्तु यह बात किसी से भी छिपी हुई न थी कि अब आगे मालवा का साम्राज्य के साथ कोई भी सम्बन्ध न रह सकेगा। इस फ़रमान के दिए जाने के बाद उस प्रान्त को पुनः अपने अधिकार में लाने के लिए साम्राज्य की ओर से कभी कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया। साम्राज्य के कर्मचारी तथा कार्यकर्ताओं ने भी प्रान्त को त्याग दिया। किन्तु राजनैतिक तथा शासन संगठन की जो एकता मालवा प्रान्त को मुग़ल साम्राज्य के अन्तर्गत प्राप्त थी वह मरहठों के

शासन काल में इस प्रान्त को कभी भी प्राप्त न हुई। मालवा प्रान्त में मरहठों की सत्ता बढ़ाने के लिए जागीर प्रथा का ही उपयोग किया गया, एवं जब मरहठों ने प्रान्त पर आधिपत्य स्थापित कर लिया, तब तक सारा प्रान्त मरहठे सेनापतियों को दी गई कई अलग-अलग जागीरों में बँट गया। पुनः मरहठों ने जागीर प्रथा का प्रयोग अपने मरहठे सेनापतियों तक ही सीमित न रखा। उन्हें द्रव्य की आवश्यकता सर्वदा बनी रहती थी, एवं मालवा के स्थानीय राजाओं तथा ज़मींदारों पर भी उन्होंने अपनी ज़मींदार-प्रथा का प्रयोग किया; इन्हें अपने-अपने राज्य या ज़मींदारी में स्वाधीन रहने दिया और जहाँ तक वे द्रव्य या चौथ आदि दिए गए, उनके साथ कोई भी छेड़छाड़ न की। प्रान्त की राजनैतिक एकता नष्ट हो गई और अब यह प्रान्त मरहठे सेनापति एवं कर्मचारियों, अफ़ग़ान साहसी नेताओं, राजपूत राजाओं तथा ज़मींदारों द्वारा स्थापित तथा शासित राज्यों का एक समूह मात्र बन गया।

प्रान्तीय शासन

मरहठों की शासन-व्यवस्था में जागीर प्रथा ने घर कर लिया था; पुनः मरहठे सेनापति तथा शासकों का ध्यान प्रान्त से बाहर के मामलों की ओर ही लगा रहा, एवं मुग़लों की शासन-व्यवस्था के विशृंखलित होने पर उसके स्थान पर अपना सुव्यवस्थित शासन स्थापित करने का मरहठों ने कोई प्रयत्न नहीं किया। प्रारम्भिक वर्षों में मरहठों ने प्रान्त में केवल यत्र-तत्र कुछ ख़ास-ख़ास स्थानों में अपने अड्डे, थाने आदि ही स्थापित किए और आस-पास के प्रदेश की चौथ आदि एकत्रित करने के लिए ही कुछ कर्मचारियों की नियुक्ति की। चौथ आदि एकत्रित करने के लिए ऐसे कर्मचारियों की

नियुक्ति पेशवा ही करता था, किन्तु जिस प्रदेश में वे नियुक्त किए जाते थे उस प्रदेश के अधिकारी या शासक मरहठे सेनापति की आज्ञानुसार ही उस कर्मचारी को चलना पड़ता था। इन निम्नतर कर्मचारियों का प्रधान कर्तव्य केवल यही होता था कि वे चौथ आदि कर वसूल करें और उस सब वसूली का ठीक-ठीक हिसाब रखें। कर्मचारियों की नियुक्ति पेशवा के हाथ में थी एवं पेशवा का ख़याल था कि उन कर्मचारियों द्वारा उसे ठीक-ठीक हिसाब ज्ञात हो सकेगा, जिससे कि पेशवा को उस प्रदेश की आमदनी का अपना पूरा-पूरा निजी विभाग पाने में कोई भी कठिनाई न होगी। जब कभी किसी स्वतन्त्र राज्य या ज़मींदारी में ऐसे कर्मचारी नियुक्त कर दिए जाते थे तब वे कर्मचारी उस राज्य में मरहठों के वकील का काम भी करते थे।[1]

जिन-जिन राज्यों, ज़मींदारियों आदि को मरहठों ने स्वतन्त्र राजनैतिक सत्ताएँ मान कर उनका टाँका तय कर दिया था, उनके अतिरिक्त प्रान्त के बाक़ी सब प्रदेश पर मरहठों का ही शासन-प्रबन्ध था। इस प्रदेश में से कई परगने आदि होलकर, सिन्धिया, पवार, पिलाजी जाधव और अन्य दूसरे सेनापतियों को सरंजाम में दिये जा चुके थे। सरंजाम

---

[1] इस कथन के सब से अच्छे उदाहरण के रूप में कोटा राज्य में बसे हुए गुलगुले घराने का नाम लिया जा सकता है; वे सारस्वत ब्राह्मण थे और कोटा राज्य में उन्हें कमाविसदार नियुक्त किया था। कोटा के महाराव एवं अन्य पड़ोसी राज्यों से वे चौथ आदि कर वसूल करते थे, और उसी प्रदेश की जो ज़मीन मरहठों को दी जा चुकी थी, उसका लगान आदि वसूल कर वहाँ का शासन-प्रबन्ध भी करते थे। वे इस बात की भी पूरी-पूरी निगहबानी करते थे कि कहीं कोटा का महाराव मरहठों का विरोध करने या मरहठों के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र रचने की तो नहीं सोच रहा था।

में दिये गए इन परगनों से ही मालवा के वर्तमान मरहठे राज्यों का प्रारम्भ होता है; ये ही सरंजाम धीरे-धीरे बढ़ते गए, समय के साथ वे परगने सरंजामदारों की निजी वंशपरंपरागत जागीरें समझे जाने लगे; तथा ये ही जागीरें संगठित होकर अर्ध-स्वतन्त्र राज्यों का स्वरूप लेने लगीं। पूर्वीय मालवा के अन्तर्गत नरवर से लेकर सिरोंज तक का सारा प्रदेश आ जाता था; यह प्रदेश पहिले तो पिलाजी जाधव के अधिकार में दिया गया था; पिलाजी जाधव के बाद सटवोजी जाधव और उसके बाद नारोशंकर ने इस प्रदेश पर शासन किया। जो कोई कर्मचारी सिरोंज में रहता था वही भोपाल राज्य से उस प्रदेश की चौथ भी वसूल करता था।[1]

मालवा के उस पूर्वीय प्रदेश के सिवाय बाकी सारे प्रान्त पर होलकर और सिन्धिया का संयुक्त शासन था। सारे प्रान्त की आमदनी एकत्रित की जाती थी, और उस सम्मिलित आमदनी में से निश्चित विभाग के अनुसार ही पेशवा, होलकर, सिन्धिया और पवारों में बटवारा होता था। होलकर और सिन्धिया के संयुक्त शासन से कई बार आपसी झगड़े भी शुरू हो जाते थे, जिनसे कई कठिनाइयाँ उठ खड़ी होतीं थीं; विशेषतया सन् १७४५-५६ ई० में तो इन दोनों घरानों में निरन्तर मनमुटाव बना ही रहा और इसी मनमुटाव के कारण इन दोनों घरानों के आधीन कर्मचारियों में भी निरन्तर आपसी झगड़े चलते रहे।

मालवा में मरहठों का प्रान्तीय शासन प्रधानतया विजयी सेनाओं

---

[1] टिफ़ेनथेलर, १, पृ० ३४८। पिलाजी जाधव भी सूबेदार कहलाता था, एवं उसका पद एवं सम्मान भी होलकर और सिंधिया के समान था। पे० द०, १४, पत्र सं० २१; राजवाड़े, ६, पत्र सं० ४०६

का सैनिक शासन ही था; और इस प्रकार का शासन आगामी बीस-तीस वर्षों तक लगातार चलता ही रहा। एवं जब मरहठों ने मालवा में सुसंगठित, सुव्यवस्थित शासन स्थापित करने का प्रयत्न किया तब उन्होंने स्थापित पद्धति को ही अधिक विशद एवं सुव्यवस्थित बना दिया; शासन व्यवस्था में अत्यावश्यक परिवर्तन नहीं किए गए और आगामी अर्ध शताब्दी में भी मालवा उसी सुव्यवस्थित सैनिक शासन से ही शासित होता रहा। १६ वीं शताब्दी के पिछले अर्ध भाग में जब अंगरेज़ों ने दबाव डाल कर मरहठे शासकों को बाध्य किया कि वे अपने राज्य को सुसंगठित करें और शासन-प्रबन्ध को आधुनिक ढंग से सुव्यवस्थित बनावें, तब जाकर कहीं मालवा के इन वर्तमान मरहठे राज्यों के शासन-संगठन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए और सैनिक शासन के स्थान पर आधुनिक संगठित सुव्यवस्थित असैनिक शासन का प्रारम्भ हुआ।

मालवा में स्थित मरहठों की सेना भी बहुत ही साधारण एवं आदिम ढंग की थी। भिन्न-भिन्न सरंजामदारों की सेनाएँ एकत्रित किए हुए अशिक्षित घुड़सवारों का समूह मात्र थीं; पूना में स्थित पेशवा की निजी सुशिक्षित घुड़सवारों की फ़ौज के साथ उनकी तुलना करना व्यर्थ होगा। अब तक मरहठे मालवा को एक विदेशी प्रान्त ही समझते रहे थे, और जब कभी मरहठों की सेनाएँ वहाँ पड़ाव करती थीं तब प्रान्त में लूट-खसोट कर ही वे अपना गुज़ारा करती थीं। इस प्रकार मरहठों की सेना का भार प्रान्त के ग़रीब किसानों, वहाँ के राजाओं या अन्य धनी व्यक्तियों पर पड़ता था, एवं प्रान्त में मरहठों की सेना का पड़ाव करना प्रान्त के निवासियों के लिए एक बहुत बड़ी आफ़त हो जाती थी। १७७० ई० के

बाद जाकर ही कहीं धीरे धीरे मरहठे सेनापति एवं सैनिकों की इस मनो-वृत्ति में परिवर्तन होने लगा।[1]

जब मालवा में मुग़ल शासन चल रहा था, तब सारे प्रान्त में न्याय करने तथा वहाँ शान्ति बनाए रखने का भार मुग़ल शासकों एवं कार्यकर्ताओं पर था। यह अवश्य मानना पड़ेगा कि मुग़लों की न्याय-शासन-पद्धति बहुत ही कठोर, अपूर्ण तथा साधारण थी। जिन-जिन राज्यों के शासकों को सब फ़ौजदारी अधिकार प्राप्त थे, उन राज्यों में मुग़ल शासक हस्तक्षेप नहीं करते थे और उस राज्य में न्याय-शासन का कार्य राज्य के कर्मचारियों के ही ज़िम्मे रहता था; उस प्रदेश में शान्ति बनाए रखना भी उस राज्य के शासक का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कर्तव्य होता था।

न्याय-शासन और शान्ति-स्थापना

ज़मींदारों, जागीरदारों तथा कई छोटे-छोटे राजाओं को सब फ़ौजदारी अधिकार प्राप्त न थे, एवं जब कभी आवश्यकता होती थी, ऐसे मामलों को मुग़ल कर्मचारी ही निपटाते थे; किन्तु जब प्रान्त पर मरहठे शासन करने लगे तब तो ऐसे कई ज़मींदारों तथा राजाओं ने ये सर्वोच्च फ़ौजदारी अधिकार भी हड़प लिए। तथापि मरहठे मालवा में स्वयं को मुग़ल सम्राट् द्वारा नियुक्त सर्वोच्च पदाधिकारी तथा उत्तराधिकारी मानते थे, एवं कई बार इन राज्यों में जब कभी हत्या जैसा संगीन फ़ौजदारी मामला होता था, तब वे उन राज्यों में हस्तक्षेप करते थे।[2] किन्तु प्रायः मरहठों ने मालवा के राज्यों

---

[1] वाड़, ३, पत्र सं० ६; फालके, १, पत्र सं० ७७,७८

[2] वाड़, २, पत्र सं० ७० में एक ऐसी ही घटना का उल्लेख मिलता है। रतलाम राज्य के अन्तर्गत स्थित पंचेड़ ठिकाने के ठाकुर लालसिंह ने पंचेड़ के एक ब्राह्मण को मार डाला था। मारे गए ब्राह्मण के सम्बन्धियों ने जाकर पेशवा से शिकायत की, जिस-

द्वारा हड़पे गए इन अधिकारों को एक स्थापित प्रथा मान कर उनसे विशेष छेड़छाड़ न की। किन्तु इन अधिकारों के बढ़ने के साथ ही इन राज्यों की ज़िम्मेवारियाँ भी बढ़ गईं और वहाँ के शासकों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपने-अपने राज्यों में शान्ति बनाए रखें, उन राज्यों में होकर गुज़रने वाले आम रास्तों को खुला रखें तथा उन्हें निरापद बनावें। जब ये राजा या ज़मींदार कुछ काल तक लगातार अपने इस कर्तव्य की उपेक्षा करते थे तब उनकी इस बेपरवाही से होने वाले नुकसान का हर्जाना इन राजाओं आदि के पास से उन राहगीरों को दिलाया जाता था।[1]

मरहठे कर्मचारियों की न्याय-शासन-पद्धति भी मुग़लों के समान ही तात्कालिक, कठोर एवं आदिम ढंग की थी। दीवानी मामलों में हमेशा इस बात का प्रयत्न किया जाता था कि दोनों दलों का आपस में ही कुछ समझौता करवा दिया जावे; और जब समझौता हो जाता था तो समझौता करवाने की फ़ीस के तौर पर कुछ रुपया उनसे वसूल कर लिया जाता था।[2] कई मामलों में फ़ैसला करने के लिए पंचायत भी बैठती थी। पंचायतों की कार्यवाही प्रायः ज़बानी ही होती थी, किन्तु इस सारी तह-कीक़ात और मामले का जो फ़ैसला होता था वह महज़रनामे के स्वरूप में

पर पेशवा ने हुक्म दिया कि लालसिंह की जागीर के बारहों गाँव ज़प्त कर लिए जावें, और उस ब्राह्मण के सम्बन्धियों को हर्जाने के तौर पर इनाम में कुछ ज़मीन पंचेड़ में दी जावे। इस आज्ञा की तामील करने के लिए पेशवा ने जनकोजी सिन्धिया को हुक्म दिया था। यह आज्ञा आक्टोबर ८, १७५४ ई० को दी गई थी।

[1] वाड़, ३, पत्र सं० २२६, २३४

[2] वाड़ २, पत्र संख्या० ४०; ३, पत्र सं० २२६

लिखा जाकर उच्च पदाधिकारियों के पास भेजा जाता था।[1]

मालवा में मरहठों की स्थापना के समय से ही इस प्रान्त में होकर गुज़रने वाले व्यापार-मार्ग तथा अन्य प्रधान रास्तों में भी बहुत परिवर्तन हो गया। जब १७३० ई० के बाद मुग़ल-मरहठा द्वन्द चल रहा था, तब मरहठों के दल प्रायः गढ़ा और सागर तक पहुँच जाते थे और वहाँ से घूम कर कुरवाई के पास मालवा प्रान्त में जा घुसते थे। तब तक मरहठों की सत्ता मालवा में स्थापित न हो पाई थी। किन्तु जब दक्षिण-पश्चिमी मालवा पर मरहठों का आधिपत्य दृढ़तर होने लगा तब तो अकबरपुर और बड़वाह के पास के नर्मदा के घाटों का महत्त्व बढ़ने लगा। हरिडया होकर बुरहानपुर जाने वाला रास्ता मालवा प्रान्त में भोपाल, खीचीवाड़ा और अहीरवाड़ा में होकर गुज़रता था, तथा इन सब प्रदेशों में मरहठों के विरोधियों का ही प्राधान्य था, एवं वह रास्ता अब अधिक चलता न था। सन् १७५० ई० के बाद तो मरहठों ने दूसरे ही रास्ते को पकड़ा; प्रायः बड़वाह के पास नर्मदा पार कर वे सीधे उज्जैन चले जाते और वहाँ से रामपुरा की ओर बढ़ते हुए कोटा के पास चम्बल नदी को पार कर वे सीधे राजपूताने में जा घुसते थे। इस राह में रामपुरा और उज्जैन के बीच में मरहठों को सोंधवाड़े में से गुज़रना पड़ता था। इस प्रदेश में सोंधिया नामक एक लुटेरा जाति बसती थी, और इसी कारण रास्तों को

मालवा में होकर गुज़रने वाले नए मार्ग

[1] पंचायत द्वारा फैसला किये गए एक मामले के सब काग़ज़ात फालके ने खण्ड १, पत्र सं० १०७ में प्रकाशित किये हैं, जिन से पंचायती अदालतों के जाब्ते आदि पर बहुत प्रकाश पड़ता है।

निरापद बनाने के लिए मरहठों ने इन सोंधियों को दबाया था ।[1] ये सोंधिये मालवा में बसने वाले प्रारम्भिक राजपूत थे, जो उस प्रदेश की जंगली जातियों से घुल-मिल गए थे । दिल्ली जाने वाली सेनाएँ कोटा से शिवपुरी, नरवर और ग्वालियर होती हुई बढ़ती थीं । रास्तों के बदल जाने से सिरोंज का राजनैतिक महत्त्व बहुत घट गया था तथापि मरहठों ने सिरोंज को अपना एक प्रधान सैनिक केन्द्र बनाए रखा, जिससे कि वहाँ से वे अहीरवाड़ा, खीचीवाड़ा और भोपाल के प्रदेशों पर अपना आधिपत्य बनाए रख सकें ।

प्रान्त की आर्थिक परिस्थिति

मुग़ल-मरहठा द्वन्द्व बहुत काल तक चलता रहा, पुनः मरहठों के शासन के प्रारम्भिक युग में मरहठे शासकों ने प्रान्त के आन्तरिक शासन-संगठन की ओर विशेष ध्यान न दिया, एवं मालवा की आर्थिक परिस्थिति दिन पर दिन बिगड़ती ही गई । सन् १७०० ई० के बाद प्रान्त की आमदनी निरन्तर घटती ही गई । सन् १७०४ ई० में बिदारबख़्त ने अपने पितामह सम्राट् औरंगज़ेब को लिख भेजा था कि मरहठों के आक्रमणों से दक्षिणी मालवा पूर्णतया बरबाद हो गया था ।[2] किसानों और ज़मींदारों की हालत अच्छी न थी ।[3] सन् १७०० ई० में प्रान्त की आमदनी रु० १,०२,०८,६६७ थी, वही सन् १७०७ ई० में घट कर रु० १,००,६७,५४१ (या जगजीवनदास के अनुसार रु०

[1] टिफ़ेनथेलर, १, पृ० ३५०

[2] इनायत, पृ० १५ अ, ६० अ, ६१ अ

[3] नवाज़िश, पृ० ७ ब, ८ अ, ८ ब, ९ अ; इनायत०, पृ० १३२ ब

१,००,६६,५१६) ही रह गई। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद के तेरह वर्षों में किसी ने भी प्रान्त के मामलों की ओर विशेष ध्यान न दिया, एवं आमदनी और भी घट गई; सन् १७२० में केवल रु० ६०,०४,५६३ ही थी।[1] सन् १७२४-५ ई० में निज़ाम मालवा प्रान्त से ४० लाख रुपया ही वसूल कर सका, किन्तु कुछ साल बाद तो इतना रुपया वसूल होना भी कठिन होगया, और सन् १७३० ई० में तो मालवा के सूबेदार के लिए प्रान्त का शासन चलाना और साथ ही सुसंगठित शक्तिशाली सेना रखना भी असम्भव हो गया।[2] जब मालवा पर मरहठों का आधिपत्य होगया तब सारे प्रान्त की आमदनी विभिन्न मरहठे सेनापतियों, कर्मचारियों आदि में बँट गई थी, एवं सन् १७५०-६० ई० के लगभग लिखते समय टिफ़ेनथेलर सारे मालवा प्रान्त की तत्कालीन कुल आमदनी का कुछ भी अन्दाज़ा लगा न सका।

सन् १७४१-६५ ई० के वर्षों में मरहठों को मालवा से विशेष आर्थिक लाभ न हुआ। प्रान्त के विभिन्न राजा, ज़मींदार आदि यथासमय नियमित रूप से चौथ, लगान आदि कर चुकाते न थे। लगान वसूल करने वाले मरहठे कर्मचारी भी बहुत चतुर न थे, जिससे भी प्रान्त की आमदनी बहुत ही घट गई थी। उन वर्षों में मरहठे उत्तरी भारत पर आक्रमण करने में ही लगे हुए थे और उन्हीं आक्रमणों के कारण मरहठे सेनापतियों पर बहुत ऋण हो गया था। उन सेनापतियों के लिए प्रान्त में या यहाँ की प्रजा के लाभ के लिए कुछ भी रुपया व्यय करना एक असम्भव बात थी।

[1] इण्डिया०, पृ० lix, lx, ५६, १४१; मनुची, २, पृ० ४१३

[2] पे० द०, १०, पत्र सं० ६६; ज० ए० सो० बं०, पृ० ३२३-४

सिरोंज और उज्जैन के साथ ही साथ अब इन्दौर भी व्यापार एवं तिजारत का समृद्धिशाली केन्द्र होने लगा था। यहाँ विशेषतया बोहरे ही व्यापार करते थे; वे विदेशों से भी माल मँगवाते थे। इन्दौर में ऐसे साहूकारों की भी कमी न थी, जो दक्षिण की हुण्डियों का भी चुकारा करते थे।[1] धान्य आदि का व्यापार अब भी बंजारों के ही हाथ में था और मरहठे भी उनका सहयोग प्राप्त करने को इच्छुक रहते थे।[2]

प्रान्त भर के प्रायः सब राज्य अपने-अपने राज्य में होकर गुज़रने वाली वस्तुओं पर महसूल लगाते थे; तत्स्थानीय शासकों की विशेष आज्ञा से कई बार इस महसूल में छूट भी हो सकती थी।[3] जहाँ कहीं यह महसूल वसूल करने का अधिकार केवल मरहठे शासकों का ही होता था, वहाँ इस महसूल को इकट्ठा करने का अधिकार ठेके में दे दिया जाता था।[4] एक ही सेनापति या कर्मचारी के अधिकार के प्रदेश में भी कई बार स्थान-स्थान पर अनेक बार ऐसे महसूल वसूल किये जाते थे। जो महसूल मुग़ल काल से वसूल होते आ रहे थे वे सब मरहठों के शासन काल में भी वसूल होते रहे।[5]

मरहठों के लिए अपना पिछला क़र्ज़ा चुकाने एवं नई-नई चढ़ाइयों के लिए सेना एकत्रित करने को हमेशा द्रव्य की आवश्यकता बनी रहती

[1] वाड़, २, पत्र सं० २२६; पे० द०, २, पत्र सं० १२८

[2] वाड़, २, पत्र सं० १६५

[3] मनुची, १, इण्ट्रोडक्शन, पृ० lvii-lviii, अध्याय १८। टेवरनियर, १, पृ० ३७; ज० प० हि० सो०, पृ० ६०; फालके, १, पत्र सं० १६,२७

[4] वाड़, ३, पत्र सं०. ७१

[5] वाड़, ३, पत्र सं० ४५४

थी; एवं द्रव्य एकत्रित करने की इस समस्या को सुलझाने के लिए हमेशा वसूल किये जाने वाले करों तथा महसूलों[१] के अतिरिक्त कई नए-नए कर भी मरहठों ने लगा दिये थे।[२] मन्दिर बनाने या ऐसे कोई अन्य धार्मिक या सार्वजनिक कार्यों के लिए भी ख़ास-ख़ास मौक़ों पर चन्दा कर या उस कार्य के लिए ही विशेष रूप से कर लगा कर रुपया एकत्रित किया जाता था।[३]

जो ज़मीन विभिन्न मरहठे सेनापतियों को जागीर में थी उसके लिए तो उन सेनापतियों को स्वयं ही चिन्ता रहती थी कि किसी प्रकार उपजाऊ बनाकर उससे अधिक रुपया पैदा करें।[४]

किन्तु इस अराजकता का प्रान्तीय भूमि की उपजाउता पर कोई विशेष

---

[१] भूमि के लगान के अतिरिक्त निम्नलिखित दूसरे कर भी नियमित रूप से वसूल कर मरहठों के सरकारी ख़ज़ाने में जमा होते थे—

(१) जकात,
(२) सरकारी बट्टा—रु० ३—२—० प्रति सैकड़ा की दर से,
(३) सादील या सेना का भत्ता—रु० ३) प्रति सैकड़ा की दर से,
(४) गाँवों से भेंट,
(५) मसाले का कर—हुज़ूर में किसी जुर्म की जवाबदेही के लिए आते थे उनसे वसूल होता था,
(६) हवालदारी का कर,
(७) दूसरे जुर्माने एवं कमाविस-बाब। वाड़, ३, पत्र सं० ४१०

[२] वाड़, ३, पत्र सं० ४८६, ४६५

[३] वाड़, ३, पत्र सं० ५११

[४] अ० म० द०, पत्र सं० १०४; वाड़, ३, पत्र सं० ३२६, ३६२; फालके, १, पत्र सं० ३८, ३६, ४१

प्रभाव न पड़ा और गेहूँ, अफ़ीम, अलसी और तेलहन पैदा होते रहे।

मालवा की पैदावार एवं उद्योग-धन्धे

पूर्वीय मालवा में भदौरा के आस-पास अलसी के अतिरिक्त, राई-सरसों, छोटी और साधारण मटर आदि भी पैदा होते थे। वहाँ चावल भी पैदा हो सकता था। सन् १७५० ई० के लगभग भी मालवा में होकर गुज़रने वाले यात्री को सारंगपुर के आस-पास चौदह मील तक लगातार गेहूँ के हरे-हरे खेतों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं देख पड़ता था। मालवा के बैल भी प्रशंसनीय थे, वे ऊँचे-ऊँचे और बलवान होते थे; एवं उनकी नसल क़ीमती होने के कारण दूसरे प्रान्तों और देशों में भी इन बैलों की बहुत माँग होती थी।[1]

मालवा के उद्योग-धंधे भी चलते रहे; किन्तु प्रान्तीय शासन में इस अराजकता एवं आयात-निर्यात में उपस्थित होने वाली अनेकानेक बाधाओं से उनको थोड़ा-बहुत धक्का अवश्य पहुँचा। बहुत ही महीन सूती कपड़ा तब भी चन्देरी में बनता था और वहाँ से दूर-दूर देशों में भेजा भी जाता था। सारंगपुर में रहने वाले बहुत से आदमी कपड़ा बुन कर, बेल-बूटों का काम कर या व्यापार से ही अपनी रोज़ी चलाते थे। सिरोंज में भी रंग-बिरंगे तरह-तरह के फलों के बूटों से चित्रित कपड़े बनते ही रहे। कपड़ों के ये टुकड़े पलंग-पोश या पलंग पर चादरों का काम देते थे; दूर-दूर देशों तक में इनकी खपत होती थी। डेरे बनाने का काम विशेष रूप से सिरोंज में होता था और कई बार मरहठों की सेनाओं के लिए भी डेरे वहीं बनवाए जाते थे।[2]

---

[1] टिफ़ेनथेलर, १, पृ० ३४२, ३४६, ३५०, ३५१

[2] टिफ़ेनथेलर, १, पृ० ३४९, ३५१, ३५४; वाड़, २, पत्र सं० २४३

सामाजिक दृष्टिकोण से भी इस काल में (सन् १६६८-१७६५ ई०) मालवा में कई बहुत ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होगए। प्रान्त में मरहठों के बस जाने से यहाँ के प्रान्तीय सामाजिक जीवन में एक नया अंग उपस्थित होगया; वे केवल आक्रमणकारी ही नहीं थे, किन्तु प्रान्त के अधिपति बन कर इस प्रान्त में बस भी गए थे। उनके रहन-सहन एवं उनकी वेश-भूषा प्रान्त के लिए बिलकुल ही नई बातें थीं; पुनः मरहठों की विचार-धारा तथा उनका लक्ष्य भी पूर्णतया विभिन्न थे। दक्षिणी भारत के पहाड़ों के इन निवासियों का अशिष्टतापूर्ण उजड्ड व्यवहार एवं उद्धत ढंग मालवा-निवासियों को बिलकुल ही नहीं रुचा। प्रान्त की आबादी पहिले भी बहुत ही सम्मिश्रित थी और मरहठों के आ बसने से यहाँ एक और नवीन प्रकार की आबादी बढ़ गई। किन्तु राजपूतों की दृष्टि में मरहठों का न तो विशेष महत्त्व ही था और न कोई आदर ही; राजपूतों के लिए मरहठों का उत्थान एक निकट भूतकाल की ही घटना थी।

मालवा में सामाजिक परिवर्तन

किन्तु प्रान्त पर मरहठों का आधिपत्य होते ही इस प्रान्त का दिल्ली एवं मुग़ल साम्राज्य के साथ कोई सम्बन्ध न रहा; जिससे मालवा में मुस्लिम सभ्यता का प्रभाव दिन पर दिन घटने लगा। मरहठों की विचार-धारा, उनके आदर्श आदि का प्रभाव प्रान्त के तत्कालीन समाज पर पड़े बिना न रहा और इस प्रकार प्रान्त में धीरे-धीरे एक सम्मिश्रित संस्कृति उत्पन्न होने लगी। प्रान्त के मनुष्यों की वेश-भूषा में भी धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा, जिससे सूचित होता था कि प्रान्त पर मरहठों की संस्कृति का प्रभाव

धीरे-धीरे किन्तु निश्चितरूप से अवश्य पड़ रहा था।[१] मरहठों के कारण मालवा में हिन्दू संस्कृति को विशेष उत्तेजना मिली।[२] पुनः जब प्रान्त पर मरहठों का आधिपत्य होगया तब उनकी कितनी ही रीति-रस्मों को राजपूत राजाओं ने भी अपना लिया; इन राजपूत राज्यों की विचार-धारा में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। मरहठों की देखा-देखी अब राजपूत राज्यों में भी भाद्रपद मास में गणेशजी की पूजा होने लगी और मकर संक्रान्ति पर वहाँ भी तिल तथा गुड़ बँटने लगा।

पुनः जो-जो राजपूत राजा मुग़लों द्वारा दिए गए परगनों या जागीरों के आधार पर अपने राज्यों की स्थापना होना बताते थे, उन सब घरानों का अब समाज में आदर बढ़ गया। मुग़लों के दरबार में उन विभिन्न

---

[१] सीतामऊ राज्य की स्थापना से लेकर वर्तमान काल तक के सब नरेशों के चित्र सीतामऊ राज्य के संग्रह में विद्यमान हैं। विभिन्न नरेशों की वेश-भूषा और विशेषतया उनकी पगड़ी देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार उनमें धीरे-धीरे परिवर्तन होता गया। मालवा की आधुनिक पगड़ी (जिसके स्थान पर भी अब सर्व-प्रान्तीय "साफ़े" का अधिक प्रचलन हो रहा है) भी मुग़ल काल में शाही दरबार में पहनी जाने वाली पगड़ी तथा मरहठों की पगड़ी का एक अजीब सम्मिश्रण-मात्र है।

[२] मरहठों ने मालवा के ब्राह्मणों में अधिक धार्मिक भावनाओं एवं विचारों का संचार करने का प्रयत्न किया। उनके जीवन की प्रत्येक चर्या को नियमित करने के लिए नियम बनाए। वेश-भूषा जैसी साधारण सामाजिक बातों को भी धार्मिक रंग देकर उनके द्वारा किसी विशिष्ट आदर्श को ब्राह्मणों के सम्मुख समुपस्थित करने का प्रयत्न किया गया। पेशवा ने अपने सेनापतियों को आज्ञा दी थी कि ऐसे सब आदर्शों तथा ऐसी सब आज्ञाओं का पालन करवाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जावे। मन्दिरों आदि में पूजा करने वाले ब्राह्मण पुजारियों के निजी चाल-चलन, आचरण एवं उनकी योग्यता और विद्वत्ता की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। भा० इ० सं० मं० त्रै०, वर्ष ६, पृ० १४८–१५१, १५३–६

राज्यों की पद-मर्यादा एवं स्थिति के आधार पर जो भेद किया जाता था उस सब का अब अन्त होगया, और मरहठे आक्रमणकारियों के लिए सब छोटे-बड़े राज्य सर्वाधिकार प्राप्त स्वतन्त्र राजनैतिक सत्ताएँ बन गए; उन सबकी पद-मर्यादा एवं स्थिति में कोई विशेष भेद-भाव न रहा। इन राज्यों के शासक अब निरे ज़मींदार न रह कर अपने-अपने राज्यों के पूरे धाता-विधाता बन गए थे, एवं सामाजिक मामलों में भी उन शासकों का ही बोलबाला होगया। वे अब राजपूताने के राजपूत राजाओं के हाथ की कठ-पुतली मात्र न रह कर अपने-अपने राज्य के राजपूत समाज के नेता बन बैठे, और अब मालवा प्रान्त के सामाजिक मामलों में उनकी सम्मति का दूसरे राजपूत राज्यों में भी पूरा-पूरा आदर होता था।

किन्तु समाज का ढाँचा और संगठन अब भी मध्यकालीन ढंग का ही था। सुदूर गाँवों के निवासी तब भी भूत-प्रेत एवं डाकनियों में विश्वास करते थे। जो कोई भी व्यक्ति उतना खर्च कर सकता था उसका मनोरंजन करने के लिए तब भी नाचने वाली स्त्रियाँ या रण्डियाँ प्रयत्न करती थीं।

भाषा तथा साहित्य की प्रगतियाँ

मरहठों का मालवा पर आधिपत्य होना तथा उनके इस प्रान्त में बस जाने के साथ ही इस प्रान्त की भाषा के इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारम्भ होता है। इस प्रान्त में हिन्दी की एक विशिष्ट बोली, जो 'मालवी' कही जाती है, बोली जाती थी। इस मालवी बोली में ब्रजभाषा, गुजराती, डिङ्गल या राजस्थानी, उर्दू तथा फ़ारसी भाषाओं का सम्मिश्रण था; अब उसपर मराठी भाषा का भी प्रभाव पड़ा। हज़ारों मरहठे सैनिकों के दल

मालवा में होकर गुज़रते थे, कई बार यहीं पड़ाव कर इसी प्रान्त में महीनों ठहरते थे, और कई मरहठे तो इसी प्रान्त में बस भी गए; इन सब बातों का मालवी बोली पर बहुत प्रभाव पड़ा। बोल-चाल में इसी बोली का प्रयोग होता था, और राजपूत राज्यों में पत्र-व्यवहार, सनदें आदि अन्य कागज़ात भी इसी बोली में लिखे जाते थे। गाँवों में भी किसान आदि यही बोली बोलते थे।

किन्तु कविता के लिए कविगण ब्रजभाषा का ही प्रयोग करते थे। राजपूत राजाओं ने भी ब्रजभाषा के कवियों को आश्रय दिया। कवि अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में सैकड़ों छन्द बनाते थे और वे राजा अपनी प्रशंसा सुन कर प्रसन्न होते थे, उन कवियों को बहुत कुछ पुरस्कार एवं सम्मान भी देते थे। लाल, छत्रसाल बुन्देले का राजकवि था और उसने अपने आश्रयदाता के वीरतापूर्ण कार्यों का "छत्र प्रकाश" में विशद् वर्णन किया है। सन् १७४६ ई० में जदुनाथ कवि ने "खाण्डेराय रासो" की रचना की। इस ग्रन्थ में नरवर राज्य के मन्त्री एवं वीर योद्धा, खाण्डेराय के पराक्रम का वर्णन है, और इस प्रकार कवि ने ४० वर्षों का (सन् १७०४-१७४४ ई०) पूर्वी मालवा का इतिहास लिख डाला। खाण्डेराय के पुत्रों ने भी नरवर एवं आस-पास के राज्यों के मामलों में प्रमुख रूप से भाग लिया था। जदुनाथ कवि ने उसके समकालीन अन्य कवियों की कविता भी उद्धृत की है; कई कवियों के तो सिर्फ़ नामों का ही उल्लेख किया है। इस काल में पश्चिम-दक्षिणी तथा मध्य मालवा में कोई भी साहित्यिक प्रगति नहीं देख पड़ती है। इसके विपरीत पूर्वी तथा उत्तरी मालवा में और बुन्देलखण्ड में कई कवि पैदा हुए, किन्तु इनमें से बहुत

ही थोड़े कवि ऐसे थे, जिनकी गणना मध्यम या उच्च कोटि के कवियों में की जा सके।

मरहठे सेनापति तथा कर्मचारी मराठी भाषा का ही प्रयोग करते थे। हिन्दी-भाषा-भाषी जन समाज के साथ बहुत काल तक सम्पर्क में आकर धीरे धीरे मराठी भाषा में भी बहुत-कुछ परिवर्तन होने लगा। भोपाल के रुहेला शासकों के राज दरबार की भाषा फ़ारसी ही थी। एवं उन्होंने फ़ारसी को ही प्रश्रय दिया। यार मुहम्मद ख़ाँ के राजदरबार में रह कर उसी की संरक्षता में सन् १७४१-२ ई० में रुस्तम अली ने 'तारीख़-इ-हिन्दी' नामक इतिहास-ग्रन्थ लिखकर समाप्त किया। यह ग्रन्थ अपने ढंग का एक ही है; और इस प्रान्त में उस ग्रन्थ के बाद उस काल का कोई दूसरा विशेष उल्लेखनीय इतिहास-ग्रन्थ नहीं लिखा गया।

बहुत काल तक अराजकता रहने के कारण तथा निरन्तर होने वाले उपद्रवों से भी इस प्रान्त के सांस्कृतिक जीवन को बहुत क्षति पहुँची, और

शिल्प तथा ललित कलाएँ

इस काल में ललित कलाओं तथा शिल्प कला में किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं हुई। मुग़ल सम्राट् या साम्राज्य की ओर से मालवा के कलाकारों का किसी प्रकार की उत्तेजना या प्रश्रय पाने की आशा रखना व्यर्थ था। मरहठे सेनापति निरे अक्खड़ योद्धा थे, दिल को छू सकने वाली सुकोमल भावनाओं एवं ललित कलाओं की ओर उनकी विशेष अभिरुचि न थी। चढ़ाई करने, लड़ाइयों में विरोधियों को हराने एवं नए-नए देशों को जीत कर उनपर अपना आधिपत्य स्थापित करने में ही वे जीवन भर लगे रहे; उन्हें इतना अवसर कहाँ मिलता था कि वे प्रान्त के सांस्कृतिक

जीवन की उन्नति तथा उसके विकास की ओर कुछ भी ध्यान दे सकें। जयसिंह ने उज्जैन में वेधशाला स्थापित कर दी थी; किन्तु उसके बाद उस शास्त्र की उन्नति तथा उसमें अधिकाधिक खोज के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया गया। शासकों ने प्रजा की शिक्षा की ओर भी न स्वयं ध्यान दिया और न दूसरों को इस कार्य के लिए मदद ही दी। मरहठों के लिए मालवा तब भी एक विदेशी प्रान्त था, मालवा तब तक उनका अपना प्रान्त नहीं हो गया था। राजपूत राजाओं को भी अपनी ही पड़ी थी; अपने राज्यों पर शासन करते हुए उन्हें अधिक काल बीता न था, एवं वे इस समय अपने राज्यों को सुसंगठित करने में ही लगे हुए थे। इन राज्यों से मरहठे सेनापति निरन्तर द्रव्य माँगा करते थे, एवं इन राज्यों के पास विशेष द्रव्य न था, और न उनकी आमदनियाँ ही बहुत बड़ी थीं, एवं कई बार वहाँ के राजाओं को राज्य का शासन चलाना और अपनी पद-मर्यादा बनाए रखना भी कठिन हो जाता था; तब शिल्प तथा ललित कलाओं को उत्तेजना देने के लिए उनके पास द्रव्य कहाँ से आता? इस काल में भोपाल का राज्य ही एक-मात्र अपवाद था, जिसने अपने प्रारम्भिक काल में इस्लाम-नगर में सुन्दर-सुन्दर महल आदि बनवाने में बहुत कुछ द्रव्य व्यय किया था, किन्तु पिछले दिनों में तो वहाँ भी परिस्थिति बदल गई थी।

इस परिवर्तन-काल में क्रियात्मक प्रवृत्तियों का पूर्ण अभाव

इस पूर्व-काल में (१६९८-१७६५ ई०) प्रारम्भ से अन्त तक निरन्तर परिवर्तन होते ही रहे, जिनके फलस्वरूप यहाँ का समाज, संस्कृति तथा आदर्शों में एकबारगी क्रान्ति हो गई। नई-नई शक्तियों ने प्रान्त में प्रवेश किया, और उन परिवर्तनों के कारण प्रान्त का राजनैतिक नक़शा पूर्णतया बदल गया। परस्पर-

विरोधी सत्ताओं, विभिन्न आदर्शों तथा प्रतिकूल प्रवृत्तियों को एक दूसरे के अनुकूल बनाने एवं उन झगड़ों को सुलझाने में भी बहुत समय लगा। इन सब परिवर्तनों के बाद जब नवीन मालवा एक नए ढाँचे में ढल गया, और उसका वह रूप जब कुछ स्थायी हो पाया तब जाकर कहीं आधुनिक मालवा की विशेषताएँ देख पड़ने लगीं। और शान्ति के उस अनुकूल वातावरण में ही क्रियात्मक प्रवृत्तियाँ यत्र-तत्र दिखाई दीं। जब देश में निरन्तर राजनैतिक क्रान्तियाँ एवं परिवर्तन होते रहते हैं, जब उस देश में अराजकता का एक-छत्र शासन होता है तब अराजकता की तपतपाई हुई उस भट्टी में किसी भी प्रकार की महान क्रियात्मक प्रवृत्तियों के सुकोमल अंकुर फूटने नहीं पाते। प्रान्त में उस समय विद्या का विकास न हो पाया एवं जनसमाज का बौद्धिक पतन होना एक अवश्यम्भावी बात थी। मरहठों के आगमन तथा उनके आधिपत्य के इस भयंकर धक्के को खाकर भी क्या पतनोन्मुख मालवा पुनः उन्नति न करेगा ? क्या मरहठे पुनः मालवा को वही प्राचीन महत्ता प्रदान कर सकेंगे ? इस अराजकतापूर्ण शताब्दी के उत्तरकाल के इतिहास का पूर्ण अध्ययन करने के बाद ही इन प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दिया जा सकता है।

ग्रन्थ-निर्देश

इस काल के (१६६८-१७६५ ई०) मालवा के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली ऐतिहासिक सामग्री की विवेचना

यदि अपने "ए मेमायर आफ़ सेण्ट्रल इण्डिया" नामक ग्रन्थ में सर जान मालकम द्वारा लिखित कुछ अध्यायों को छोड़ दिया जाय तो यह कहना पड़ेगा कि अब तक किसी ने भी इस युग में मालवा की परिस्थिति का सम्बद्ध इतिहास लिखने का कोई प्रयत्न नहीं किया; सर जान मालकम लिखित वे कुछ अध्याय भी बहुत ही संक्षेप में लिखे गए थे और आधुनिक खोजों के आधार पर उनमें पूर्ण संशोधन करने की बहुत आवश्यकता है। एवं इस युग के इतिहास का अध्ययन करने वाले के लिए यह अत्यावश्यक हो जाता है कि मूल आधार-ग्रन्थों के ही आधार पर इस काल के इतिहास को वह नए सिरे से लिखे। विलियम इर्विन और सर यदुनाथ सरकार ने मुग़ल साम्राज्य के पतन और अन्त का इतिहास लिखने में समस्त उपलब्ध आधार-ग्रन्थों का उपयोग किया था, एवं उन दोनों इतिहासकारों के ग्रन्थों से मालवा के इस काल के इतिहास-सम्बन्धी खोज करने वाले को बहुत सहायता मिलती है। किन्तु इर्विन का ग्रन्थ लिखे जाने के बाद मराठी भाषा में बहुत सी नई ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हुई है, एवं इस सामग्री के आधार पर उस युग के इतिहास में यत्र-तत्र हेरफेर तथा संशोधन करने की बहुत कुछ आवश्यकता प्रतीत होती है। सर यदुनाथ सरकार ने अपना ग्रन्थ लिखते समय केवल मुग़ल साम्राज्य के केन्द्रीय शासन की ही ओर

ध्यान रखा एवं ऐसी कई घटनाओं और बातों की, जो केवल प्रान्तीय महत्त्व की ही थी, उन्होंने उपेक्षा की और अपने ग्रन्थ में उनका उल्लेख नहीं किया।

इस अराजकतापूर्ण शताब्दी का यह सारा पूर्व काल प्राप्य ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर तीन प्रधान विभागों में विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम विभाग (१६९८-१७१९ ई०) के आधार-ग्रन्थ

प्रथम विभाग (१६९८—१७१९ ई०) प्रधानतया मुग़ल काल कहा जा सकता है, और इस काल के आधार-ग्रन्थ विशेषतया फ़ारसी भाषा में ही मिलते हैं। मराठी इतिहास ग्रन्थों या पत्रों में यत्र-तत्र कहीं-कहीं कुछ इने-गिने स्थानों पर ही उस काल में मालवा पर होने वाले मरहठों के प्रारम्भिक आक्रमणों से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का कुछ उल्लेख मिलता है। 'मासीर-इ-आलमगीरी' में सम्राट् द्वारा की गई नियुक्तियों के सही-सही सन्-संवत् मिल जाते हैं; और अपने ग्रन्थ में ख़फ़ी खाँ कई प्रान्तीय घटनाओं का भी विस्तार पूर्वक वर्णन करता है। भीमसेन कृत 'नुस्खा-इ-दिलकश' में कुछ अधिक घटनाओं का विवरण पाया जाता है। इस युग के प्रारम्भिक वर्षों की घटनाओं का प्रधान आधार उस काल के शाही दरबार के 'अख़बारात' ही हैं। औरंगज़ेब के मुन्शी इनायतुल्ला ने अपने "अहकाम-इ-आलमगीरी" नामक ग्रन्थ में औरंगज़ेब को लिखे गए पत्रों एवं उनपर औरंगज़ेब द्वारा दिए गए हुक्मों का संग्रह किया है, जिस से मालवा में बिदार बख़्त की सूबेदारी के काल की घटनाओं पर बहुत प्रकाश पड़ता है। "वीर विनोद" में प्रकाशित पत्रों से हमें गोपालसिंह चन्द्रावत के विद्रोह सम्बन्धी कई नई बातें ज्ञात होती हैं।

नवाज़िश ख़ाँ सन् १७०० ई० से १७०४ ई० तक माण्डू का क़िलेदार रहा था; उसके पत्र-संग्रह से माण्डू पर होने वाले मरहटों के प्रारम्भिक आक्रमणों का बहुत कुछ हाल ज्ञात होता है, और उन वर्षों में दक्षिणी मालवा की परिस्थिति का भी पूरा-पूरा पता लगता है।

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद के लगातार अठारह वर्षों में (१७०७—१७२४ ई०) भी शाही दरबार के "अख़बारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला" लिखे गए थे, और वे अब भी जयपुर राज्य के संग्रहालय में सुरक्षित रखे हुए हैं; किन्तु अब तक इतिहास के किसी भी विद्यार्थी को यह सौभाग्य प्राप्त न हुआ कि वह उनको पढ़ कर उनका उपयोग कर सके या उनकी प्रतिलिपियाँ ले सके। एवं उनसे ज्ञात हो सकने वाले इतिहास के अभाव के कारण ही इतिहासकार को बाध्य होकर कामवर, मिर्ज़ा मुहम्मद, आदि समकालीन इतिहासकारों के फ़ारसी ग्रंथों की शरण लेनी पड़ती है; इन फ़ारसी ग्रन्थों में कई एक प्रान्तीय घटनाओं का भी यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। विलियम इर्विन ने इस युग सम्बन्धी सब फ़ारसी ग्रन्थों का उपयोग किया, किन्तु इर्विन ने सन् १७१२ ई० में रामपुरा के रतनसिंह के तथा अमानत ख़ाँ के सुनेरा के युद्ध के समान केवल प्रान्तीय महत्त्व रखने वाली घटनाओं को प्रायः छोड़ दिया है। एवं इतिहासकार के लिए यह अत्यावश्यक हो जाता है कि वह इन सब फ़ारसी ग्रन्थों को पढ़ कर उन में से ऐसी घटनाओं को एकत्रित करे। ये सब फ़ारसी ग्रन्थ अब तक प्रकाशित नहीं हुए एवं प्रत्येक इतिहासकार को उनकी हस्तलिखित प्रतियों की खोज में एक संग्रह से दूसरे संग्रह तक भटकना पड़ता है। इस काल में प्रथम बार ऐसी मराठी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होने लगती है जिससे

तत्कालीन घटनाओं पर यत्र-तत्र प्रकाश पड़ता है। सन् १७१३ ई० में पेशवा के उत्थान के बाद ही जब मरहठों ने पुनः मालवा की ओर ध्यान दिया तब की घटनाओं सम्बन्धी कुछ पत्र "सिलेक्शन्ज़ फ्राम दी पेशवा दफ़्तर" के खण्डों में प्रकाशित किए गए हैं। राजवाड़े के छठवें भाग में भी इस युग से सम्बन्ध रखने वाले कई महत्त्व-पूर्ण पत्र प्रकाशित हुए हैं, किन्तु उनकी सही-सही तारीखें तथा सन्-संवत् निश्चित करना आवश्यक है; राजवाड़े द्वारा निश्चित कई तारीखें ग़लत जान पड़ती हैं।

पुनः इस युग में मुग़लों के शाही दरबार में उपस्थित होने के लिए कई युरोपीय यात्री समय-समय पर भारत में आए; उत्तरी-भारत को जाते समय वे मालवा में होकर गुज़रते थे, उनमें से कई ने अपनी भारत-यात्रा का विवरण भी लिखा। इन यात्रियों के यात्रा-विवरणों से भी इस युग के मालवा के इतिहास पर कुछ-कुछ प्रकाश पड़ सकता है, क्योंकि उन्होंने मालवा का विशद-विवरण लिखा है तथा प्रान्तीय घटनाओं का भी यत्र-तत्र उल्लेख किया है। इस प्रकार के यात्रा-विवरणों के लेखकों में इटालियन यात्री मनुची एवं डच यात्री विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं। 'कर्न इन्स्टिट्यूट' के प्रधान, डाक्टर जे० पी० एच० व्होगल ने केटेलार के यात्रा-विवरण का संक्षिप्त अनुवाद किया है; एवं हालेण्ड से आने वाले अन्य यात्रियों के मूल ग्रन्थों का सम्पादन भी वे कर रहे हैं।

दूसरे विभाग (१७१९-१७४१ ई०) के आधार ग्रन्थ

सन् १७१९ ई० के बाद फारसी आधार-ग्रन्थों का महत्त्व घटने लगता है। देहली या उत्तरी भारत में रहकर फ़ारसी इतिहास ग्रन्थों के रचयिताओं को मालवा प्रान्त के आन्तरिक मामलों में उतनी दिलचस्पी नहीं रह जाती है। साम्राज्य के केन्द्र दिल्ली, और उसके

आस-पास के प्रान्तों की ओर ही उनका ध्यान केन्द्रीभूत हो जाता है, एवं फ़ारसी इतिहासों के ये लेखक सन् १७२३ ई० के बाद मालवा प्रान्त के लिए कुछ पंक्तियाँ ही लिख कर सन्तोष कर लेते हैं, और उन पंक्तियों में भी किसी व्यक्ति की नियुक्ति या उसके हटाए जाने का ही उल्लेख मिलता है। यही कारण है कि इन फ़ारसी इतिहासों में सन् १७२८ ई० में मालवा पर चिमाजी की चढ़ाई तथा गिरधर बहादुर की पराजय और मृत्यु का भी कोई विवरण नहीं मिलता है; और दूसरे इतिहासकारों की इस प्रवृत्ति का प्रभाव मालवा प्रान्त में ही भोपाल में रह कर इतिहास लिखने वाले रुस्तम अली पर भी पड़े बिना न रह सका, वह भी इस महत्त्वपूर्ण घटना का कुछ ही पंक्तियों में सरसरी तौर पर अनिश्चित शब्दों में उल्लेख कर आगे लिखने लगा। अतएव गिरधर बहादुर तथा दया बहादुर की पराजय और मृत्यु सम्बन्धी वाद-विवाद का फ़ैसला करने के लिए इतिहासकार को गिरधर बहादुर के घराने के फ़ारसी पत्र-संग्रह एवं मराठी पत्रों का आधार ढूँढना पड़ा। मालवा में बंगश की सूबेदारी की घटनाओं का विस्तृत विवरण बंगश के ख़ानगी पत्र संग्रह "ख़जिस्ता कलाम" के ही आधार पर लिखा गया है।

इस विभाग के पिछले वर्षों का इतिहास लिखते समय इन इतिहासकारों ने मालवा की उत्तरी सीमा पर निरन्तर होने वाले मुग़ल-मरहठा द्वन्द्व का विवरण लिखा है, किन्तु उस वृत्तान्त में भी केवल मुग़ल सेनापतियों तथा सेनाओं की गति-विधि और उन चढ़ाइयों के परिणामों का ही उल्लेख मिलता है। सम्राट् की निरन्तर बदलने वाली शान्ति तथा युद्ध की भिन्न-भिन्न नीतियाँ एवं शाही दरबार में विभिन्न दरबारियों तथा कर्मचारियों की

पेचीदा उलटी-सीधी चालें दिल्ली में रहने वाले इन इतिहासकारों के लिए अनबूझ पहेलियाँ थीं; वे इन सब गुत्थियों को नहीं सुलझा सके थे; एवं उन इतिहासकारों के विवरण की गलतियाँ दुरुस्त करने तथा जहाँ वे चुप रहे या जो बातें उन्हें ज्ञात न थीं उन्हें जानने के लिए हमें महत्त्वपूर्ण मौलिक मराठी आधार-ग्रन्थों की सहायता लेनी पड़ती है। इन फ़ारसी इतिहासकारों ने सन् १७३७-८ ई० में मालवा पर निज़ाम की चढ़ाई तथा भोपाल में मरहठों के साथ होने वाले द्वन्द में निज़ाम की विफलता का अपने ग्रन्थों में बहुत ही विशद विवरण अवश्य लिखा है।

इस युग-विभाग में मराठी काग़ज़-पत्रों तथा आधार-ग्रन्थों का महत्त्व बहुत बढ़ता जाता है, और ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है त्यों-त्यों इतिहासकार के लिए वे ही एक-मात्र महत्त्वपूर्ण आधार-ग्रन्थ रह जाते हैं। मराठी भाषा में लिखे गए तथा पेशवा के दफ़्तर में संग्रहीत काग़ज़-पत्रों आदि का प्रामाणिक संग्रह "सिलक्शन्ज़ फ्राम दी पेशवा दफ़्तर" नामक ग्रन्थ के ४५ खण्डों में प्रकाशित हुआ। इन खण्डों की सहायता से तथा उनमें प्रकाशित पत्रों आदि के साथ मिलान कर अब इतिहासकार, वाड़, पारसनीस, साने, खरे आदि विद्वानों द्वारा प्रकाशित काग़ज़-पत्रों, सनदों आदि की तारीख़ें और सन्-संवत बड़ी ही आसानी से दुरुस्त कर सकता है।

इस युग के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली प्रान्तीय ऐतिहासिक सामग्री भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, और उसकी सहायता से प्रान्त की तत्कालीन परिस्थिति तथा प्रान्तीय महत्त्व की अनेकानेक तत्कालीन घटनाओं पर प्रकाश पड़ सकता है, किन्तु अभी तक इस क्षेत्र में खोज का कोई विशेष कार्य नहीं हुआ है। इन्दौर के पुराने ज़मींदार के

मण्डलोई दफ़्तर, एवं राजवाड़े द्वारा अपने ग्रन्थ के छटवें खण्ड में प्रकाशित उसी प्रकार के पत्रों के एक छोटे से संग्रह के अतिरिक्त अभी तक दूसरी कोई सामग्री प्रकाश में नहीं आई है। यह सम्भव है कि भोपाल राज्य के मुहाफ़िज़खाने में कई पुराने महत्त्वपूर्ण काग़ज़ात हों, किन्तु शायद अभी तक उनकी पूरी-पूरी जाँच भी नहीं हुई है। हिन्दी के कवियों ने भी इतिहास सम्बन्धी बहुत ही कम ग्रन्थों की रचना की है। लाल कवि ने बुन्देलों का इतिहास लिखा था; जदुनाथ, उद्योतराव आदि कवियों ने नरवर के खाण्डेराय के वीरतापूर्ण कार्यों की प्रशंसा में कविता की, और जदुनाथ कवि ने खाण्डेराय रासो में उन सब को संग्रहीत कर दिया। किन्तु इन दोनों ग्रन्थों से मध्य मालवा के इतिहास पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

सन् १७४१ ई० में मुग़ल सम्राट् ने मालवा प्रान्त मरहठों को सौंप दिया, और उसके साथ दिल्ली में रहने वाले फ़ारसी इतिहासकारों का

तीसरे विभाग (१७४१-१७६५-ई०) के आधार-ग्रन्थ

भी मालवा प्रान्त से सम्बन्ध टूट गया। मुग़ल कर्मचारी प्रान्त को छोड़ कर चल दिये, एवं सन् १७४१ ई० के बाद के इस युग-विभाग (सन् १७४१-१७६५ ई०) का फ़ारसी भाषा में मालवा प्रान्त का इतिहास लिखने की किसे फ़िक्र होती? पुनः इस काल में विभिन्न राजाओं या कर्मचारियों को भी फ़ारसी भाषा में पत्र लिखने का कोई अवसर आता न था; एवं उनके फ़ारसी-पत्रों के संग्रह भी नहीं मिलते हैं। एवं इस काल के इतिहास की जितनी भी सामग्री प्राप्य है वह एकपक्षीय ही है; सन् १७४१ ई० के बाद का मालवा का इतिहास लिखने में इतिहासकार को मराठी काग़ज़-पत्रों का ही आश्रय लेना पड़ता है; और

मराठी भाषा में भी मालवा सम्बन्धी बहुत ही थोड़ी सामग्री आज प्राप्य है, बाक़ी सब शायद समय के साथ ही नष्ट हो गई। इस युग में मालवा पर मरहठों का आधिपत्य हो गया था, किन्तु तब भी मरहठे सेनापतियों तथा राजनीतिज्ञों का ध्यान उत्तरी भारत की ही ओर आकृष्ट होता रहा, एवं जो काग़ज़-पत्र आज प्राप्य हैं उनमें मालवा सम्बन्धी दो-तीन बातों का ही उल्लेख मिलता है; या तो प्रान्त में उठने वाले विद्रोहों का वर्णन होता है, या मालवा में होकर गुज़रने वाली सेनाओं की गति-विधि का वृत्तान्त मिलता है या किसी राजा वा ज़मींदार द्वारा मरहठों की चौथ आदि के न चुकाये जाने की शिकायत देख पड़ती है। इस काल के इतिहास सम्बन्धी अन्य मराठी पत्रों तथा सामग्री के अप्राप्य होने या खो जाने का कारण यह है कि इस समय तक मरहठे सेनापति मालवा में अपना शासन सुसंगठित नहीं कर पाये थे; प्रान्तीय शासन का कार्य होलकर और सिन्धिया के हाथ में था और उनका भी मालवा में स्थायी केन्द्र नहीं बन पाया था, एवं उस प्रान्त के तत्कालीन शासन-सम्बन्धी काग़ज़-पत्र एवं हिसाब के बही-खाते आदि उन दोनों मरहठे सरदारों के वंशपरम्परागत दिवानों, हिसाब रखने वाले कर्मचारियों, या उनके विश्वास-पात्र सेनाध्यक्षों तथा अन्य कर्मचारियों के वंशजों के ही अधिकार में रह गए; पेशवा के दफ़्तर, मरहठों के पूना के महाफ़िज़खाने या उन सेनापतियों के पुराने काग़ज़ों में कहीं भी उनका पता नहीं लगता है। एवं जो मराठी काग़ज़, पत्र, सनदें आदि या तो पेशवा के दफ़्तर, रोज़नामचे, आदि में पाए गए थे और जो किसी न किसी संग्रह में प्रकाशित हो गए हैं, या जो पत्र आदि इन्दौर के मण्डलोई दफ़्तर, चन्द्रचूड़ दफ़्तर, पुरन्दरे दफ़्तर आदि के समान किसी

व्यक्ति या घराने के खानगी संग्रह में सुरक्षित थे और जो किसी भी प्रकार से प्रकाशित हो गए हैं, वे ही पत्र या कागज़ात आज इतिहासकारों को प्राप्य हैं, और उन्हीं के आधार पर मालवा में मरहठों के आक्रमण, आधिपत्य तथा वहाँ उनकी सत्ता की स्थापना का इतिहास लिखा गया है।

सन् १७४१-६५ ई० के इस काल की प्रान्तीय महत्त्व की आन्तरिक घटनाओं आदि पर अधिक प्रकाश डालने के लिए यह अत्यावश्यक है कि स्थानीय सामग्री की खोज की जावे; इस क्षेत्र में अब तक कोई भी खोज नहीं हुई है, एवं अब भी यह आशा की जाती है कि इस क्षेत्र में खोज करने से बहुत कुछ नई सामग्री प्राप्त हो सकेगी। फालके ने "शिंदेशाही इतिहासांची साधनें" के प्रथम दो खण्डों में कोटा के गुलगुले दफ़्तर से प्राप्त कई पत्र प्रकाशित किए हैं; किन्तु उन पत्रों में विशेषतया कोटा और वहीं के अन्य पड़ोसी राज्यों को चौथ आदि के लेने-देने का ही उल्लेख मिलता है, एवं उन दो प्रकाशित खण्डों से मालवा के इतिहास सम्बन्धी हमारे ज्ञान में विशेष वृद्धि नहीं होती है। स्थानीय सामग्री के इसी अभाव के कारण ही इतिहासकार, अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल में मालवा प्रान्त की आर्थिक परिस्थिति तथा सांस्कृतिक प्रवृतियों का निश्चित रूप से पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर सकता है।

आधार-ग्रन्थ

(क) फ़ारसी

१. **मासीर-इ-आलमगीरी**—साक़ी मुस्तैद ख़ाँ कृत; बिबलोथिका इण्डिका, कलकत्ता।

२. **नुस्ख़ा-इ-दिलक़श**—भीमसेन कृत; सरकार की हस्त-लिखित प्रति।

सर यदुनाथ सरकार ने अपने 'हिस्ट्री आफ़ औरंगजेब' ग्रन्थ में इस ग्रन्थ का बहुत उपयोग किया है। जिस काल के इतिहास की मैंने खोज की है, उस काल के भाग में यत्र-तत्र मालवा प्रान्त की कई घटनाओं के जो उल्लेख मिलते हैं, उनसे प्रान्तीय इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है; उदाहरणार्थ, गोपालसिंह चन्द्रावत का विद्रोह।

३. **अख़बारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला**—केवल औरंगजेब के शासन काल के ही अखबारात प्राप्य हैं। जयपुर राज्य के संग्रह में से लेकर कई तो टाड ने रायल एशियाटिक सोसाइटी, लण्डन को प्रदान कर दिए, जिनकी नक़लें सर यदुनाथ के संग्रह में विद्यमान हैं। औरंगजेब के शासन काल के भी कई अखबारात जयपुर राज्य के संग्रह में रह गए, जो आज भी वहीं सुरक्षित हैं। सर यदुनाथ ने इन अखबारात की भी नक़लें लेकर औरंगज़ेब के शासन काल के अख़बारात के अपने संग्रह को सम्पूर्ण बना लिया है। इन अखबारात की पिछले सालों की जिल्दों में से कई, अब तक अज्ञात किन्तु प्रान्तीय दृष्टि से बहुत ही महत्त्व की, घटनाओं का पता लगता है।

४. **चहार गुलशन**—छत्रमन सक्सेना कृत; खुदाबख्श लायब्रेरी पटना की हस्तलिखित प्रति। सर यदुनाथ सरकार ने 'इण्डिया आफ़ औरंगज़ेब' (१९०१ ई०) में इस ग्रन्थ के आवश्यक स्थलों का पूरा-पूरा अनुवाद दिया है।

५. **अहकाम-इ-आलमगीरी**—इनायतुल्ला द्वारा संग्रहीत, जिल्द १। सरकार

की हस्त-लिखित प्रति रामपुर राज्य के संग्रहालय की प्रति की नक़ल है; सरकार ने अपनी प्रति में यह भी नोट कर लिया है कि खुदाबख़्श लायब्रेरी की प्रति में कहाँ कहाँ और क्या क्या पाठान्तर है। मैंने सरकार की ही प्रति का उपयोग किया था।

इस संग्रह में पत्र कालानुक्रम से नहीं दिए गए हैं, और बहुत ही थोड़े पत्रों की तारीखें या सन्-संवत् दिये हैं।

कुछ पत्रों की तारीखें और सन्-संवत् निश्चित करने का मैंने प्रयत्न किया है।

६. **ख़ुलासात-उत्-तवारीख़**—सुजान राय कृत; खुदाबख़्श लायब्रेरी, पटना की प्रति।

प्रान्त सम्बन्धी वर्णन एवं अन्य ज्ञातव्य बातों के लिए यह एक बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित पुरानी प्रति मेरे संग्रह में भी है।

७. **नवाज़िश ख़ाँ का पत्र-संग्रह**—सरकार की प्रति के अतिरिक्त इस ग्रन्थ की दूसरी कोई प्रति देखने को नहीं मिली।

पत्रों का यह एक छोटा सा संग्रह है। सन् १७००–१७०४ ई० में दक्षिणी मालवा की परिस्थिति एवं वहाँ के मामलों पर बहुत प्रकाश पड़ता है। सन् १७०४ ई० में माण्डू पर होने वाले मरहठों के आक्रमण सम्बन्धी कई नई बातें इस ग्रन्थ में मिलती हैं।

८. **कलिमात्-इ-तय्यीबात**—रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल की प्रति।

औरंगज़ेब के कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण पत्र इस संग्रह में मिलते हैं, जिनसे मालवा के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

९. **आज़म-उल्-हर्ब**—ब्रिटिश म्यूज़ियम, ओरियण्टल मेनुस्क्रिप्ट नं० १८९९।

इस ग्रन्थ की चित्रित प्रतिलिपि मैंने करवाई है। दक्षिण से आजम के रवाना होने से जाजव के युद्ध तक का विवरण इस ग्रन्थ में मिलता है। सन् १७०७ ई० के फ़रवरी-मई महीनों में मालवा की परिस्थिति सम्बन्धी कुछ बातों का भी पता इस ग्रन्थ से लगता है।

१०. **मिरात्-इ-अहमदी**—गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, ३ खण्ड।

११. **अजायब-उल्-आफ़ाक**—ब्रिटिश म्यूज़ियम, ओरियण्टल मेनुस्क्रिप्ट नं० १७७६

इस ग्रन्थ की चित्रित प्रतिलिपि मैंने करवाई है। गिरधर बहादुर और उसके पुत्र, भवानीराम के नाम सम्राट् एवं साम्राज्य के उच्च कर्मचारियों द्वारा लिखे गए पत्र तथा उन पत्रों के उत्तरों की नक़लें इस पत्र-संग्रह में दी गई हैं। गिरधर बहादुर सम्बन्धी पत्र बहुत ही थोड़े हैं, और उन पत्रों से मालवा में उसकी सूबेदारी के बारे में विशेष पता नहीं लगता है। भवानीराम की अल्प-कालीन होते हुए भी घटनापूर्ण सूबेदारी का पूरा विवरण जानने के लिए फ़ारसी भाषा में यही एक-मात्र आधार ग्रन्थ है।

१२. **तारीख़-इ-हिन्दी**—रुस्तम अली कृत; ब्रिटिश म्यूज़ियम, ओरियण्टल मेनुस्क्रिप्ट नं० १६२८

इस ग्रन्थ की चित्रित प्रतिलिपि मैंने करवाई है। भोपाल में रह कर सन् १७४१–२ ई० में रुस्तम अली ने इस ग्रन्थ की रचना की थी। लेखक की सम-कालीन घटनाओं के लिए यह ग्रन्थ एक स्वतन्त्र आधार-ग्रन्थ माना जा सकता है। किन्तु मुग़ल-मरहठा द्वन्द के प्रधान घटनास्थल से दूर एवं असम्बद्ध होने के कारण कई स्थानों पर लेखक अनेक ग़लतियाँ भी कर बैठा है। भोपाल राज्य के प्रारम्भिक इतिहास पर भी बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है, किन्तु अपने आश्रय-दाताओं-सम्बन्धी अरुचिकर घटनाओं के बारे में लेखक चुप रह जाता है या अस्पष्ट शब्दों में कुछ लिख कर उन्हें टाल जाता है, उदाहरणार्थ सन् १७२३ ई० में निज़ाम के हाथों दोस्त मुहम्मद की पराजय, तथा सन् १७३१ ई० में बंगश के प्रति यार मुहम्मद के विश्वासघात का उल्लेख किया जा सकता है।

१३. **मुन्तख़ब-उल्-लुबाब**—ख़फ़ी खाँ कृत, जिल्द २; बिबलोथिका इण्डिका, कलकत्ता।

१४. **मासीर-उल्-उमरा**—जिल्दें १–३; बिबलोथिका इण्डिका, कलकत्ता।

दूसरे आधार ग्रन्थों के आधार पर ही इस ग्रन्थ की रचना हुई है, परन्तु यह एक बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ है।

१५. **ख़जिस्ता-कलाम**—साहिब राय कृत; इण्डिया आफ़िस मेनुस्क्रिप्ट नं० १८१५

इस ग्रन्थ की चित्रित प्रतिलिपि मैंने करवाई है। मुहम्मद बंगश के मुन्शी, साहिब राय ने बंगश को लिखे गए तथा बंगश द्वारा लिखे गए पत्रों का यह संग्रह किया था।

"बंगश नवाब्ज़ आफ़ फर्रुख़ाबाद" शीर्षक लेख लिखते समय वि० इर्विन ने इस ग्रन्थ का पूर्ण उपयोग कर लिया था।

१६. **रोज़नामचा**—मिर्ज़ा मुहम्मद कृत; सरकार की प्रति।

फर्रुख़सियर के शासन काल में मालवा सम्वन्धी घटनाओं का कुछ-कुछ उल्लेख इस में यत्र-तत्र मिलता है।

१७. **तारीख़-इ-चग़ताई**—कामवर कृत।

ख़ास-ख़ास ओहदों पर नियुक्तियाँ तथा ऐसी ही राज्यकार्य सम्बन्धी अन्य घटनाओं के सन्-संवत् एवं उनके विवरण के लिए यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है।

१८. **मुनव्वर-इ-कलाम**—शिवदास कृत; ब्रिटिश म्यूज़ियम, ओरियण्टल मेनुस्क्रिप्ट नं० २६

इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि मैंने करवाई है। निज़ाम और सैय्यदों के द्वन्द का इस में विस्तार पूर्वक वर्णन दिया है; दोनों ओर से लिखे गए पत्रों की प्रतिलिपियाँ या उनका सारांश भी दिया है। इस काल के इतिहास के लिए यह ग्रन्थ एक महत्त्वपूर्ण आधार-ग्रन्थ है।

१९. **तारीख़-इ-शहादत-इ-फर्रुख़सियर व जुलूस-इ-मुहम्मद शाह**—अशोब कृत, जिल्द १—२; खुदाबख़्श लायब्रेरी, पटना की प्रति से सरकार के लिए की गई प्रति।

२०. **मिरात्-इ-वारिदात**—वारिद तिहरानी कृत; उदयपुर की विक्टोरिया पबलिक लायब्रेरी की हस्त-लिखित प्रति।

२१. **हिदायाक़त-उल्-आलम**—मीर आलम कृत; हैदराबाद में लीथो से छपी हुई प्रति।

मालवा में आसफ़ जाह निज़ाम की सूबेदारी के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी है; इसमें बहुत सी बातें दूसरे ग्रन्थों से ही संग्रहीत की गई हैं।

२२. **सियार-उल्-मुताख़रीन**——गुलाम अली कृत; नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, में लीथो से छपी हुई प्रति।

इस काल के बीत जाने के बहुत दिनों बाद दूसरे ग्रन्थों के आधार पर ही इस ग्रन्थ की रचना की गई थी।

नोटः—विलियम इर्विन ने "लेटर मुग़लज़" ग्रन्थ की रचना करते समय, एवं सर यदुनाथ सरकार ने "फ़ाल आफ़ दी मुग़ल एम्पायर" लिखते समय प्रायः सब फ़ारसी आधार-ग्रन्थों का उपयोग किया था।

(ख) मराठी

२३. **सिलेक्शन्ज फ़्राम दी पेशवा दफ़्तर**——राव बहादुर गोविन्द सखाराम सरदेसाई द्वारा सम्पादित; खण्ड, २,७,८,९,१०,१२,१३,१४,१५,२०,२१,२२, २३,२५,२७,२९,३०,३१,३९।

२४. **मराठ्यांचे इतिहासाचीं साधनें**——राजवाड़े द्वारा संग्रहीत एवं सम्पादित; खण्ड १,२,६,८।

२५. **ऐतिहासिक लेख संग्रह**——खरे द्वारा संग्रहीत एवं सम्पादित; खण्ड १

२६. **सिलेक्शन्ज फ़्राम दी पेशवाज डायरीज**——वाड़, पारसनीस, आदि द्वारा सम्पादित; खण्ड १,२,३,४,७,९

२७. **ब्रह्मेन्द्र स्वामी चरित्र**——पारसनीस कृत।

२८. **पेशवा दफ़्तरांतील सनद-पत्रांतील माहिती**——(इतिहास संग्रह)——पारसनीस द्वारा संग्रहीत एवं सम्पादित।

२९. **ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार, लेख**——सरदेसाई, आदि द्वारा संग्रहीत, सम्पादित एवं संशोधित; खण्ड १–२

३०. **होलकर इतिहासाचीं साधनें**——पूर्वार्ध, भागवत द्वारा संग्रहीत एवं सम्पादित।

३१. शिन्देशाही इतिहासाचीं साधनें—फालके द्वारा सम्पादित, खण्ड १,२

इन खण्डों में गुलगुले-दफ़्तर के पत्र प्रकाशित किए गए हैं। कोटा एवं अन्य पड़ोसी राज्यों की चौथ आदि के लेने-देने का ही इनमें विशेष रूप से उल्लेख मिलता है।

३२. धारच्या पवारांचे महत्त्व व दर्जा—ओक और लेले कृत।

यह एक बहुत ही लम्बा पुनरुक्तियों से पूर्ण लेख है; मराठों के मालवा प्रवेश के समय धार के पवार घराने का महत्त्व बताने का इस लेख में प्रयत्न किया गया है। इस लेख की उपयोगिता उसमें प्रकाशित कुछ ऐसे पत्रों के ही कारण है, जो अब तक कहीं भी छपे न थे।

३३. धार संस्थान चा इतिहास—ओक और लेले कृत, खण्ड १

बहुत ही संक्षिप्त है; इसका प्रारम्भिक अंश मालकम कृत "मेमायर" के ही आधार पर लिखा गया है एवं त्रुटिपूर्ण है।

३४. धार दफ्तर—(अप्रकाशित)।

शिपोशी (रत्नागिरी डिस्ट्रिक्ट) के श्रीयुत् श्री० वि० अठले के संग्रह में प्रतिलिपियों की नकलें।

३५. मण्डलोई दफ़्तर—(अप्रकाशित)।

नन्दलाल मण्डलोई एवं उसके वंशजों के दफ़्तर में प्राप्य काग़ज़-पत्रों की नकलें इस ग्रन्थ में संग्रहीत हैं। मेरे पास इस दफ़्तर के काग़ज़-पत्रों के दो संग्रह विद्यमान हैं। पहला संग्रह तो श्रीयुत् भास्कर रामचन्द्र भालेराव द्वारा किया हुआ है, जिसमें हिन्दी के वे सात पत्र भी हैं, जिनके कारण इतिहासकारों में अब तक वाद-विवाद चलता आया था। इस संग्रह के बाकी दूसरे पत्र सब राजवाड़े, खण्ड ६ में प्रकाशित हो चुके हैं। दूसरा संग्रह शिपोशी के श्रीयुत् श्री० वि० अठले ने किया था, जो श्रीयुत् भालेराव के संग्रह से अधिक बड़ा और साथ ही अधिक प्रामाणिक भी है। इस दूसरे संग्रह में हिन्दी के वे सात पत्र नहीं हैं। राजवाड़े, खण्ड ६ में छपे हुए पत्रों के अतिरिक्त दूसरे कई अप्रकाशित पत्र भी इस संग्रह में हैं, जिनमें से कुछ पत्र महत्त्वपूर्ण भी हैं।

३६. पुरन्दरे दफ़्तर—खण्ड १ और ३; भा० इ० सं० म०, पूना द्वारा प्रकाशित।

कई पत्रों से अनेक अज्ञात घटनाओं का पता लगता है किन्तु कई पत्रों की जो तारीखें दी गई हैं वे ग़लत हैं, उनमें संशोधन की आवश्यकता है।

३७. **मराठी रियासत**—सरदेसाई कृत, पूर्वार्ध, और मध्य-भाग, खण्ड १–४

३८. **चन्द्रचूड़ दफ्तर**—खण्ड १; भा० इ० सं० म०, पूना द्वारा प्रकाशित।

मल्हार होलकर के समय में तथा उसके बाद भी होल्कर घराने के दीवानों के पत्रों का संग्रह।

३९. **होलकरांची कैफ़ियत**—दूसरा संस्करण, भागवत द्वारा सम्पादित।

ख्यातों एवं दंत-कथाओं के ही आधार पर लिखी गई थी एवं पूर्णतया विश्वसनीय नहीं है।

४०. **हिस्टारिकल सिलेक्शन्ज फ़्राम बड़ोदा स्टेट रेकर्डज़**—खण्ड १, (१७२४–१७६८ ई०); स्टेट रेकार्डज़ डिपार्टमेण्ट, बड़ोदा द्वारा प्रकाशित।

इस खण्ड में विशेषतया दूसरे प्रकाशित संग्रहों से ही पत्र आदि लिए गए हैं। पूर्णतया नए एवं मालवा के इतिहास के लिए कुछ भी महत्त्वपूर्ण पत्र केवल दो ही हैं; पत्रांक १० और ८१

(ग) हिन्दी और राजस्थानी

४१. **खाण्डेराय रासो**—जदुनाथ कवि कृत (अप्रकाशित)।

सन् १७४४ ई० में लिखा गया था। सरदार फालके की प्रति के ही पृष्ठों का उल्लेख किया गया है। इस में प्रान्तीय-महत्त्व की कुछ बातों का उल्लेख मिलता है। एवं सन् १७०४–४४ ई० के काल में नरवर के आस-पास के प्रदेश की परिस्थिति पर यह ग्रन्थ बहुत प्रकाश डालता है।

४२. **वीर विनोद**—भाग १–२; कविराजा महामहोपाध्याय श्यामलदास जी कृत।

उदयपुर एवं अन्य राज्यों का यह इतिहास-ग्रन्थ उदयपुर में लिखा जाकर

छपाया गया था, किन्तु कई कारणों से अब तक प्रकाशित नहीं हुआ। इस ग्रन्थ में उदयपुर राज्य के संग्रह में सुरक्षित कई फ़रमानों, पत्रों आदि की नकलें छापी गई हैं, जिन से इस ग्रन्थ का महत्त्व और उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है।

४३. **राजपूताने का इतिहास**—ओझा कृत, खण्ड १–३

इस ग्रन्थ में उदयपुर तथा डूँगरपुर राज्यों का विस्तृत इतिहास लिखा गया है। वीर विनोद एवं राजस्थान की स्थानीय सामग्री, शिलालेख, मुद्राओं, हस्त-लिखित ग्रन्थ, पत्रों आदि का इस ग्रन्थ में पूर्ण उपयोग किया गया है, टाड की कई भद्दी गलतियाँ भी ओझा ने सुधारी हैं।

४४. **वंश भास्कर**—सूर्यमल कृत, खण्ड ४

यह ग्रन्थ सन् १८४४ ई० में लिखा गया था। इस में बून्दी और कोटा राज्यों का विस्तार-पूर्वक इतिहास लिखा गया है। इस प्रधान विषय से सम्बद्ध अन्य घटनाओं का यथास्थान उल्लेख तथा उनकी विवेचना भी की गई है। राजपूतों के पक्ष को प्रदर्शित करने वाला यही एकमात्र ग्रन्थ है, किन्तु इससे भी मालवा प्रान्त के इस काल के पिछले भाग पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता है।

४५. **छत्र प्रकाश**—लाल कवि कृत; काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण।

छत्रसाल बुन्देला के घराने का इतिहास है।

४६. **सुजान चरित**—सूदन कवि कृत, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का संस्करण।

मालवा के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली घटनाएँ इसमें बहुत ही थोड़ी हैं।

४७. **बुले की बखर**—(अप्रकाशित)।

श्रीयुत् श्री० वि० अठले के संग्रह से प्राप्त हिन्दी भाषा में लिखा गया एक छोटा सा ग्रन्थ। यह ग्रन्थ १९वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में लिखा हुआ जान पड़ता है। इसमें विशेषतया ख्यातों या दन्तकथाओं के आधार पर ही मरहठों के प्रारम्भिक आक्रमणों आदि का विवरण लिखा गया होगा, एवं गज़ेटियरों में दिए गए ऐतिहासिक वृत्तान्तों से अधिक विश्वसनीय नहीं है।

(घ) अंग्रेज़ी तथा अन्य युरोपीय भाषाओं में लिखित

४८. **हिस्ट्री आफ़ औरंगज़ेब**—सर यदुनाथ सरकार कृत।

खण्ड ३ में सन् १६८१ ई० तक का इतिहास मिलता है। खण्ड ५ में औरंगज़ेब के शासन काल के अन्तिम वर्षों का प्रान्तीय इतिहास संक्षेप में दिया गया है।

४९. **दी फ़ाल आफ़ दी मुग़ल एम्पायर**—सर यदुनाथ सरकार कृत, खण्ड १–२

इन दोनों खण्डों में मराठी भाषा में प्राप्त नवीन सामग्री का उपयोग किया गया है तथा संक्षेप में प्रायः सारी सामग्री का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु यह ग्रन्थ दिल्ली के मामलों को लेकर ही लिखा गया है।

५०. **इण्डिया आफ़ औरंगज़ेब**—सर यदुनाथ सरकार कृत।

फ़ारसी आधार-ग्रन्थों तथा टिफ़ेनथेलर के आधार पर सरकार ने इसमें १७वीं तथा १८वीं शताब्दी में भारत की भौगोलिक अवस्था एवं भौगोलिक ब्योरों का वर्णन किया है; आमदनी, आबादी आदि की तालिकाएँ भी दी हैं, जिनसे उस काल में मालवा की परिस्थिति पर बहुत प्रकाश पड़ता है।

५१. **लेटर मुग़ल्ज**—विलियम र्इविन कृत एवं सर यदुनाथ सरकार द्वारा सम्पादित।

विशेषतया केवल फ़ारसी ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है। मरहठा इतिहास सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख ग्रेण्ट डफ़ के ग्रन्थ के आधार पर ही किया गया है। सन् १९२० ई० में इस ग्रन्थ का सम्पादन करते समय सर यदुनाथ सरकार ने उस समय तक प्रकाशित एवं प्राप्त मराठी सामग्री का उपयोग कर उसका फुटनोटों में उल्लेख किया है।

५२. **ए मेमायर आफ़ सेण्ट्रल इण्डिया**—सर जान मालकम कृत, खण्ड १–२; १८२३ ई० का संस्करण।

सर जान मालकम को जो कुछ भी थोड़ी सी सामग्री प्राप्त हो सकी उसी के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की थी। मालवा के इतिहास सम्बन्धी अध्याय बहुत ही संक्षिप्त हैं और घटनाओं का उल्लेख करने में कई स्थानों पर बहुत

गड़बड़ कर दी है। सन्-संवतों में भी बहुत सी गलतियाँ हैं। इस काल के इतिहास के लिए तो यह ग्रन्थ अब पूर्णतया अविश्वसनीय माना जाना चाहिये।

५३. **रिपोर्ट आन मालवा एण्ड एडजाइनिङ्ग डिस्ट्रिक्ट्स**––सर जान मालकम द्वारा लिखित।

इस रिपोर्ट का मूल भाग और मालकम कृत मेमायर का मूल भाग प्रायः समान ही हैं। सन् १९२७ में पुनः प्रकाशित प्रति से ही उल्लेख दिए गए हैं।

५४. **स्टोरिया डो मोगोर**––मनुची कृत एवं विलियम ईर्विन द्वारा सम्पादित; भाग १–४

मालवा में मरहठों के प्रारम्भिक आक्रमणों का कुछ उल्लेख इसमें मिलता है; एवं ईसा की १७ वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में मालवा की परिस्थिति पर भी इस ग्रन्थ से प्रकाश पड़ता है।

५५. **ट्रेवेल्ज़ इन इण्डिया**––टेवरनियर कृत एवं बाल द्वारा सम्पादित (मेकमिलन एण्ड कम्पनी)।

इस ग्रन्थ में मालवा में हो कर गुज़रने वाले व्यापार मार्गों तथा प्रान्त की आर्थिक परिस्थिति का वर्णन पाया जाता है।

५६. **एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम आफ़ दी मराठाज़**––सु० ना० सेन कृत।

५७. **मिलिटरी सिस्टम आफ़ दी मराठाज़**––सु० ना० सेन कृत।

५८. **जरनल आफ़ दी ट्रेवेल्ज़ आफ़ जान केटेलार**––डाक्टर जे० पी० एच० व्होगल द्वारा अनुवादित––ज० पं० हि० सो०, खण्ड १० भाग १ में प्रकाशित। अब तो डच भाषा का मूल ग्रन्थ भी डाक्टर व्होगल द्वारा सम्पादित हो कर हेग (हालेण्ड) से प्रकाशित हो गया है।

इस यात्रा-विवरण में सन् १७१२ ई० में मालवा की परिस्थिति का पूरा वर्णन मिलता है।

५९. सीतामऊ, रतलाम, सैलाना, राजगढ़, नरसिंहगढ़, देवास, धार, प्रतापगढ़ झाबुआ, बड़वानी और अलीराजपुर राज्यों के गज़ेटियर।

इन गज़ेटियरों में दिया हुआ ऐतिहासिक विवरण ख्यातों या दन्तकथाओं के आधार पर ही लिखा गया है, एवं उसका सावधानी के साथ उपयोग करना चाहिए। सन्-संवतों की गलतियाँ तो उनमें बहुतायत से पाई जाती हैं।

६०. **दी बंगश नवाब्ज आफ़ फर्रुखाबाद**—विलियम इर्विन लिखित—ज० ए० सो० बं०, सन् १८७८ ई० के खण्ड ४ में प्रकाशित।

इर्विन ने सब प्राप्य फ़ारसी ग्रन्थों का उपयोग किया था, और उन्हीं के आधार पर उसने बंगश की मालवा की सूबेदारी का विस्तारपूर्वक इतिहास लिखा है। प्राप्य मराठी सामग्री के आधार पर इस विवरण को यत्र-तत्र पूर्ण करना पड़ता है।

६१. **हिस्ट्री आफ़ दी डेकन**—स्काट कृत; खण्ड २

इसमें इरादत ख़ाँ के संस्मरणों का अनुवाद दिया गया है एवं बहुत ही उपयोगी है।

६२. **हिस्ट्री आफ़ इण्डिया एज़ टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियन्ज़**—ईलियट और डासन कृत; जिल्दें ७ और ८

जिन-जिन ग्रंथों की मूल प्रति देखने को मिल सकी, उनके साथ इस ग्रन्थ में दिए हुए उनके अनुवादों का मिलान कर लिया गया है; अनुवाद की विशेष उल्लेखनीय भूलें भी यथास्थान बताई गई हैं।

६३. **हिस्ट्री आफ़ दी मराठाज़**—ग्रेण्ट डफ़ कृत; खण्ड १ (आक्सफ़र्ड संस्करण)।

६४. **दी फ़र्स्ट टू नवाब्ज आफ़ अवध**—डाक्टर आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव कृत।

सादत ख़ाँ और सफ़दर जंग का जहाँ तक मालवा से सम्बन्ध था उसका इस ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है। सब फ़ारसी ग्रन्थों का उपयोग किया है एवं उस दृष्टि से उपयोगी है।

६५. **एनल्ज़ एण्ड एण्टीक्विटीज़ आफ़ राजस्थान**—सर जेम्स टाड कृत; जिल्दें १—३; आक्सफ़र्ड संस्करण।

६६. **मेन करण्ट्स आफ़ मराठा हिस्ट्री**—गो० स० सरदेसाई कृत।

६७. **राइज़ आफ पेशवा**—एच० एन० सिन्हा कृत।

पेशवा दफ़्तर के ४५ खण्डों के छपने से पहिले ही यह ग्रन्थ लिखा गया था। एक तौर से सरदेसाई कृत 'मराठी रियासत' का ही सारांश अंग्रेज़ी में लिखा गया है।

६८. **निज़ाम-उल्-मुल्क आसफ़ जाह १**—डाक्टर युसुफ़ हुसैन खाँ कृत (१९३६)।

इस ग्रन्थ में आसफ़िया लायब्रेरी में सुरक्षित "फ़ुतूहात-इ-आसफ़ी" के समान कई अप्राप्य ग्रन्थों का उपयोग किया गया है, एवं जहाँ तक ऐसे ग्रन्थों से ज्ञात घटनाओं तथा अन्य विवरणों का उल्लेख है यह ग्रन्थ उपयोगी है। किन्तु लेखक ने आधार-ग्रन्थों के उल्लेख बहुत ही कम दिये हैं। मालवा-सम्बन्धी बहुत कुछ विवरण मालकम के ही आधार पर लिखा गया है। मराठी सामग्री का बिलकुल ही उपयोग नहीं किया गया है, एवं उस दृष्टि से खोज अधूरी ही रह गई है।

६९. **ताज-उल्-इक़बाल तारीख़ भोपाल**—नवाब शाहजहाँ, बेगम भोपाल, कृत उर्दू इतिहास का अंग्रेज़ी अनुवाद, एच० सी० बारस्टो कृत (१८७६ ई०)।

यह ग्रन्थ दन्तकथाओं के ही आधार पर, बिना किसी खोज के, लिखा गया था। तारीखों, सन्-संवतों आदि में बहुत ग़लतियाँ हैं; कई स्थानों पर बहुत कुछ अतिशयोक्ति भी देख पड़ती है।

७०. **डिस्क्रिपशन दी ला' इन्दे**—पारले जोसेफ़ टिफ़ेनथेलर, एस० जे०—पब्ली एन फ्रेन्साइस पार एम० जीन बरनौली; टोम १, बर्लिन, १७८६।

इस ग्रंथ के १२ वें अध्याय 'ला प्राविन्स दी मालवा' (पृष्ठ ३४२—३५८) में, टिफ़ेनथेलर ने सन् १७६० ई० में मालवा की परिस्थिति तथा प्रान्त के प्रधान शहरों और कस्बों का विवरण लिखा है। किन्तु सन् १७६० ई० में मालवा की आमदनी क्या थी इसका उसने कोई अन्दाज़ा नहीं लगाया।

टिफ़ेनथेलर बीस वर्षों तक (१७४०—१७६१ ई०) नरवर में रहा और आस-पास के प्रदेशों में एक दरिद्री पादरी की हैसियत से घूमता फिरा, एवं

उस प्रदेश के निवासियों के साथ सम्पर्क में आने तथा उनकी ठीक-ठीक परिस्थिति जानने का उसे बहुत अवसर मिला था। प्रान्त की खेती-बारी तथा वहाँ के गाँवों और शहरों की हालत भी वह ठीक तौर पर देख सुन सका था। प्रान्त की आमदनी, उसके सरकार, महल आदि विभागों सम्बन्धी बातें तो उसने 'आइन–इ–अकबरी' तथा 'खुलासात' के समान फ़ारसी ग्रन्थों से ही उद्धृत की हैं।

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

अ

आ

इ

ई

उ

ए

ओ

औ

क

ख

ग

घ

च

छ

ज

झ

ट

ड

त

थ

द

ध

न

प

फ

ब

भ

म

य

र

ल

व

श

स

ह

शुद्धि-पत्र

पृ० ३२ मार्जिनल नोट पं० २ "महीन" के स्थान पर "महान"

पृ० १६४ पं० ५ "हैदर अली" के स्थान पर "हैदर कुली"

पृ० १६८ पं० २ "मई ५, १७२३" के स्थान पर "मई १५, १७२३"

पृ० २३४ पं० ६ "पृ० २७८" के स्थान पर "पृ० २८७"

पृ० २८८ पं० ४ "सभासिंह जाट और दूसरे राजपूत सेनापतियों" के स्थान पर "सभासिंह बुन्देला और दूसरे जाट तथा राजपूत सेनापतियों"

पृ० २६० पं० ११ "एलचीपुर" के स्थान पर "एलिचपुर"